प्रासाद मंडन

आशीर्वाद एवं प्रेरणा :

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

क्षु. श्री गम्भीरसागर जी महाराज

क्षु. श्री धैर्यसागर जी महाराज

पुण्यार्जक

प्रकाशन/प्रकाशक :

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र ब्यावर (राज.)

एवं

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघी जी सांगानेर, जयपुर (राज.)

प्रस्तावना

भारतीय प्राचीन स्थापत्यकला के सुन्दर कलामय देवालयों, राजमहलों, किलाओं, जलाशयों, यंत्री और मनुष्यालयों आदि अनेक मनोहर रचनाओं को देखकर अपना मन अतीव आनन्दित होता है। यही 'वास्तुशिल्प' है।

वास्तु की उत्पत्ति के विषय में अपराजितपृच्छा के सूत्र ५३ से ५५ तक में विस्तार पूर्वक वर्णन लीखा है। उसका सारांश यह कि—प्राचीन समय में अंधकासुर नाम के राक्षस का विनाश करने के लिये महादेव को संग्राम करना पड़ा। उसके परिश्रम से महादेवजी के कपाल में से पसीना का एक बिन्दु भूमि पर अग्निकुण्ड में गिरा। इसके योग से वहां एक बड़ा भयंकर विशालकाय भूत उत्पन्न हुआ, उसको देवोंने औंधा पटक करके उसके विशालकाय शरीर के ऊपर पेंतालीस देव और आठ देवियां ऐसे कुल ५३ देव बैठ गये और निवास करने लगें। जिसे अप० सू० ५५ श्लो० १२ में कहा है कि 'निवासः सर्वदेवानां वास्तु वै स्मानतो बिदुः।' अर्थात् ये देवोंका निवास होने से महाकाय भूत वास्तुपुरुष कहा जाता है। इसका वर्णन इसी ग्रंथ के आठवें अध्याय में श्लोक ६६ से ११४ तक किया गया है।

यह प्रासाद मण्डन ग्रंथ शिल्पिवर्ग में अधिक प्रशस्त है, इसके आधार पर आधुनिक सोमपुरा ब्राह्मण ज्ञातीय शिल्पिवर्ग देवालय बांधने का कार्य अपनी वंशपरंपरा से करते आये है। यही इस ग्रंथ की विशेष महत्वता है और देवालयों की मुख्य चौदह जाति बतलाई हैं (देखो अध्या० १ श्लोक ६० का अनुवाद), इनमें से नागर जाति के देवालय बांधने का यह प्रशस्त ग्रंथ माना जाता है। इसमें देवालयों के गुणदोष और माप पूर्वक बांधने का सविस्तर वर्णन है।

देवालय बनाने का महत्व—

प्रासाद का अर्थ देवमंदिर अथवा राजमहल होता है। उनमें से यह ग्रंथ देवमंदिर के निर्माण विषय का है। इसको बनाने का कारण शास्त्रों में लिखा है कि—

> "सुरालयो विभूत्यर्थं भूषणार्थं पुरस्य तु।
> नराणां भुक्तिमुक्त्यर्थं सत्यार्थं चैव सर्वदा॥
> लोकानां धर्महेतुश्च क्रीडाहेतुश्च स्वभुवाम्।
> कीर्तिरायुर्यशोऽर्थं च राज्ञां कल्याणकारकः॥" अप० सू० ११५

मनुष्यों के ऐश्वर्य के लिये, नगर के भूषणरूप शृंगार के लिये, मनुष्यों को अनेक प्रकार की भोग सामग्री को और मुक्तिपद को देनेवाला होनेसे, सब प्रकार की सत्यता की पूर्णता के लिये, मनुष्यों को धर्म का कारणभूत होने से, देवों को क्रीडा करने की भूमि होने से, कीर्ति, आयुष्य और यश की वृद्धि के लिये और राजाओं का कल्याण के लिये देवालय बनाया जाता है।

सूत्रधार स्थपति—

देवालय गृह आदि वास्तुशिल्प के काम करने वाले को सूत्रधार अथवा स्थपति कहा जाता है। चौदह राजलोक के देवोंने इकट्ठे होकर शिवलिंग के आकारवाली महादेवजी की अनेक प्रकार से पूजा की, जिससे प्रासाद की चौदह जाति उत्पन्न हुई इन प्रत्येक में चोरस, लंबचोरस, गोल, लंबगोल और अष्टास्र (आठ कोना वाली) ये पांच आकृतिवाले प्रासाद शिवजी के कथनानुसार ब्रह्माजी ने बनायें। इन प्रत्येक में चोरस आकृतिवाले प्रासाद की ५८८, लंबचोरस प्रासाद की ३००, गोल प्रासाद की ५००, लंबगोल प्रासाद की १५० और अष्टास्र प्रासाद की ३५० जाति भेद हैं। इनमें मिश्र जाति के प्रासाद के ११२ भेद मिलाने से दो हजार जाति के प्रासाद होते हैं। इन प्रत्येक के पच्चीस पच्चीस भेद होने से पचास हजार भेद होते हैं। इन प्रत्येक की आठ आठ विभक्ति होने से कुल चार लाख भेद प्रासाद के होते हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन जानने वाले को शास्त्रकारने स्थपति (सूत्रधार) कहा है।

प्रासाद की श्रेष्ठता—

भारतीय संस्कृति में प्रासाद का अत्यधिक आदर किया जाता है, इतना ही नहीं परन्तु पूजनीय भी माना जाता है। इसका एक कारण यह हो सकता है कि—प्रासाद को शिवलिंग का स्वरूप माना गया है। जैसे शिवलिंग की पीठिका है, वैसे प्रासाद को भी जगतीरूप पीठिका है। प्रासाद का जो चोरस भाग है, वह ब्रह्म भाग है, उसके ऊपर का जो अष्टास्र भाग है, वह विष्णुभाग है और उसके ऊपर का जो गोल शिखर का भाग है, वह साक्षात् शिवलिंग स्वरूप है।

दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि—प्रासाद के प्रत्येक अंग और उपांगों में देव और देवीओं का विन्यास करके देव प्रतिष्ठा के समय उसका अभिषेक किया जाता है। इसलिये प्रासाद सर्व देवमय बन जाता है।

तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि—प्रासाद के मध्य भूतल से धारिणी शिला के ऊपर से एक नाली (जिसको शास्त्रकार योगनाल अथवा ब्रह्मनाल कहते हैं और आधुनिक शिल्पी पद्मनाल कहते हैं) देव के सिंहासन तक रखने का विधान है। इसका कारण यह माना जाता है कि—प्रासाद के गर्भगृह के मध्य भाग से जलचर जीवों की आकृतिवाली धारणी नाम की शिला नींव में स्थापित की जाती है, उसके ऊपर सुवर्ण अथवा चांदी का कूर्म (कछूआ) रख कर योगनाल रखी जाती है। इसका कारण यह हो सकता है कि—यह धारणी शिला के ऊपर जलचर जीवों की आकृतियां होने से यह शिला क्षीर समुद्र में शेषशायी भगवान स्वरूप माना गया, इसके नाभिकमल से उत्पन्न हुआ कमलदंड स्वरूप योगनाल है, इसके ऊपर ब्रह्मा की उत्पत्ति स्वरूप प्रतिष्ठित देव है। इत्यादि कारणों से प्रासाद का अधिक आदर किया जाता है।

प्रासाद के निर्माण का फल—

"स्वशक्त्या काष्ठमृच्छिलेष्टकाशैलधातुरत्नजम् ।
देवतायतनं कुर्याद् धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥" अ० १. श्लो० ३३

अपनी शक्ति के अनुसार लकड़ी, मिट्टी, ईंट, पाषाण, धातु अथवा रत्न, इन पदार्थों में से किसी भी एक पदार्थ का देवालय बनावें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

"कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसङ्गुणम् ।
ऐष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम् ॥" अ० १ श्लो० ३५

देवालय घासका बनावें तो करोड़ गुना, माटीका बनावें तो दस करोड़ गुना, ईंट का बनावें तो सौ करोड़ गुना और पाषाणका बनावें तो अनंत गुना फल मिलता है।

वास्तुशिल्प के आठ सूत्र—

वास्तु शिल्प के इमारती काम करने के लिये शिल्पीयों के पास मुख्य आठ सूत्र पाये जाते हैं। उनमें प्रथम दृष्टिसूत्र, दूसरा हस्त (गज) सूत्र, तीसरा मुंज की रस्सी, चौथा सूत का डोरा, पांचवां अवलंब, छट्ठा काट कोना, सातवां साधणी (रेवल) और आठवां प्रकार है। इसका परिचय के लिये देखीये नीचे का रेखा चित्र।

इनमें जो भूमि आदि वस्तुओं का नाप करने के लिये दूसरा हस्तसूत्र है, यह तीन प्रकार के माप का है। उसको जानने के लिये माप की तालीका इस प्रकार है—

८ परमाणु = १ केशाग्र,	११ अंगुल = १ गोकर्ण
८ केशाग्र = १ लीख (लीख)	१२ ,, = १ वितस्ति, ताल, बित्ता,
८ लीख = १ यूं,	१४ ,, = १ उद्दिष्ट, पाद,
८ यूं = १ यवोदर,	२१ ,, = १ रत्नि,
८ यवोदर = १ अंगुल, मात्रा,	२४ ,, = १ अरत्नि, हाथ, दो फुट का गज,
२ अंगुल = १ कला, गोलक,	४२ अंगुल = १ किष्कु,
३ ,, = १ पर्व,	८४ ,, = १ व्याम, पुरुष,
४ ,, = १ मुष्टि, मुट्ठी,	९६ ,, = १ धनुष, नाडीयुग,
५ ,, = १ तल,	१०६ ,, = १ दंड,
६ ,, = १ करतलांगुल,	३० धनुष = १ नल्व,
७ ,, = १ दिष्टी,	१००० ,, = १ कोस
८ ,, = १ तुणी,	२ कोस = १ गव्यूत
९ ,, = १ प्रादेश	४ गव्यूत = १ योजन,
१० ,, = १ शयताल	

उपरोक्त जो आठ यवोदरका एक अंगुल माप लीखा है, यह तीन प्रकार का माना जाता है। जैसे— आठ यवोदर का एक अंगुल यह ज्येष्ठ माप का, सात यवोदर का एक अंगुल यह मध्यम माप का और छह यवोदर का एक अंगुल यह कनिष्ठ मानका अंगुल माना जाता है। इन तीन प्रकार के अंगुलों में से जिस २४ अंगुल के माप का हाथ बनाया जाय तो वह हाथ भी ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मानका होता है। जैसे—आठ यवोदर का एक अंगुल, ऐसे २४ अंगुल का एक ज्येष्ठ हाथ, सात यवोदर का एक अंगुल, ऐसे

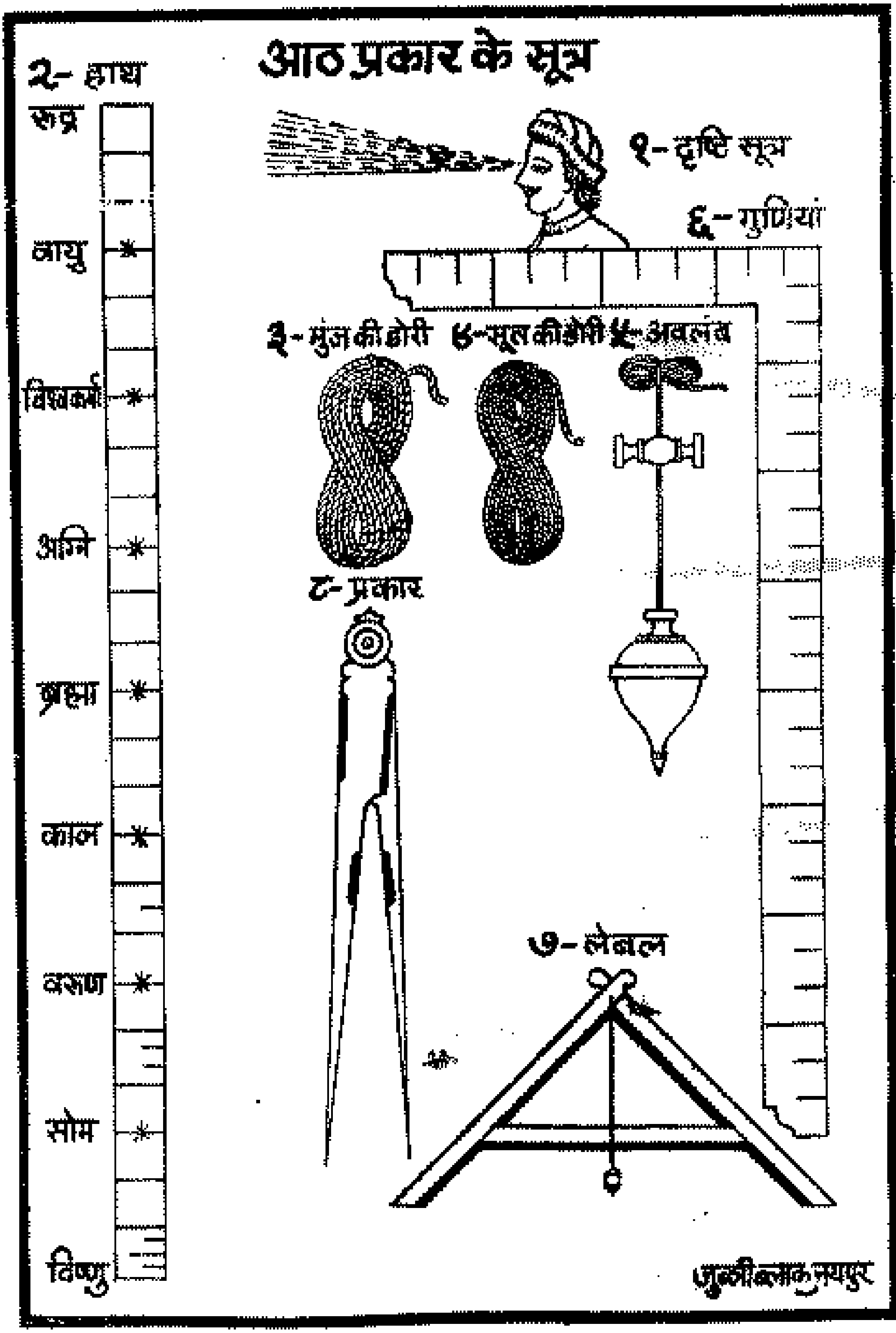

वास्तुशिल्प के आठ सूत्र

२४ अंगुल का एक मध्यम हाथ और छह यवोदर का एक अंगुल, ऐसे २४ अंगुल का एक कनिष्ठ हाथ माना जाता है।

इन तीन प्रकार के हाथों में से—गांव, नगर, वन, बगीचा, किला, कोस, योजन आदिका नाप ज्येष्ठ मान के हाथ से, [1]प्रासाद (राजमहल और देव मंदिर), प्रतिमा, लिंग, जगतीपीठ मंडप और सब प्रकार के मनुष्यों के घर ये सब मध्यम मान के हाथ से और सिंहासन, शय्या, आसन, छत्र, शस्त्र और सब प्रकार के वाहन आदि का नाप कनिष्ठमान के हाथ से नापने का विधान है।

[2]हाथ की बनावट—

हाथ में तीन तीन अंगुल की एक २ पर्व रेखा माना है, उसके स्थान पर एक २ पुष्प की आकृति किया जाता है। ऐसे आठ पर्व रेखा होती है। चौथी पर्व रेखा हाथ का मध्य भाग समझा जाता है, इस मध्य भाग से आगे पांचवाँ अंगुल का दो भाग, आठवें अंगुल का तीन भाग और बारहवें अंगुल का चार भाग किया जाता है।

हाथ के प्रत्येक अंगुल के कापा का एक २ देव है, जिसे २४ अंगुल के २३ कापा होते हैं, इनके देवों के नाम राजवल्लभमंडन अ० १ श्लो० ३६ में लिखा है। परन्तु पर्व रेखा के पुष्प का आठ और एक आदि ऐसे नव देव मुख्य माने हैं।

जैसे— 'रुद्रो वायुर्विश्वकर्मा हुताशो, ब्रह्मा कालस्तोयपः सोमविष्णू।'

अर्थात् हाथ के आद्य भाग का देव रुद्र, प्रथम पुष्प का देव वायु, दूसरे पुष्प का देव विश्वकर्मा, तीसरे पुष्प का देव अग्नि, चौथे पुष्प का देव ब्रह्मा, पांचवें पुष्प का देव यम, छट्ठे पुष्प का देव वरुण, सातवें पुष्प का देव सोम और आठवें पुष्प का देव विष्णु है। इन नव देवों में से कोई भी देव हाथ उठाते समय शिल्पी के हाथ से दब जाय तो अशुभ फलदायक माना है। इसलिये शिल्पीयों को हाथ के दो फूलों के बीच से उठाना चाहिये। इसका फल समरांगण सूत्रधार में लिखा है कि—

हाथ (गज) को रुद्र और वायु देव के मध्य भाग से उठावें तो धन की प्राप्ति और कार्य की सिद्धि होवे। वायु और विश्वकर्मा देव के मध्य भाग से उठावें तो इच्छित फल की प्राप्ति होवे। विश्वकर्मा और अग्निदेव के मध्य भाग से उठावें तो काम अच्छी तरह पूर्ण होवे। अग्नि और ब्रह्मा देव के मध्य भाग से उठावें तो पुत्र की प्राप्ति और कार्य की सिद्धि होवे। ब्रह्मा और यमदेव के मध्य भाग से उठावें तो शिल्पी की हानि होवे। यम और वरुण देव के मध्य भाग से उठावें तो मध्यम फलदायक जानना। वरुण और सोमदेव के मध्य भाग से उठावें तो मध्यम फल जानना। सोम और विष्णु देव के मध्य भाग से उठावें तो अनेक प्रकार की सुख समृद्धि होवे।

---

१ समरांगण सूत्रधार ग्रंथ में ज्येष्ठ हाथ से नापने का लीखा है।

२ देखो राजवल्लभमंडन अध्याय १ श्लोक ३३ से ३६ तक।

इंच, फुट और गज आदिका माप ब्रीटीश साम्राज्य से हुआ है। इसलिये इसका प्रचार अभी तक चला आ रहा है। आधुनिक शिल्पी अंगुल को एक इंच और हाथ को दो फुट मानकर के कार्य करते हैं।

ग्रंथकार—

प्रासाद का निर्माण करने के लिये यह प्रासाद मंडन नाम का ग्रंथ प्रकार विद्वान् 'मंडन' नाम के सूत्रधार ने मेवाड़ के महाराणा कुम्भकर्ण के समय रचा है। इस विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन सुप्रसिद्ध विद्वद्रत्न डॉ० वासुदेव शरणजी अग्रवाल अध्यक्ष—कला और वास्तुविभाग, काशी विश्वविद्यालय की लिखी हुई विस्तृत भूमिका है, इसमें विस्तार पूर्वक लिखा गया है।

ग्रंथविषय—

इस ग्रंथ में आठ अध्याय हैं। प्रथमाध्याय में प्रासाद की १४ जाति, भूमि परीक्षा, खातमुहूर्त, वत्सचक्र, आय, व्यय, नक्षत्र आदिका गणित, दिक्साधन, खातविधि कूर्ममान, कारिगरों आदि शिल्प का माप और देवालय बांधने का फल इत्यादि विषयों का वर्णन है।

दिक्साधन—

वास्तु शिल्पग्रंथों में ध्रुव को उत्तर दिशा मान करके दिक्साधन करने का विधान है, परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक दिक्साधन यंत्र जिसको कुतुबनुमा कहते हैं, इससे देखने से मालूम होता है कि ध्रुव ठीक उत्तर दिशा में नहीं है, पश्चिम दिशा तरफ लगभग बीस डीग्री हटा हुआ मालूम होता है। जिसे ध्रुव को उत्तर दिशा मान करके दिशा का साधन किया जाय तो वास्तविक दिशा का ज्ञान नहीं होगा।

दिन में दिक्साधन बारह अंगुल के माप वाला शंकु से करने का विधान है। परन्तु सूर्य प्रतिदिन एक ही बिन्दु के ऊपर उदय नहीं होता है। जिसे शंकु की छाया में विषमता होती है। इसलिये इसमें भी अमुक अंशों के संस्कार की आवश्यकता रहती है। एवं श्रवण, कृत्तिका, चित्रा और स्वाति नक्षत्र भी बराबर पूर्व दिशा में उदय नहीं होते हैं, जिसे इससे भी वास्तविक दिशा का ज्ञान नहीं होता।

इस दिक्साधन के बाबत विचार किया जाय तो आधुनिक वैज्ञानिक दिक्साधन यंत्र द्वारा ही करना अधिक अच्छा रहेगा। शास्त्रों में लिखे हुए प्रमाण उस समय बराबर होंगे, परन्तु सैंकड़ों वर्ष व्यतीत होनेसे नक्षत्र और ताराओं की स्थिति में परिवर्तन होजाते हैं।

खात मुहूर्त के बाबत में शेषनाग चक्र देखा जाता है, उसमें भी अधिक मतमतांतर है। कोई शास्त्र शेषनाग की स्थिति सृष्टि क्रम से मानते हैं तो कोई शास्त्र विलोम क्रम से मानते हैं। इसमें भी ज्योतिष शास्त्र और वास्तुशास्त्र में बहुत मतांतर है। इसका विशेष खुलासा मेरा अनुवादित राजवल्लभ मंडन ग्रंथ में लिखा है।

दूसरे अध्याय में जगती (प्रासाद बनाने की मर्यादित भूमि) का वर्णन है। तथा देवों के वाहन का स्थान और उसका उदय, जिन प्रासाद के मंडप का क्रम, देव के सामने अन्य देव स्थापित करने का निषेध, दिशा के देव, शिवस्नानोदक का विचार, प्रदक्षिणा, परनाल और देवों के आयतनों का वर्णन है।

कितनेक आधुनिक शिल्पी जगती पीठ का वास्तविक स्वरूप को जानते हैं, ऐसा प्रतीत नहीं होता, क्योंकि आजकल जो नवीन प्रासाद अथवा महाप्रासाद बनते हैं, उनमें जगती पीठ का अभाव ही मालूम होता है। ऐसा निराश्रय प्रासाद को शास्त्रकार उदयकारक नहीं मानते हैं।

शिव स्नानजल—

शिवजी के स्नान का जल दृष्टिगोचर होने से एवं उसका उल्लंघन करने से दोष लगता है, ऐसा सनातन धर्माम्नाय है। जिसे शिवलिंग की पीठिका की नाली के नीचे चंडनाथ गण की स्थापना की जाती है। तब स्नानजल चंड गण के मुखमें जाकर वापस गिरता है, उसको उच्छिष्ट (झूठा) मान लिया जाता है। ऐसा शिवस्नान जल का लांघन होजाय तो दोष नहीं माना जाता। चंडनाथ गण की स्थापना की प्रथा मुझे किसी शिवालय में देखने नहीं मिली यह वास्तु शास्त्र का प्रचार न होना समझना चाहिये।

नाभिवेध—

एक देव के सामने दूसरे देव स्थापित किया जाय अथवा एक देवालय के सामने दूसरा देवालय बनवाया जाय तो उसको शास्त्रकार 'नाभिवेध' होना मानते हैं, यह अशुभ है, परंतु स्वजातीय देव आपस में सम्मुख हो तो नाभिवेध का दोष नहीं माना जाता।

नाभिवेध के निषेध का कारण यह हो सकता है कि—एक देव का दर्शन करते हुए दर्शक की पीठ दूसरे देव के सामने रहती है। दूसरा कारण यह भी है कि—देव की दृष्टि का अवरोध होना दोषित माना है।

तीसरे अध्याय में खरशिला, भिट्ट, पीठ, मंडोवर (दीवार), देहली, द्वारमान, तथा त्रि, पंच, सप्त और नवशाखा आदिका वर्णन है।

आधुनिक कितनेक शिल्पी देवालय की पीठ छोटी रखते हैं, जिसे देवालय दबा हुआ मालूम होता है और पीठ मान से न्यून होने से वाहन का विनाश होना शास्त्रकार लिखते हैं, पीठ न्यून रखने के विषय में दीपार्णव ग्रंथ की सम्पादकीय टीप्पनी पेज नं० ५३ में 'शास्त्रीयमान जो आया हो उसमें से भी फिर अर्द्धभाग के मान का पीठ बनाना लिखा है।' यह सद्दन अशास्त्रीय मनः कल्पित है।

मेरुमंडोवर—

प्रासाद की दीवार में दो जंघा के ऊपर एक छज्जा होवे, उसको 'मेरुमंडोवर' कहा जाता है। क्षीरार्णव ग्रंथकार लिखते हैं कि—मेरुमंडोवर को बारह जंघा और छह छज्जा बनाया जाता है, इस हिसाब से दो दो जंघा के ऊपर एक एक छज्जा रखा जाता है।' प्रस्तुत ग्रंथ में प्रथम मान में दो जंघा और एक छज्जा, तथा दूसरे मान में एक जंघा और एक छज्जा बनाना लिखा है। इसी प्रकार आबू के और राणकपुर के जिनालयों में देखा जाता है। जयपुर प्रान्तीय आमेर में जगत् शिरोमणि के मंदिर में प्रत्येक जंघा के ऊपर छज्जा रक्खा गया है। दीपार्णव में प्राचीन देवालयों के तीन चार फोटू में पीठ और छज्जा रहित लिखा है, यह नजर चूक से लिखा मालूम होता है। पीठ तो सबको है, और छज्जा का निर्गम नहीं होने से छज्जा हीन मालूम होता है।

उदुम्बर (देहली)——

देवालय के द्वार की देहली और स्तंभ की कुम्भीओं की ऊंचाई मंडोवर के कुम्भा थर की ऊंचाई के बराबर करना लिखा है। परन्तु कभी बड़े प्रासादों में कुम्भा की ऊंचाई अधिक होती है, तो देहली की ऊंचाई भी अधिक होती है। ऐसे समय में देहली को नीचा उतारना शास्त्र में लिखा है। इस विषय में शिल्पिओं में मतभेद चल रहा है। कोई शिल्पी कहते हैं कि—'देहली नीची की जाय तो उसके साथ स्तंभ की कुम्भियां भी देहली के बराबर नीची की जाय' और कोई शिल्पी देहली नीची करते हैं, परन्तु स्तंभ की कुम्भियां नीची नहीं करते। इस मतभेद में जो शिल्पी देहली के साथ कुम्भियां भी नीची करता है, उसका मत शास्त्र की दृष्टि से प्रामाणिक मालूम नहीं होता है। कारण अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ श्लोक ६ में तो कुम्भीओं से देहली नीची उतारना लिखते हैं, तो कुम्भीओं नीचे कैसे उतरे? वैसे क्षीरार्णव में तो स्पष्ट लिखा है कि—"उदुम्बरे हते (खते) कुम्भी स्तम्भं तु पूर्ववत् भवेत्।" कभी देहली नीची किया जाय तो भी स्तंभ और उसकी कुम्भियां पहले के शास्त्रीय नाप के बराबर रखना चाहिये। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि—जो शिल्पि देहली के साथ कुम्भीओं नीची करना मानते हैं—यह प्रामाणिक नहीं है।

द्वार शाखा——

द्वार की शाखा के विषय में भी शिल्पीओं में मतभेद मालूम होता है। स्तंभ शाखा के दोनों तरफ एक एक कोणी बनाई जाती है, उसको शिल्परत्नाकर के सम्पादक शाखा मानते नहीं हैं और दीपार्णव के सम्पादक शाखा मानते हैं। देखो दीपार्णव पेज नं० ८१ में द्वारशाखा का रेखा चित्र है। उसमें स्तंभ के दोनों तरफ की कोणियों को शाख मान करके त्रिशाखा द्वार को पंच शाखा द्वार लिखा है, एवं पेज नं० ३६८ और ३६९ के बीच में द्वारशाखा का ब्लोक छपा है, यह चित्र शिल्परत्नाकर का होने से बीच में त्रिशाखा द्वार छपा है और नीचे उसके खंडन रूप से पंच शाखा द्वार लिखा है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि स्तंभ शाखा की कोणिओं को दीपार्णव के सम्पादक शाखा मानते हैं, जिसे उसके मत से नवशाखा वाला द्वार में दो स्तंभ शाखा होने से तेरह शाखा वाला द्वार माना जाय तो यह अशास्त्रीय हो जाता है। क्योंकि शास्त्रकार स्तंभ शाखा के दोनों तरफ कोणियां बनाना लिखते हैं, परन्तु उसको शाखा नहीं मानते। इसलिये स्तंभ की दोनों तरफ की कोणियों को शाखा मानने वाले शिल्पीओं का मत अशास्त्रीय होने से प्रामाणिक नहीं माना जाय।

चतुर्थ अध्ययन में मूर्त्ति और सिंहासन का नाप, गर्भगृह का नाप, देवों की दृष्टि, देवों का पद स्थान, उरुशृंगों का क्रम, रेखा विचार, शिखर विधान, आमलसार, कलश, शुकनास, कोली मंडप का विधान, सुवर्णपुरुष की रचना, ध्वजादंड का माप और उसका स्थान आदिका वर्णन है।

देवदृष्टि स्थान——

देवों की दृष्टि द्वार के किस विभाग में रखा जाय, इस विषय में शिल्पियों में मतभेद है। कितनेक शिल्पी शास्त्र में कहे हुए एक भाग में दृष्टि नहीं रखते, परन्तु कहा हुआ भाग और उसके ऊपर का भाग, इन दोनों भाग की संधी में आंख की कीकी रखते हैं, जिसे उनके हिसाब से एक भाग में दृष्टि रखने का संबंध नहीं मिलता। इसलिये शास्त्र के हिसाब में दृष्टि स्थान न होने से उसका मत प्रामाणिक नहीं माना जाता।

देवों के पदस्थापन संबंध में शास्त्रीय अनेक मत मतान्तर हैं। इन हरएक का सारांश यह है कि 'दीवार से दूर रखकर मूर्ति को स्थापित करना चाहिये'। दीवार से चीपका करके किसी भी देव की मूर्ति स्थापित नहीं करना चाहिये। इस विषय में मूल ग्रंथकार मतमतान्तर को छोड़ करके गर्भगृह के ऊपर के पाट के आगे के भाग में देवों को स्थापित करना लिखते हैं, यह वास्तविक है।

रेखा—

शिखर की ऊंचाई की गोलाई का निश्चय करने के लिये शिखर के नीचे के पायचे से ऊपर के स्कंध तक जो लकीरें खींची जाती हैं, उसको रेखा कहते हैं। रेखाओं से शिखर निर्दोष बनता है। ऐसा शिल्पीवर्ग में मान्यता है। मगर इस रेखा संबंधी रहस्यमय ज्ञान लुप्त प्रायः हो गया है। जिसे इसका रहस्य मुझे मालूम नहीं हो सका, जोकि अनुवाद में पृष्ठ नं० ७७ में एक रेखा चित्र दिया है, जिससे शिल्पिगण इस पर विचार करके रेखा की वास्तविकता का निर्णय करेंगे तो वास्तु शास्त्र के इस विषय का प्रचार हो सकेगा।

ध्वजादंड—

वास्तु शिल्पशास्त्र का विशेष अध्ययन न होने से शिल्पिगण ध्वजादंड रखने का स्थान विस्मृत होगये हैं, जिसे वे देवालय का निर्माण करते समय ध्वजादंड को आमलसार में स्थापन करते हैं, यह प्रामाणिक नहीं है। शास्त्र में शिखर की ऊंचाई का छह भाग करके ऊपर के छट्ठे भाग का फिर चार भाग करके नीचे का एक भाग छोड़ देना, उसके ऊपर का तीसरे भाग में ध्वजादंड रखने का कलावा बनाना लिखा है। देखो पेज नं० ८६,६० । एवं ध्वजादंड को मजबूत रखने के लिये उसके साथ एक दंडिका भी बंधबंध करके रखी जाती है। यह प्रथा तो प्रायः बिलकुल लुप्त होगई है।

शास्त्र में ध्वजाधार का स्थान लिखा है, परन्तु शिल्पी ध्वजाधार का अर्थ ध्वजा को धारण करने वाला 'ध्वजपुरुष' ऐसा करते हैं, जिसे ध्वजादंड रखने के स्थान पर ध्वजपुरुष की आकृति रखते हैं। और शिल्परत्नाकर पेज नं० १८४ श्लोक ५४ का गुजराती अनुवाद में 'ध्वजाधर अर्थात् ध्वजपुरुष करवो' लिखा है, उसका प्रमाण देते हैं। उन शिल्पियों को समझना चाहिये कि ध्वजाधार का अर्थ ध्वजपुरुष नहीं, लेकिन ध्वजादंड रखने का कलावा है।

दीपार्णव ग्रंथ में नवीन बने हुए देवालयों के चित्र दिये गये हैं, उनके शिखरों के आमलसारों में ध्वजादंड रखा हुआ मालूम होता है, उनको देखकर अपने ये प्रामाणिक मान लेवें तो दीपार्णव के पेज ११५ में श्लोक ४६, ५० का अनुवाद पेज नं० ११६ में लिखा है कि—"जो स्कंधना मूलमां ध्वजदंड प्रविष्ट थाय तो स्कंधवेध जाणवो, स्कंधवेधथी स्वामी अने शिल्पीनो नाश थाय छे।" यह शास्त्रीय कथन झूठा हो जाता है। शास्त्रीय कथन सत्य मानने के लिये प्रासादमंडन के पेज नं० ६० में दिये गये ध्वजदंड के रेखा चित्र देखें, इस प्रकार ध्वजदंड रखना प्रामाणिक है।

दीपार्णव के पृष्ठ नं० १२६ की टीप्पणी में क्षीरार्णव का एक श्लोक का प्रमाण देकर लिखा है कि—'समपर्व अने एकी कांगणी वाला ध्वजादंड शक्तिदेवो ना (अने महादेवना) मंदिरोमां करावबो। जो के एकी के बेकी बेउ प्रकारना ध्वजादंडो भवनने विषे तो शुभ ज छे।' इस विषय में शिल्पियों को विचार करना चाहिये। यह श्लोक क्षीरार्णव में नहीं है, किसी अन्य ग्रंथ का होगा या अनुवादक ने मनः कल्पित बनाकर

निकलता नहीं है,
रखा होगा, मगर 'दोनों प्रकार के ध्वजदंड बनाने के लिये शुभ है।' ऐसा अर्थ श्लोक से परन्तु शक्तिदेवी के मंदिरों में ही दोनों प्रकार के ध्वजदंड बनाना ऐसा निकलता है। अन्य मंदिरों के लिये तो विषमपर्व और समग्रंथी वाला ही ध्वजदंड रखना शास्त्रीय है।

पांचवें अध्ययन में प्रासादों के पुष्प आदि वैराज्य आदि पचीस प्रासादों का सविस्तर वर्णन उनकी विभक्ति के नकशों के साथ लिखा गया है।

छट्ठे अध्ययन में केसरी आदि के पचीस प्रासादों के नाम और उनकी तल विभक्ति के मतमतान्तर लिखा है। और नव महामेरु प्रासादों का वर्णन है। केसरी आदि पचीस प्रासादों का सविस्तर वर्णन ग्रंथकार ने लिखा नहीं है, जिसे इस ग्रंथ के अंत में परिशिष्ट नं० १ में अपराजित पृच्छासूत्र० १५६ का केसरी आदि प्रासादों का सविस्तर वर्णन अनेक नकशे आदि देकर लिखा हुआ है।

सातवें अध्ययन में प्रासाद के मंडपों का सविस्तर वर्णन रेखा चित्र देकर लिखा गया है। उसमें 'शुकनासलमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका।' का अर्थ दीपार्णव के सम्पादक पेज नं० ११६ श्लो० ७ में 'शुकनासथी घंटा ऊंची न करवी, परंतु नीची होय तो दोष नथी।' ऐसा पेज नं० १२३ में नीचे टिप्पनी में 'शुकनासथी घंटा ऊंची न करवी, परंतु नीची होय तो दोष नथी।' ऐसा लिखा है और उसकी पुष्टता के लिये अपराजित पृच्छासूत्र १८५ श्लोक १३ वां का उत्तरार्द्ध भी लिखा है। यह वास्तविक नहीं है, क्योंकि जो उत्तरार्द्ध लिखा है वह घंटा नीची रखने के संबंध का नहीं है, परन्तु शुकनास के रखने के स्थान का विषय है। छज्जा से लेकर शिखर के स्कंध तक की ऊंचाई का इक्कीस भाग करना, उनमें से तेरह भाग की ऊंचाई में शुकनास रखना। तेरहवें भाग से अधिक ऊंचा नहीं रखना, किन्तु तेरहवां भाग से नीचा रखना दोष नहीं है। ऐसा अर्थ है उसको आमलसार घंटा का संबंध मिलाना अप्रामाणिक माना जाता है।

वितान (चंदवा)—

छत के नीचे के तल भाग को वितान-चांदनी अथवा चंदवा कहते हैं। उसके मुख्य तीन भेद हैं—

१. छत में जो लटकती आकृति होवे, वह 'क्षिप्तवितान' कहा जाता है।
२. छत की आकृति ऊंची गोल गुम्बज के जैसी हो वह 'उत्क्षिप्त वितान' कहा जाता है।
३. यदि छत समतल हो तो उसको 'समतल वितान' कहते है। यह बिलकुल सादी अथवा अनेक प्रकार के चित्रों से चित्री हुई अथवा खुदाई वाली होती है।

दीपार्णव के पृष्ठ १३८ में श्लोक २२ के अनुवाद में क्षिप्तोत्क्षिप्त, समतल और उदित, ये तीन प्रकार के वितान लिखे हैं। यहां उदित शब्द वद्धातुका भूत कृदंत है, इसलिये इसका अर्थ 'कहा है' ऐसा क्रिया-वाचक होना चाहिये।

संवरणा—

संवरणा को शिल्पीवर्ग सांभरण कहते हैं यह मंडप की छत के ऊपर अनेक कलशों की आकृति वाला होता है। इसकी रचना शास्त्रीय पद्धति का विस्मरण होजाने से अपनी बुद्धि अनुसार शिल्पीओ बनाते हैं।

आठवां अध्याय साधारण नामका है। उसमें वास्तुदोष, विद्धसूत्र दोष, जीर्णवास्तु, महादोष, भिन्नदोष, अंगहीनदोष, आश्रम, मठ, प्रतिष्ठाविधि, प्रतिष्ठा मंडप, यज्ञकुण्ड, मंडलप्रतिष्ठा, प्रासाद देवन्यास, जिनदेवप्रतिष्ठा, जलाशयप्रतिष्ठा, वास्तुपुरुष का स्वरूप और ग्रंथसमाप्ति मंगल आदिका वर्णन है।

परिशिष्ट नं० १ में केसरी आदि पचीस प्रासादों का सविस्तर वर्णन है। उनकी विभक्तियों की प्रासाद संख्या में शास्त्रीय मतांतर है। जैसे—'समरांगण सूत्रधार' में अठारहवीं विभक्ति का एक भी प्रासाद नहीं है। एवं शिल्पशास्त्री नर्मदाशंकर सम्पादित 'शिल्परत्नाकर' में बीसवीं विभक्ति का एक भी प्रासाद नहीं है।

शिल्परत्नाकर में केसरी जातिका दूसरा सर्वतोभद्र प्रासाद नवशृंगों वाला है, उसके चार कोने पर और चार भद्र के ऊपर एक एक शृंग चढ़ाया है, यह शास्त्रीय नहीं है, क्योंकि संपादक ने इसमें स्वमः कल्पित परिवर्तन कर दिया है। शास्त्र में तो नवशृंग कोने के ऊपर चढ़ाने का और भद्र के ऊपर शृंग नहीं चढ़ाने का लिखा है। क्षीरार्णव ग्रंथ में साफ लिखा है कि—'कर्णे शृङ्गद्वयं कार्यं भद्रे शृंगं विवर्जयेत्।' इस प्रकार सोमपुरा अंबाराम विश्वनाथ प्रकाशित 'केसरादि प्रासादमंडन' के पृष्ठ २५ श्लोक १० में भी लिखा है। मगर शिल्परत्नाकर के सम्पादक ने इस श्लोक का परिवर्तन करके 'कर्णे शृंगं तथा कार्यं भद्रे शृंगं तथैव च'। ऐसा लिखा है। इस प्रकार प्राचीन वास्तुशिल्पका परिवर्तन करना विद्वानोंको के लिये अनुचित माना जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि—दीपार्णव के सम्पादक ने भी सर्वतोभद्र प्रासाद के शृंगों का क्रम रक्खा, देखिये पृष्ठ नं० ३२१ में सर्वतोभद्र प्रासाद के शिखर का रेखाचित्र।

परिशिष्ट नं० २ में जिनप्रासादों का सविस्तृत वर्णन है। इन प्रासादों के ऊपर श्रीवत्स शृंगों के बदले केसरी आदि शृंगों का क्रम चढ़ाने का लिखा है। क्रम शब्द यहां शृंगों का समुहवाचक माना जाता है। पहला क्रम पांच शृंगों का दूसरा क्रम नव शृंगों का, तीसरा क्रम तेरह शृंगोंका, चौथा क्रम सत्रह शृंगों का और पांचवां क्रम इक्कीस शृंगों का समूह है। अर्थात् केसरी आदि प्रासादों की शृंग संख्या को क्रम की संज्ञा दी है।

शास्त्रकार जितना न्यूनाधिक क्रम चढ़ाने का लिखते हैं, वहां आधुनिक शिल्पी नीचे की पंक्ति में एकही संख्या के क्रम चढ़ाते हैं। जैसे कि—किसी प्रासाद के कोनेके ऊपर चार क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर तीन क्रम, उपरथ के ऊपर दो क्रम चढ़ाने का लिखा है। वहां आधुनिक शिल्पी नीचे की प्रथम पंक्ति में सबके ऊपर चौथा क्रम चढ़ाते हैं। उसके ऊपर की पंक्ति में सबके ऊपर तीसरा क्रम चढ़ाते हैं। यह नियम अशास्त्रीय है। इस प्रकार प्राचीन देवालयों में चढ़ाये हुए नहीं हैं। शास्त्रीय नियम ऐसा है कि—जिस अंग के ऊपर जितना क्रम चढ़ाने का लिखा है, वहां सब जगह प्रथम क्रम से ही गिन करके चढ़ावें। अर्थात् कोने के ऊपर चार क्रम चढाने का है वहां नीचे की प्रथम पंक्ति में चौथा, उसके ऊपर तीसरा, उसके ऊपर दूसरा और उसके ऊपर पहला क्रम चढ़ाया जाता है। प्रतिकर्ण के ऊपर तीन क्रम चढाने का लिखा है, वहां नीचे की प्रथम पंक्ति में तीसरा, उसके ऊपर दूसरा और उसके ऊपर प्रथम, उपरथ के ऊपर दो क्रम चढाने का लिखा हो वहां पहला क्रम दूसरा, उसके ऊपर पहला क्रम चढाना चाहिये। देखिये अपराजित पृच्छासूत्र के पुष्पकादि प्रासादों की जाति। ऐसा शास्त्रीय नियम के अनुसार नहीं करने से शिल्परत्नाकर के अष्टम रत्न में जिनप्रासादों का स्वरूप लिखा है—उसमें शृंगों की क्रम संख्या बराबर नहीं मिलती है, उसकी कोपी हु

कोपी दीपार्णव के सम्पादक ने की है जिसे उसमें तो जिनप्रासादों के शृंगों की क्रम संख्या मिले ही कहां से यह उतना ही नहीं सूत्र के नियमानुसार भी शृंगों की क्रम संख्या बराबर नहीं मिलती ।

बड़े हर्ष का विषय है कि भारतीय प्राचीन संस्कृतिके साहित्यका भारतीय भाषा में प्रथम बार ही हिन्दी साहित्य की पूर्तिरूप प्रकाशित हो रहा है । मैंने कई वर्ष तक इस विषय के अनेक ग्रंथों का मनन पूर्वक अध्ययन करके तथा शिल्पीवर्ग के सहयोग से प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करके, एवं प्राचीन देवालयों और ईमारतों का अवलोकन करके इस ग्रंथ को यथार्थ रूप में आप सज्जनों के सामने उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

इस ग्रंथ में जो विषय कम मालुम होता था, उसको दूसरे ग्रंथों से लेकर यथा स्थान रखा गया है और जिसके अनुवाद में शंकास्पद मालुम होता था, इसकी स्पष्टता करने के लिये दूसरे ग्रंथों का प्रमाण भी दिया गया है । पुनः इस विषय का अध्ययन करने वाले अच्छी तरह समझ सके इस पर पूर्ण ध्यान रखा गया है । तथा पारिभाषिक शब्दों का अर्थ हिन्दी भाषा में पूर्णरूप से प्राप्त नहीं होने से मूलभाषा (संस्कृत) में ही रखा गया है । जिसे सार्वदेशीय अध्ययन करनेवाले को अनुकूलता हो सकेगी । आशा करता हूं कि इस विषय का अध्ययन करके कोई विषय की भूल मालुम होवे तो सूचित करने की कृपा करेंगे ।

प्रारंभिक अभ्यास के समय बीस वर्ष पहले परमजैन चंद्रांगज ठक्कुर 'फेरु' विरचित 'वत्थुसारपयरण' अर्थात् वास्तुसार प्रकरण नामक का प्राकृत शिल्प ग्रंथ को अनुवाद पूर्वक मैंने छपवाया था, उसमें कई एक जगह मेन मंडोवर आदि की भूल दृष्टिगोचर होती है, उसको इस ग्रंथ से सुधार करके पढ़ने की कृपा करें ।

अथाग परिश्रम करके इस ग्रंथ की विस्तृत भूमिका लिखने की कृपा की है, उन श्रीमान् सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल 'अध्यक्ष कला और वास्तु विभाग, काशी विश्वविद्यालय' का धन्यवाद पूर्वक आभार मानता हूं । एवं इसके अनुवाद की कितनेक भाषा दोषों को सुधार करके सुन्दर छाप काम कर देने वाले अजंता प्रिंटर्स के अध्यक्ष महोदय का भी आभार मानना भूला नहीं जाता ।

सज्जनों से प्रार्थना है कि—मेरी मातृभाषा गुजराती होने से अनुवाद में भाषादोष अवश्य रहा होगा, उसको क्षमाप्रदान करते हुए सुधार करके पढ़े ऐसी विनम्र प्रार्थना है । इति शुभम् ।

फागुण शुकला ५ गुरुवार सं० २०१९
जयपुर सिटी (राजस्थान)

भगवानदास जैन

सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० वासुदेवशरणजी अग्रवाल 'अध्यक्ष-कला वास्तु विभाग, काशी विश्वविद्यालय' द्वारा लिखी हुई गुजराती अनुवाद वाला प्रासाद मण्डन की—

भूमिका

जयपुर के श्री पं० भगवानदास जैन उन चुने हुए विद्वानों में से हैं, जिन्होंने भारतीय स्थापत्य और वास्तु शिल्प के अध्ययन में विशेष परिश्रम किया है। सन् १६३६ में ठक्कुरफेरु विरचित 'वास्तु-सार-प्रकरण' नामक वास्तु संबंधी महत्वपूर्ण प्राकृत ग्रन्थ को मूल हिन्दी भाषान्तर और अनेक चित्रों के साथ उन्होंने प्रकाशित किया था। उस ग्रन्थ को देखते ही मुझे निश्चय हो गया कि पं० भगवानदास ने परम्परागत भारतीय शिल्प के पारिभाषिक शब्दों को ठीक प्रकार समझा है और उन पारिभाषाओं के आधार पर वे मध्य कालीन शिल्प-ग्रन्थों के सम्पादन और व्याख्यान के सर्वथा अधिकारी विद्वान् हैं। शिल्प शास्त्र के अनुसार निर्मित मन्दिरों या देव प्रासादों के वास्तु की भी वे बहुत अच्छी व्याख्या कर सकते हैं, इसका अनुभव मुझे तब हुआ जब कई वर्ष पूर्व उन्हें साथ लेकर मैं आमेर के भव्य मन्दिरों को देखने गया और वहां पण्डितजी ने प्रासाद के उत्सेध या उदय संबंधी भिन्न भिन्न भागों का प्राचीन शब्दावली के साथ विवेचन किया। इस प्रकार की योग्यता रखने वाले विद्वान् इस समय विरल ही हैं। भारतीय-शिल्प-शास्त्र के जो अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं उनकी प्राचीन शब्दावली से मिलाकर यथावधि विद्यमान मंदिरों के वास्तु-शिल्प की व्याख्या, यह एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। जिस की पूर्ति वर्तमान समय में भारतीय स्थापत्य के सुस्पष्ट अध्ययन के लिये आवश्यक है। श्री पं० भगवानदास जैन इस ओर अग्रसर है, इसका महत्वपूर्ण प्रमाण उनका ऊपर किया हुआ 'प्रासाद-मण्डन' का वर्तमान गुजराती अनुवाद है। इसमें मूल ग्रन्थ के साथ गुजराती व्याख्या और अनेक टिप्पणियां दी गई हैं और साथ में विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक चित्र भी मुद्रित है।

'सूत्रधार मंडन' के विषय में हमें निश्चित जानकारी प्राप्त होती है।[1] वे चित्तौड़ के राणा कुंभकर्ण या कुम्भा (१४३३-१४६८ ई०) राज्यकाल में हुए। राणा कुम्भा ने अपने राज्य में अनेक प्रकार से संस्कृति का संवर्धन किया। संगीत की उन्नति के लिए उन्होंने अत्यन्त विशाल 'संगीत-राज' ग्रंथ का प्रणयन किया। सौभाग्य से यह ग्रन्थ सुरक्षित है और इस समय हिन्दू विश्व विद्यालय की ओर से इसका मुद्रण हो रहा है। राणा कुम्भा ने कवि जयदेव के गीत गोविन्द पर स्वयं एक उत्तम टीका लिखी। उन्होंने ही चित्तौड़ में सुप्रसिद्ध कीर्तिस्तंभ का निर्माण कराया। उनके राज्य में कई प्रसिद्ध शिल्पी थे। उनके द्वारा राणा ने अनेक वास्तु और स्थापत्य के कार्य संपादित कराए। 'कीर्तिस्तम्भ' के निर्माण का कार्य सूत्रधार 'जइता' और उसके दो पुत्र सूत्रधार नापा और पूंजा ने १४४२ से १४४८ तक के समय में पूरा

१—श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल, १५ वीं शती में मेवाड़ के कुछ प्रसिद्ध सूत्रधार और स्थपति सम्राट् (Some Famous Sculptors & Architects of Mewar—15th. century A. D.) इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, भाग ३३, अंक ४, दिसम्बर १६५७ पृ० ३२१—३३४

किया। इस कार्य में उसके दो अन्य पुत्र नाथा और बलराज भी उसके सहायक थे। राणा कुम्भा के अन्य प्रसिद्ध राजकीय स्थपति सूत्रधार मण्डन हुए। ये संस्कृत भाषा के भी अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने निम्न लिखित शिल्प ग्रन्थों की संस्कृत में रचना की—

प्रासाद मण्डन, वास्तु मण्डन, रूप मण्डन, राज-वल्लभ मण्डन, देवता मूर्ति प्रकरण, रूपावतार, वास्तुसार, वास्तु-शास्त्र। राजवल्लभ ग्रन्थ में उन्होंने अपने संरक्षक सम्राट् राणा कुम्भा का इस प्रकार गौरव के साथ उल्लेख किया है—

"श्रीमेदपाटे नृपकुम्भकर्ण—स्तदंघ्रिराजीवपरागसेवी।
समण्डनाख्यो भुवि सूत्रधारस्तेनोद्धृतो भूपतिवल्लभोऽयम्।"
(१४—४३)

रूपमण्डन ग्रन्थ में सूत्रधार मण्डन ने अपने विषय में लिखा है—

"श्रीमद्देशे मेदपाटाभिधाने क्षेत्राख्योऽभूत् सूत्रधारी वरिष्ठः।
पुत्रो ज्येष्ठो मण्डनस्तस्य तेन प्रोक्तं शास्त्रं मण्डनं रूपपूर्वम्।"
(६—४०)

इससे ज्ञात होता है कि मण्डन के पिता का नाम सूत्रधार क्षेत्र था। इन्हें ही अन्य लेखों में क्षेत्राक भी कहा गया है। क्षेत्राक का एक दूसरा पुत्र सूत्रधार नाथ भी था जिसने 'वास्तु मंजरी' नामक ग्रन्थ की रचना की। सूत्रधार मण्डन का ज्येष्ठ पुत्र सूत्रधार गोविन्द और छोटा पुत्र सूत्रधार ईश्वर था। सूत्रधार गोविन्द ने तीन ग्रन्थों की रचना की—उद्धार धोरणि, कलानिधि और द्वारदीपिका। कलानिधि ग्रन्थ में उसने अपने विषय में और अपने संरक्षक राणा श्री राजमल्ल (रायमल्ल) के विषय में लिखा है—

"सूत्रधारः सदाचारः कलाधारः कलानिधिः।
दक्षाधारः सुरागारः श्रिये गोविन्दयाविशत्॥
राणा श्री राजमल्ले (न) श्रीलक्ष्यामि (ति) मनोहरे।
प्रणम्यमाने प्रासादे गोविन्दः संव्यधादिदम्॥"
(विक्र. सं. १५५४)

राणा कुंभा की पुत्री रमा बाई का एक लेख (विक्रम सं. १५५४) जावर से प्राप्त हुआ है जिसमें क्षेत्राक के पौत्र और सूत्रधार मण्डन के पुत्र ईश्वर ने [1]कमठाणा बनाने का उल्लेख है—

"श्रीमेदपाटे वरे देशे कुम्भकर्णनृपगृहे क्षेत्राकसूत्रधारस्य पुत्रो मण्डन आत्मवान् सूत्रधारमण्डन सुत ईश्वरए कमठाणु विरचितं।"

ईश्वर ने जावर में विष्णु के मन्दिर का निर्माण किया था। इसी ईश्वर का पुत्र सूत्रधार छीतर था जिसका उल्लेख विक्रम सं. १५५६ (१४९९ ई.) के चितौड़ से प्राप्त एक लेख में आया है। यह राणा राय-

---

१—गृह और देवालय आदि इमारती काम को अभी भी राजस्थानीय शिल्पी 'कमठाणा' बोलते हैं।

मण्डन के समय में उनका राजकीय ख्याति था। इससे विदित होता है कि राणा कुंभा के बाद भी सूत्रधार मण्डन के वंशज राजकीय शिल्पियों के रूप में कार्य करते रहे। उन्होंने ही उदयपुर के प्रसिद्ध जगदीश मंदिर और उदयपुर से चालीस मील दूर कांकरोली में बने हुए राज समुद्र सागर का निर्माण किया।

राणा कुंभा के राज्य काल में राणकपुर में सूत्रधार देपाक ने विक्रम सं. १४९६ (१४३९ ई.) में सुप्रसिद्ध जैन मन्दिर का निर्माण किया। कुंभा की पुत्री रमा बाई ने कुंभलगढ़ में दामोदर मंदिर के निर्माण के लिए सूत्रधार रामा को नियुक्त किया। सूत्रधार मण्डन को राणा कुंभा का पूरा विश्वास प्राप्त था। उन्होंने कुंभलगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग की वास्तु–कल्पना और निर्माण का कार्य सूत्रधार मण्डन को सं. १५१५ (१४५८ई.) में सौंपा। यह प्रसिद्ध दुर्ग आज भी अधिकांश में सुरक्षित है और मण्डन की प्रतिभा का साक्षी है। उदयपुर से १४ मील दूर एकलिंग जी नामक भगवान् शिव का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। उसी के समीप एक अन्य विष्णु मन्दिर भी है। श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल का अनुमान है कि उसका निर्माण भी सूत्रधार मण्डन ने ही किया था। उस मंदिर की भित्तियों के बाहर की ओर तीन रथिकाएं हैं। उनमें नृसिंह वराह–विष्णुमुखी तीन मूर्तियां स्थापित हैं। उनकी रचना रूप मण्डन ग्रंथ में वर्णित लक्षणों के अनुसार ही की गई है। एक अष्टभुजी मूर्ति भगवान् वैकुण्ठ की है। दूसरी द्वादशभुजी मूर्ति भगवान् अनंत की है और तीसरी सोलह हाथों वाली मूर्ति त्रैलोक्य मोहन की है इनके लक्षण सूत्रधार मण्डन ने अपने रूपमण्डन ग्रंथ के तीसरे अध्याय में (श्लोक ५२–६२ दिये हैं।[1]

इनके अतिरिक्त सूत्रधार मण्डन ने और भी कितनी ही ब्राह्मण धर्म संबंधी देव मूर्तियां बनाई थीं। उपलब्ध मूर्तियों की चौकियों पर लेख उत्कीर्ण हैं। जिनमें मूर्ति का नाम राणा कुंभा का नाम और सं. १५१५–१५१६ की निर्माण तिथि का उल्लेख है। ये मूर्तियां लगभग कुंभलगढ़ दुर्ग के साथ ही बनाई गई थीं। तब तक दुर्ग में किसी मंदिर का निर्माण नहीं हुआ था, अतएव वे एक वट वृक्ष के नीचे स्थापित कर दी गई थीं। इस प्रकार की छः मातृका मूर्तियां उदयपुर के संग्रहालय में विद्यमान हैं जिन पर इस प्रकार लेख हैं—

"स्वस्ति श्री सं० १५१५ वर्षे तथा शाके १३८० प्रवर्त माने फाल्गुन शुदि १२ बुधे पुष्य नक्षत्रे श्री कुंभल मेरु महादुर्गे महाराजाधिराज श्री कुंभकर्ण पृथ्वी पुरन्दरेण श्री ब्रह्माणी मूर्तिः अस्मिन् वटे स्थापिता। शुभं भवतु ।। श्री ।।"

इसी प्रकार के लेख माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही और ऐन्द्री मूर्तियों की चरण चौकियों पर भी है। इसी प्रकार चतुर्विंशति वर्ग की विष्णु मूर्तियों का भी रूप मण्डन में (अध्याय ३,श्लोक १०–२२) विशद वर्णन आया है। उनमें से १२ मूर्तियां कुंभलगढ़ से प्राप्त हो चुकी हैं जो इस समय उदयपुर के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। ये मूर्तियां भगवान विष्णु के संकर्षण, माधव, मधुसूदन, अधोक्षज, प्रद्युम्न, केशव, पुरुषोत्तम, अनिरुद्ध, वासुदेव, दामोदर जनार्दन और गोविन्द रूप की हैं। इनकी चौकियों पर इस प्रकार लेख हैं—

"सं० १५१६ वर्षे शाके १३८२ वर्त्तमाने आश्विन शुद्ध ३ श्री कुंभमेरौ महाराज श्री कुंभकर्णेन वटे संकर्षण मूर्ति संस्थापिता शुभं भवतु ।।[2]"

१—दे० रत्नचन्द्र अग्रवाल, राजस्थान की प्राचीन मूर्तिकला में महाविष्णु संबंधी कुछ पत्रिकाएं, शोधपत्रिका, उदयपुर, भाग ९, अंक १ (पौष, वि० सं० २०१४) पृ० ९, १४, १७।

२— रत्नचन्द्र अग्रवाल रूप मण्डन तथा कुंभलगढ़ से प्राप्त महत्वपूर्ण प्रस्तर प्रतिमाएं, शोध पत्रिका. भाग ८ अंक ३ (पौष, वि० सं० २०१४), पृ० १—१२

इन सब मूर्तियों की रचना रूप मण्डन ग्रन्थ में वर्णित लक्षणों के अनुसार यथार्थतः हुई है। स्पष्ट है कि सूत्रधार मण्डन शास्त्र और प्रयोग दोनों के निपुण अभ्यासी थे। शिल्प शास्त्र में वे जिन लक्षणों का उल्लेख करते थे उन्हीं के अनुसार स्वयं या अपने शिष्यों द्वारा देव मूर्तियों की रचना भी कराते जाते थे।

किसी समय अपने देश में सूत्रधार मण्डन जैसे सहस्रों की संख्या में लब्ध कीर्ति स्थपति और वास्तु विद्याचार्य हुए। एलोरा के कैलाश मन्दिर, खजुराहो के कंदरिया महादेव, भुवनेश्वर के लिङ्गराज, तंजौर के बृहदीश्वर, कोणार्क के सूर्यदेउल आदि एक से एक भव्य देव प्रासादों के निर्माण का श्रेय जिन शिल्पाचार्यों की कल्पना में स्फुरित हुआ और जिन्होंने अपने कार्य कौशल से उन्हें मूर्त रूप दिया वे सचमुच धन्य थे और उन्होंने ही भारतीय संस्कृति के मार्ग-दर्शन का शाश्वत कार्य किया।

उन्हीं की परम्परा में सूत्रधार मण्डन भी थे। देव-प्रासाद एवं गृह मंदिर आदि के निर्माण कर्ता सूत्रधारों का कितना अधिक सम्मानित स्थान था यह मण्डन के निम्न लिखित श्लोक से ज्ञात होता है—

"इत्यनन्तरतः कुर्यात् सूत्रधारस्य पूजनम्।
भूवित्तवस्त्रालङ्कारै-र्गोमहिष्यश्ववाहनैः॥
अन्येषां शिल्पिनां पूजा कर्त्तव्या कर्मकारिणाम्।
स्वाधिकारानुसारेण वस्त्रताम्बूलभोजनैः॥
काष्ठपाषाणनिर्माण-कारिणो यत्र मन्दिरे।
भुङ्क्तेऽसौ तत्र सौख्यं शङ्करस्त्रिदशैः सह॥
पुण्यं प्रासादजं स्वामी प्रार्थयेत्सूत्रधारतः।
सूत्रधारो वदेत् स्वामिन्नक्षयं भवतात्तव॥"
प्रासादमण्डनः ८. ८२–८५

अर्थात् निर्माण की समाप्ति के अनन्तर सूत्रधार का पूजन करना चाहिये और अपनी शक्ति के अनुसार भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, अलङ्कार के द्वारा प्रधान सूत्रधार एवं उसके सहयोगी अन्य शिल्पियों का सम्मान करना आवश्यक है।

जिस मन्दिर में शिला या काष्ठ द्वारा निर्माण कार्य करने वाले शिल्पी भोजन करते हैं वहीं भगवान् शंकर देवों के साथ विराजते हैं। प्रासाद या देव मन्दिर के निर्माण में जो पुण्य है उस पुण्य की प्राप्ति के लिये सूत्रधार से प्रार्थना करनी चाहिए, 'हे सूत्रधार, तुम्हारी कृपा से प्रासाद निर्माण का पुण्य मुझे प्राप्त हो।' इसके उत्तर में सूत्रधार कहे—हे स्वामिन्! सब प्रकार आप की अक्षय वृद्धि हो।

सूत्रधार के प्रति सम्मान प्रदर्शन की यह प्रथा लोक में आजतक जीवित है, जब सूत्रधार शिल्पी नूतन गृह का द्वार रोककर स्वामी से कहता है 'आजतक यह गृह मेरा था, अब आज से यह तुम्हारा हुआ।' उसके अनन्तर गृह स्वामी सूत्रधार को इष्ट-वस्तु देकर प्रसन्न करता है और फिर गृह में प्रवेश करता है।

सूत्रधार मण्डन का प्रासाद-मण्डन ग्रन्थ भारतीय शिल्प ग्रन्थों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मण्डन ने आठ अध्यायों में देव-प्रासादों के निर्माण का स्पष्ट और विस्तृत वर्णन किया है। पहले अध्याय में विश्वकर्मा को सृष्टि का प्रथम सूत्रधार कहा गया है। गृहों के विन्यास और प्रवेश की जो धार्मिक विधि

है, उस सब का पालन देवायतनों में भी करना उचित है। चतुर्दश श्लोकों में जिन जिन प्रासादों के आकार देवों ने शंकर की पूजा के लिए बनाये उन्हीं की अनुकृति पर १४ प्रकार के प्रासाद प्रचलित हुए। उनमें देश–भेद से ८ प्रकार के प्रासाद उत्तम जाति के माने जाते हैं—

नागर, द्राविड़, भूमिज, लतिन, सावन्धार (सान्धार), विमान–नागर, पुष्पक और मिश्र। लतिन सम्भवतः उस प्रकार के शिखर को कहते थे जिसके उरःशृंग में लता की आकृति का उठता हुआ रूप बनाया जाता था। शिखरों के ये भेद विशेषकर शृंग और तिलक नामक अलंकरणों के विभेद के कारण होते हैं।

प्रासाद के लिए भूमि का निरूपण आवश्यक है। जो भूमि चुनी जाय उसमें ६४ या सौ पद का घर बनाने चाहिए। प्रत्येक घर का एक–एक देव होता है जिसके नाम से वह पद पुकारा जाता है। मंदिर के निर्माण में नक्षत्रों के शुभाशुभ का भी विचार किया जाता है। यहां तक कि निर्माण कर्ता के अतिरिक्त स्थापक अर्थात् स्थपति और जिस देवता का मन्दिर हो उसके भी नवाङ्ग नाड़ी वेध का मिलान आवश्यक माना गया है। काष्ठ, मिट्टी, ईंट, शिला, धातु और रत्न इन उपकरणों से मंदिर बनाए जाते हैं इनमें उत्तरोत्तर का अधिक पुण्य है। पत्थर के प्रासाद का फल अनंत कहा गया है। भारतीय देव प्रासाद अत्यन्त पवित्र कल्पना है। विश्व को जन्म देने वाले देवाधिदेव भगवान का निवास देवगृह या मंदिर में माना जाता है। जिसे वेदों में हिरण्यगर्भ कहा गया है। वही देव मंदिर का गर्भगृह है। सृष्टि का मूल जो प्राण तत्व है उसे ही हिरण्य कहते हैं। प्रत्येक देव प्राणतत्व है' वही हिरण्य है; "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" के अनुसार एक ही देव अनेक देवों के रूप में अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक देव हिरण्य की एक-एक कला है अर्थात् मूल-भूत प्राण तत्त्व की एक-एक रश्मि है। मन्दिर का जो उत्सेध या ब्रह्म सूत्र है वही समस्त सृष्टि का मेरु या यूप है। उसे ही वेदों में 'वाण' कहा गया है। एक बाण वह है जो स्थूल दृश्य सृष्टि का आधार है और जो पृथिवी से लेकर द्युलोक तक प्रत्येक वस्तु में ओत-प्रोत है। द्यावा पृथिवी को वैदिक परिभाषा में रोदसी ब्रह्माण्ड कहते हैं। इस रोदसी सृष्टि में व्याप्त जो ब्रह्मसूत्र है वही इसका मूलाधार है। उसे ही वैदिक भाषा में 'अक्षवा' भी कहा जाता है। वाण, अक्षवा, मेरु, ब्रह्मसूत्र ये सब समानार्थक है और इस दृश्य जगत् के उस आधार को सूचित करते हैं जिस ध्रुव बिन्दु पर प्रत्येक प्राणी अपने जीवन में जन्म से मृत्यु तक प्रतिष्ठित रहता है। यह मनुष्य शरीर और इसके भीतर प्रतिष्ठित प्राणतत्व विश्वकर्मा की सबसे रहस्यमयी कृति है। देव मन्दिर का निर्माण भी सर्वथा इसी की अनुकृति है। जो चेतना या प्राण है। वही देव-विग्रह या देव मूर्ति है और मन्दिर उसका शरीर है प्राण प्रतिष्ठा से पाषाणघटित प्रतिमा देवत्व प्राप्त करती है। जिस प्रकार इस प्रत्यक्ष जगत् में भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौः, तीन लोक हैं, उसी प्रकार मनुष्य शरीर में और प्रासाद में भी तीन लोकों की कल्पना है। पैर पृथिवी है, मध्यभाग अन्तरिक्ष है और सिर द्युलोक है। इसी प्रकार मन्दिर की जगती या अधिष्ठान पादस्थानीय है, गर्भगृह या मण्डोवर मध्यस्थानीय है और शिखर द्युलोक या शीर्ष-भाग है। यह त्रिक यज्ञ की तीन अग्नियों का प्रतिनिधि है। मूल भूत एक अग्नि सृष्टि के लिए तीन रूपों में प्रकट हो रही है। उन्हें ही उपनिषदों की परिभाषा में मन, प्राण और वाक् कहते हैं। यहां वाक् का तात्पर्य पंचभूतों से है क्योंकि पंचभूतों में आकाश सबसे सूक्ष्म है और आकाश का गुण शब्द या वाक् है। अतएव वाक् को आकाशादि पांचों भूतों का प्रतीक मानलिया गया है। मनुष्य शरीर में जो प्राणाग्नि है वह मन, प्राण और पंचभूतों के मिलने से उत्पन्न हुई है (एतन्मयो वाऽयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः शतपथ १४।४।३।१०) पुरुष के भीतर प्रज्वलित इस अग्नि को ही वैश्वानर कहते हैं (स एषोऽग्निर्वैश्वानरो यत्पुरुषः, शतपथ १०।६।१।११)। जो वैश्वानर अग्नि है वही पुरुष है जो पुरुष है वही देव–विग्रह या देवमूर्ति के रूप में दृश्य होता है। मूर्त और अमूर्त, निरुक्त और अनिरुक्त ये प्रजापति के दो रूप हैं।

मूर्त है वह त्रिलोकी के रूप में दृश्य और परिमित है। जो अमूर्त है वह अव्यक्त और अपरिमित है। जिसे पुरुष के रूप में वैश्वानर कहा जाता है वही समष्टि के रूप में पृथिवी अंतरिक्ष और द्युलोक रूपी त्रिलोकी है।

"स यः स वैश्वानरः। इमे स लोकाः। इयमेव
पृथिवी विश्वमग्निर्नरः। अंतरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरः।
द्यौरेव विश्वमादित्यो नरः। शतपथ ९।३।१।३।"

इस प्रकार मनुष्य देह, अखिल ब्रह्माण्ड और देव प्रासाद इन तीनों का स्वरूप सर्वथा एक—दूसरे के साथ संतुलित एवं प्रतीकात्मक है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है और जो उन दोनों में है उसीका मूर्तरूप देव–प्रासाद है। इसी सिद्धान्त पर भारतीय देव–मंदिर की प्रमुख कल्पना हुई है। मंदिर के गर्भ गृह में जो देव विग्रह है वह उस अनादि अनन्त ब्रह्म तत्व का प्रतीक है जिसे वैदिक भाषा में प्राण कहा गया है। जो सृष्टि से पूर्व में भी था, जो विश्व के रोम–रोम में व्याप्त है, वही प्राण सबका ईश्वर है। सब उसके वश में हैं। सृष्टि के पूर्व की अवस्था में उसे असत् कहा जाता है और सृष्टि की अवस्था में उसे ही सत् कहते हैं। देव और भूत ये ही दो तत्व हैं जिनसे समस्त विश्व विरचित है। देव, अमृत, ज्योति और सत्य है। भूत मर्त्य, तम और अनृत है। भूत को ही असुर कहते हैं। हम सबकी एक ही समस्या है। अर्थात् मृत्यु, तम और असत्य से अपनी रक्षा करना और अमृत, ज्योति एवं सत्य की शरण में जाना। यही देव का आश्रय है। देव की शरणागति मनुष्य के लिए रक्षा का एक मात्र मार्ग है। यहाँ कोई प्राणी ऐसा नहीं जो मृत्यु और अन्धकार से बचकर अमृत और प्रकाश की आकांक्षा न करता हो अतएव देवाराधन ही मर्त्य मानव के लिये एकमात्र श्रेयपथ है। इस तत्व से ही भारतीय संस्कृति के वैदिक युग में यज्ञ संस्था का जन्म हुआ। प्राणाग्नि की उपासना ही यज्ञ का मूल है। त्रिलोकी या रोदसी ब्रह्माण्ड की मूलभूत शक्ति को रुद्र कहते हैं। 'अग्निर्वैरुद्रः' इस सूत्र के अनुसार जो प्राणाग्नि है वही रुद्र है। 'एक एवाग्निर्बहुधा समिद्धः' इस वैदिक परिभाषा के अनुसार जिस प्रकार एक मूलभूत अग्नि से अन्य अनेक अग्नियों का समिन्धन होता है उसी प्रकार एक देव अनेक देवों के रूप में लोक मानस की कल्पना में आता है। कौन देव महिमा में अधिक है, यह प्रश्न ही असंगत है। प्रत्येक देव अमृत का रूप है। वह शक्ति का अनन्त अक्षय स्रोत है। उसके विषय में उत्तर और अधर या बड़े–छोटे के तारतम्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

देव तत्व मूल में अव्यक्त है। उसे ही ध्यान की शक्ति से व्यक्त किया जाता है। हृदय की इस अद्भुत शक्ति को ही प्रेम या भक्ति कहते हैं। यज्ञ के अनुष्ठान में और देवप्रासादों के अनुष्ठान में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार यज्ञ को त्रिभुवन की नाभि कहा जाता था और उसकी अग्नि जिस वेदि में प्रज्वलित होती थी उस वेदि को अनादि अनंत पृथ्वी का केन्द्र मानते थे, उसी प्रकार देव मन्दिर के रूप में समष्टि विश्व व्यष्टि के लिये मूर्त बनता है और जो समष्टि का सहस्र शीर्षा पुरुष है वह व्यष्टि के लिये देव–विग्रह के रूप में मूर्त होता है। यज्ञों के द्वारा देव तत्व की उपासना एवं देव प्रासादों के द्वारा उसी देव तत्व की आराधना ये दोनों ही भारतीय संस्कृति के समान प्रतीक थे। देव मंदिर में जो मूर्त विग्रह की प्रदक्षिणा या परिक्रमा की जाती है उसका अभिप्राय भी यही है कि हम अपने आप को उस प्रसाद–क्षेत्र में लीन कर देते हैं जिसे देव की महान् प्राणशक्ति या महिमा कहा जा सकता है। उपासना या आराधना का मूलतत्व यह है कि मनुष्य स्वयं देव हो जाय। जो स्वयं अदेव है अर्थात् देव नहीं बन पाता वह देव को पूजा नहीं कर सकता। मनुष्य के भीतर प्राण और मन ये दोनों देव रूप ही हैं। इनमें दिव्य भाव उत्पन्न करके ही प्राणी देव की उपासना के योग्य बनता है।

जो देव तत्त्व है वही वैदिक भाषा में अग्नि तत्त्व के नाम से अभिहित किया जाता है। कहा है— 'अग्निः सर्वा देवता' अर्थात् जितने देव हैं अग्नि सबका प्रतीक है। अग्नि सर्वदेवमय है। सृष्टि की जितनी दिव्य या समष्टिगत शक्तियां हैं उन सबको प्राणाग्नि इस मनुष्य देह में प्रतिष्ठित रखती है। इसी तत्त्व को लेकर देव प्रासादों के स्वरूपका विकास हुआ। जिस प्रकार यज्ञवेदी में अग्नि का स्थान है उसी प्रकार देव की प्रतिष्ठा के लिए प्रासाद की कल्पना है। देव तत्त्व के साक्षात्कार का महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक प्राणी उसे अपने ही भीतर प्राप्त कर सकता है। जो देव धावा पृथिवी के विशाल अंतराल में व्याप्त है वही प्रत्येक प्राणी के अंतःकरण में है। जैसा कालिदास ने कहा है—

'वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी,
अंतर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते ।,

अर्थात् प्राण और मन इन दो महती शक्तियों को नियम बद्ध करके अपने भीतर ही उस देवतत्व का जो सर्वत्र व्याप्त है दर्शन किया जा सकता है। इस अध्यात्म नियम के आधार पर भागवतों ने विशेषतः देव-प्रासादों के भौतिक रूप की कल्पना और उनमें से उस देवतत्व की उपासना के महत्वपूर्ण शास्त्र का निर्माण किया। विक्रम की प्रथम शताब्दी के लगभग भागवतों का यह दृष्टिकोण उभर कर सामने आ गया और तद्नुसार ही देव मंदिरों का निर्माण होने लगा।

इस सम्बन्ध में कई मान्यताएं विशेष रूप से सामने आईं। उनमें एक तो यह थी कि यद्यपि मनुष्यों की कल्पना के अनुसार देव एक है किन्तु वे सब एक ही मूल भूत शक्ति के रूप हैं और उनमें केवल नामों का अन्तर है। यह वही पुराना वैदिक सिद्धान्त था जिसे ऋग्वेद में 'यो देवानां नामधा एक एव', अथवा 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति', इन वाक्यों द्वारा कहा गया था। नामों के सहस्राधिक प्रपंच में एक सूत्रता लाते हुए भागवतों ने देवाधिदेव को विष्णु की संज्ञा दी। 'वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः', इस निर्वचन के अनुसार यह संज्ञा सर्वथा लोकप्रिय और मान्य हुई। इसी प्रकार वासुदेव आदि अनेक नामों के विषयमें भी उदारदृष्टि से इस प्रकार के निर्वचन किए गए जिनमें नामों के ऐतिहासिक या मानवीय पक्ष को गौण करके उनके देवात्मक या दिव्य पक्ष को प्रधानता मिली। उदाहरण के लिए वासुदेव शब्द की व्युत्पत्ति विष्णुपुराण में इस प्रकार है—

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ।। (१।२।१२)
सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि ।
भूतेषु च स सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः ।। (६।५।८०)

इसी को महाभारत में इस प्रकार कहा गया है—

छादयामि जगत्सर्वं भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवः ततः स्मृतः ।।
(शान्तिपर्व, ३४१।४१)

वासनात्सर्वभूतानां वसुत्वाद्देवयोनितः ।
वासुदेवस्ततो वेद्यः........................।।
उद्योगपर्व, (७०।३)

इसी उदात्त धरातल पर शंकराचार्य ने वासुदेव शब्द की इस प्रकार व्युत्पत्ति दी है—
"वसति वासयति आच्छादयति सर्वमिति वा वासुः, दीव्यति क्रीडते विजिगीषते व्यवहरति द्योतते स्तूयते गच्छतीति वा देवः । वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः ।"

(विष्णु सहस्रनाम' शाङ्कर भाष्य, ४६ श्लोक)

इस प्रकार की सरल और तरंगित मनःस्थिति भागवतों की विशेषता थी जिसके द्वारा उन्होंने सब धर्मों के समन्वय का राजमार्ग अपनाया । देव के बहुविध नामों के विषय में उनके दृष्टिकोण का सार यह था—

पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेवं सद्भावचिन्तकैः ।।

(वायु पुराण, ४।४५)

अर्थात् समस्त सृष्टि का जो एक आदि कारण है, जिससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है, ऐसे उस एक तत्त्व को ही तत्त्ववेत्ता अनेक पर्यायवाची शब्दों से कहते हैं । इस सुन्दर दृष्टिकोण के कारण समन्वय और सम्प्रीति के धर्माम्बु मेघ भारतीय महाप्रजा के ऊपर उस समय अभिवृष्ट हुए जब देव–प्रासादों के रूप में संस्कृति का नूतन विकास हुआ । बौद्ध, जैन और हिन्दू मंदिरों में पारस्परिक स्पर्धा या तनाव की स्थिति न थी किन्तु वे सब एक ही धार्मिक प्रेरणा और स्फूर्ति को मूर्तरूप दे रहे थे । गुप्त कालीन भागवती संस्कृति का यह विशाल नेत्र था जिसके द्वारा प्रजाएं अपने–अपने इष्टदेव का अभिलषित दर्शन प्राप्त कर रही थीं ।

मानवी देह के साथ देव तत्त्व के जिस घनिष्ठ संबंध का उल्लेख ऊपर किया गया है उसका दूसरा प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि देवालय की कल्पना भी मानुषी देह के अनुसार ही की गई । मानुषी शरीर के जो अंग–प्रत्यंग हैं उन्हीं के अनुसार देव मंदिरों के मूर्तरूप का विधान निश्चित हुआ । किसी समय 'पुरुषविधो वै यज्ञः' अर्थात् 'जैसा पुरुष वैसा ही यज्ञ का स्वरूप' यह सिद्धान्त मान्य था । उसी को ग्रहण करते हुए 'पुरुषविधो वै प्रासादः,' अर्थात् जैसा पुरुष वैसा ही देव मन्दिर का वास्तुगत स्वरूप, यह नया सिद्धान्त मान्य हुआ । पाद, खुर, जङ्घा, गर्भगृह, मंडोवर, स्कंध, शिखर, ग्रीवा, नासिका, मस्तक, शिखा आदि प्रासाद संबन्धी शब्दावली में मनुष्य और प्रासाद की पारस्परिक अनुकृति सूचित होती है ।

देव–प्रासादों के निर्माण की तीसरी विशेषता यह थी कि समाज में कर्मकाण्ड की जो गहरी धार्मिक भावना थी वह देव पूजा या अर्चा के रूप में ढल गई । प्रत्येक मन्दिर उस–उस क्षेत्र के लिए धर्म का मूर्त रूप समझा गया । भगवान विष्णु अथवा अन्य देव का जो विशिष्ट सौन्दर्य था उसे ही उस–उस स्थान की प्रजाएं अपने अपने देवालयों में मूर्त करने का प्रयत्न करती थीं । दिव्य अमूर्त सौन्दर्य को मूर्त रूप में प्रत्यक्ष करने का सबल प्रयत्न दिखाई दिया । सुन्दर मूर्ति और मन्दिरों के रूप में ऐसा प्रतिभासित होता था कि मानों स्वर्ग के सौन्दर्य को प्रतिबिंब के माध्यम साक्षात् देख रहे हों । जन समुदाय की सम्मिलित शक्ति और राजशक्ति दोनों का सदुपयोग अनेक सुन्दर देव मन्दिरों के निर्माण में किया गया । यह धार्मिक भावना उत्तरोत्तर बढ़ती गई और एक युग ऐसा आया जब प्रतापी राष्ट्रकूट जैसे सम्राटों का वैभव ऐलोरा के कैलाश सदृश देव मन्दिरों में प्रत्यक्ष समझा जाने लगा । एक–एक मंदिर मानों एक एक सम्राट के सर्वाधिक उत्कर्ष और समृद्धि का प्रकट रूप था । जब लोक में इस प्रकार की भावना सिद्ध हुई तभी मध्यकाल में उस प्रकार के विशाल मंदिर बन सके जिनका वर्णन समरांगणसूत्रधार एवं अपराजित पृच्छा ऐसे ग्रंथों में पाया जाता है । उन्हीं के वास्तु शिल्प की परम्परा सूत्रधार मण्डन के ग्रंथ में भी पाई जाती है ।

मन्दिर या प्रासाद को देवता का आवास माना गया। तब यह कल्पना हुई कि देवता के स्थान पर निरंतर असुरों की वक्र दृष्टि रहती है। अतएव असुरों के निवारण या शांति के लिए पूजा-पाठ करना आवश्यक है। प्रासाद-मंडन में इस प्रकार के चौदह शान्ति कर्म या शान्तिक कहे गये हैं। यथा (१) जिस दिन भूमि परीक्षा करने के लिए उसमें खातकर्म किया जाय, (२) जिस दिन कूर्म शिला की स्थापना की जाय; (३) जिस दिन शिलान्यास किया जाय; (४) जिस दिन तल निर्माण या तल-विन्यास के लिए सूत्र-मापन या सूत्र-पातन (सूत्र-छोड़ना) द्वारा थरों के निशान लगाए जाय; (५) जिस दिन सबसे नीचे के थर का पहला पत्थर, जिसे खुर-शिला कहते हैं (फारसी पत्थर खाकन्दाज) रक्खा जाय; (६) जिस दिन मन्दिर द्वार की स्थापना की जाय; (७) जिस दिन मंडप के मुख्य स्तम्भ की स्थापना की जाय; (८) जिस दिन मंडप के स्तम्भों के ऊपर भारपट्ट रक्खा जाय; (९) जिस दिन शिखर की चोटी पर पद्मशिला रक्खी जाय; (१०) जिस दिन गर्भ गृह के शिखर के लगभग बीच में शुकनासा या नासिका की ऊंचाई तक पहुंच कर झंपा सिंह की स्थापना की जाय; (११) जिस दिन शिखर पर हिरण्मय प्रासाद-पुरुष की स्थापना की जाय; (१२) जिस दिन घण्टा या गुम्मट पर आमलक रक्खा जाय; (१३) जिस दिन आमलसार शिला के ऊपर कलश की स्थापना की जाय; (१४) और जिस दिन कलश के बराबर मंदिर पर ध्वजा रोपण किया जाय। इनमें संख्या २ और संख्या ३ को कुछ लोग अलग मानते हैं किन्तु य द कूर्मशिला को एक ही पद माना जाय तो उनकी सूची में केवल १३ शान्ति कर्म होते हैं और तब चौदहवां शान्तिक देव-प्रतिष्ठा के अवसर पर करना आवश्यक होगा (१।३७-३८)

प्रासाद के गर्भ गृह की माप एक हाथ से पचास हाथ तक कही गई है। कुंभक या जाड्य-कुंभ या जाड्मा का निकास इसके अतिरिक्त गर्भ गृह की भित्ति के बाहर होना चाहिए। जाड्यकुंभ आदि विभिन्न थरों का निर्गम तथा पीठ एवं छज्जे के जो निर्गम हों उन्हें भी सम सूत्र के बाहर समझना चाहिए। गर्भगृह समरेखा में चौरस भी हो सकता है, किन्तु उसी में फालना या खांचे देकर प्रासाद में तीन-पांच सात या नौ विभाग किए जा सकते हैं। इसका आशय यह है कि यदि प्रासाद के गर्भगृह की लम्बाई आठ हाथ है तो दोनों ओर दो-दो हाथ के कोण भाग रख कर बीच में चार हाथ की भित्ति को खांचा देकर थोड़ा आगे निकाल दिया जा सकता है। इस प्रकार का प्रासाद तीन अंगों वाला या उड़ीसा की शब्दावली में त्रिरथ प्रासाद कहा जायगा। इसी प्रकार दो कोण, दो खांचे और एक भित्तिरथ वाला प्रासाद पंचरथ प्रासाद होता है। दो कोण, दो-दो उपरथ और एक रथ युक्त प्रासाद सप्तांग, एवं दो कोण चार-चार उपरथ एवं एक रथिका युक्त प्रासाद नवांग या नवरथ प्रासाद कहलाता है (१।८१) इन फालनाओं या खांचों के अनुसार ही प्रासाद का सम्पूर्ण उत्सेध या उदय खड़ा किया जाता है। अतएव प्रासाद रचनाओं में फालनाओं का सर्वाधिक महत्व है। खुर-शिला से लेकर शिखर के ऊपरी भाग तक जितने थर एक के ऊपर एक उठते चले जाते हैं उन सबका विभाग इन्हीं फालनाओं के अनुसार देखा जाता है। प्रासाद के एक-एक पार्श्व को उसका भद्र कहते हैं। प्रत्येक भद्र की विविध कल्पना कोण, प्रतिभद्र और बीच वाले भद्रांश पर ही निर्भर रहती है। प्रासाद की ऊंचाई में जहां-जहां फालनाओं के जोड़ मिलते हैं वहीं ऊपर से नीचे तक बरसाती पानी के बहाव के लिए बारीक नालियां काट दी जाती हैं जिन्हें वारिमार्ग या सलिलान्तर कहते हैं। भद्र, फालना (प्रतिभद्र) और कर्ण या कोण की सामान्य माप के विषय में यह नियम बरता जाता है कि भद्र चार हाथ का हो तो दोनों ओर के प्रतिभद्र या प्रतिरथ दो-दो हाथ के और दोनों कर्ण या कोण भी दो हाथ लम्बे रक्खे जाते हैं अर्थात् कर्ण और फालना से भद्र की लम्बाई दुगुनी होती है।

प्रासाद मण्डन के दूसरे अध्याय में जगती, तोरण और वेवसा के स्थापन में दिशा के नियम का विशेष उल्लेख है, प्रासाद के अधिष्ठान की संज्ञा जगती है। जैसे राजा के लिए सिंहासन वैसे ही प्रासाद के लिए जगती की शोभा कही गई है। प्रासाद के अनुरूप पांच प्रकार की जगती होती है--चतुरस्र (चौरस), आयत (लम्बा चौरस), अष्टास्र (अठ्ठंस या अठकोणी), वृत्त (गोल) और वृत्तायत (लम्बा गोल, जिसका एक सिरा गोल और दूसरा आयत होता है, इसे ही द्व्यस्र या वेसर कहते हैं)। ज्येष्ठ मध्य और कनीयसी तीन प्रकार की जगती कही गई है। जगती की ऊंचाई और लम्बाई की नाप प्रासाद के अनुसार स्थपति को निश्चित करनी चाहिए, जिसका उल्लेख ग्रन्थकार ने किया है। प्रासाद की चौड़ाई से तिगुनी चौगुनी या पांचगुनी तक चौड़ी और मण्डप से सवाई ड्यौढ़ी या दूनी लम्बी तक जगती का विधान है। जगती के ऊपर ही प्रासाद का निर्माण किया जाता है अतएव यदि प्रासाद में एक, दो या तीन भ्रमणी या प्रदक्षिणापथ रखने हों तो उनके लिए भी जगती के ऊपर ही गुंजायश रखी जाती है। जगती के निर्माण में चार, बारह, बीस, अट्ठाइस, या छत्तीस कोण युक्त फालनाओं का निर्माण सूत्रधार मण्डन के समय तक होने लगा था। जगती कितनी ऊंची हो और उसमें कितने प्रकार के गलते-थरे बनाए जांय इसके विषय में मण्डन का कथन है कि जगती की ऊंचाई के अट्ठाइस पद या भाग करके उसमें तीन पद का जाड्यकुंभ या जाड्मा, दो पद की कणी, तीन पद का ग्रासपट्टी या पद्मपत्र से युक्त हो, दो पद का खुरक, उसके ऊपर सात भाग का कुंभ, फिर तीन पद का कलश, एक भाग का अंतर्पत्रक, तीन भाग की कपोतली या केवाल, चार भाग का पुष्पकण्ठ या अंतराल होना चाहिए। जगती के चारों ओर प्राकार या दीवार और चार द्वार-मण्डप, जल निकालने के लिए मकराकृति प्रणाल, सोपान और तोरण भी इच्छानुसार बनाए जा सकते हैं। मण्डप के सामने जो प्रतोली या प्रवेशद्वार हो उसके आगे सोपान में शुण्डिकाकृति हथिनी बनाई जाती है। तोरण की चौड़ाई गर्भ गृह के पदों की नाप के बराबर और ऊंचाई मन्दिर के भारपट्टों की ऊंचाई के अनुसार रखी जाती है। तोरण मन्दिर का विशेष अंग माना जाता था और उसे भी जगती और उसके ऊपर पीठ देकर ऊंचा बनाया जाता था। तोरण की रचना में नाना प्रकार के रूप या मूर्तियों की शोभा बनाई जाती थी। तोरण कई प्रकार के होते थे। जैसे घटोला तोरण, तलक तोरण, हिण्डोला तोरण आदि। प्रासाद के सामने वाहन के लिए चौकी (चतुष्किका) रखी जाती थी।

देव मन्दिर में वाहन के निर्माण के भी विशेष नियम थे। वाहन की ऊंचाई गभारे की मूर्ति के गुह्यस्थान, नाभिस्थान या स्तन रेखा तक रखी जा सकती है। शिखर के जिस भाग पर सिंह की मूर्ति बनाई जाती है उसे शुकनासिका कहते हैं। उस सूत्र से आगे गूढमण्डप, गूढमण्डप से आगे चौकी और उससे आगे नृत्य-मण्डप की रचना होती है। मण्डपों की संख्या जितनी भी हो सब का विन्यास गर्भगृह के मध्यवर्ती सूत्र से नियमित होना है। मंदिर के द्वार के पास त्रिशाखा या मण्डिका या बलाणक (द्वार के ऊपर का मंडप) बनाया जाता है। पन्द्रहवीं शती में मंदिरों का विस्तार बहुत बढ़ गया था और उसके एक भाग में रथ यात्रा वाला बड़ा रथ रखने के लिए रथ शाला और दूसरे भाग में छात्रों के निवास के लिए मठ का निर्माण भी होने लगा था।

तीसरे अध्याय में आधार शिला प्रासाद पीठ, पीठ के ऊपर मंडोवर और मन्दिर के द्वार के निर्माण का विस्तृत वर्णन है। प्रासाद के मूल में नींव तैयार करने के लिए कंकरीट (इष्ट का चूर्ण) की पानी के साथ खूब कुटाई करनी चाहिए। इसके ऊपर खूब मोटी और लम्बी चौड़ी प्रासाद धारिणी शिला या पत्थर का फर्श बनाया जाता है। इसे ही खुर शिला या खर शिला भी कहते हैं। इस शिला के ऊपर जैसा भी प्रासाद बनाना हो उसके अनुरूप सर्व प्रथम जगती या अधिष्ठान बनाया जाता है जिसका उल्लेख पहले

हुआ है। यदि विशेष रूप से जगती का निर्माण संभव न हो तो भी पत्थर की शिलाओं के तीन थर एक के ऊपर एक रखने चाहिए। इन थरों को भिट्ट कहा जाता है। नीचे का भिट्ट दूसरे की अपेक्षा कुछ मोटा और दूसरा तीसरे से कुछ मोटा रक्खा जाता है। भिट्ट जितना ऊंचा हो उसका चौथाई निर्गम या निकास किया जाता है।

भिट्ट या जगती के ऊपर प्रासाद पीठ का निर्माण होता है। प्रासाद-पीठ और जगती का भेद स्पष्ट समझ लेना चाहिए। जगती के ऊपर मध्य में बनाए जाने वाले गर्भ गृह या मंडोवर की कुर्सी की संज्ञा प्रासाद पीठ है। इस पीठ की जितनी ऊंचाई होती है उसी के बराबर गर्भ गृह का फर्श रक्खा जाता है। प्रासाद पीठ के निर्माण के लिए भी मोटे गलतों का या विभिन्न थरों का विधान है। जैसे सौ अंश का जाड्यकुंभ, सात भाग की कणी, कपोताली या केवाल के साथ आठ भाग की ग्रासपट्टी (जिसमें सिंह मुख की आकृति बनी रहती है। और फिर उसके ऊपर बारह भाग का गज थर, दश भाग का अश्व थर और आठ भाग का नर थर बनाया जाता है। प्रत्येक दो थरों के बीच में थोड़ा-अंतराल देना उचित है और ऊपर नीचे दोनों ओर पतली कर्णिका भी रक्खी जा सकती है।

प्रासाद पीठ के ऊपर गर्भ गृह या मंडोवर बनाया जाता है जिसे वास्तविक रूप में प्रासाद का उत्तम भाग कहना चाहिए। मण्ड का अर्थ है पीठ या आसन और जो भाग उसके ऊपर बनाया जाता था उसके लिए मण्डोवर यह संज्ञा प्रचलित हुई। मंडोवर के उत्सेध या उदय को १४४ भागों में बांटा जाता है। यह ऊंचाई प्रासाद पीठ के मस्तक से छज्जे तक ली जाती है। इसके भाग ये हैं—खुरक ५ भाग, कुम्भक २० भाग, कलश ८ भाग, अंतराल २॥ भाग, कपोतिका या कपोतालि ८ भाग, मंची ९ भाग, जङ्घा ३५ भाग, उद्‌गम (उद्गम) १५ भाग है (जिसे गुजराती में 'डोढ़िया' भी कहा जाता है), भरणी ८ भाग, शिरावटी या शिरापट्ट १० भाग, ऊपर की कपोताली ८ भाग, अंतराल ढाई भाग और छज्जा १३ भाग। इस प्रकार १४४ भाग मंडोवर के उदय में रक्खे जाते हैं। छज्जे का बाहर की ओर निकलता खाता दश भाग होता है। एक विशेष प्रकार का मंडोवर मेरु मंडोवर कहलाता है, उसमें भरणी के ऊपर से ही ८ भाग की मञ्ची देकर २५ भाग की जंघा बनाई जाती है और फिर छज्जे के ऊपर ७ भाग की एक मञ्ची देकर १६ भाग की जंघा बनाते हैं। उसके ऊपर ७ भाग की भरणी, ८ भाग की शिरावटी, ५ भाग का भारपट्ट और फिर १२ भाग का कूट छाद्य या छज्जा। इस प्रकार मंडोवर की रचना में तीन जंघायें और दो छज्जे बनाये जाते थे। प्रत्येक जङ्घा में भिन्न भिन्न प्रकार की मूर्तियां उत्कीर्ण की जाती हैं। आमेर के जगत शरणजी के मंदिर में मेरु मंडोवर की रचना की गई है। एक दूसरे के ऊपर जो थरों का विन्यास है उनमें निर्गम और प्रवेश का अर्थात् बाहर की ओर निकलता खाता और भीतर की ओर दबाव रखने के भी नियम दिए गए हैं, मंडन का कथन है कि यदि प्रासाद निर्माण में अल्प द्रव्य व्यय करना हो तो तीन जङ्घाओं में से इच्छानुसार जंघा, रूप या मूर्तियों का निर्माण छोड़ा भी जा सकता है (३।२९)।

ईटों से बने मंदिर में भीत की चौड़ाई गर्भ गृह की चौड़ाई का चौथा भाग और पत्थर के मंदिर में पांचवां भाग रखनी चाहिए। गभारा बीच में चौरस (सुभद्र) रखकर उसके दोनों ओर फालनाएं देनी चाहिए, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मंडन ने फालनाओं के लिए भद्र सुभद्र और प्रतिभद्र शब्दों का प्रयोग किया है। उन्हीं के लिए उत्कल की शब्दावली में रथ, अनुरथ, प्रतिरथ, कोणरथ शब्द आते हैं। मंडोवर और उसके सामने बनाये जाने वाले मंडपों के खम्भों की ऊँचाई एक दूसरे के साथ मेल में रखनी आवश्यक है। मंडप के ऊपर की छत या गुम्मट को करोट कहा गया है। इस करोट की ऊँचाई मंडप की

चौड़ाई से आधी रखनी चाहिए। इस करोट या छत में नीचे की ओर जो कई थर बनाये जाते हैं उन्हें दर्दरी कहा जाता था, गुम्मट के भीतरी भाग को वितान और ऊपरी भाग को सम्वरण कहते हैं। वितान में दर्दरी या थरों की संख्या विषम रखने का विधान है।

इसके अनंतर मंदिर के द्वार का सविस्तर वर्णन है (३।३७-६६)। द्वार के चार भाग होते हैं अर्थात नीचे देहली या उदुम्बर, दो पार्श्व स्तम्भ और उनके ऊपर उत्तरंग या सिरदल। इन चारों को ही शिल्पी अनेक अलंकरणों से युक्त करने का प्रयत्न करते थे। देवगढ़ के दशावतार मंदिर का अलंकृत द्वार एक ऐसी कृति है जिसकी साज-सज्जा में शिल्पियों ने अपने कौशल की पराकाष्ठा दिखाई है। प्रायः गुप्त युग में उसी प्रकार के द्वार बनते रहे। शनैः शनैः मध्यकालीन मंदिरों में द्वार निर्माण कला में कुछ विकास और परिवर्तन भी हुआ। मंडन के अनुसार उदुम्बर या देहली की चौड़ाई के तीन भाग करके बीच में मन्दारक और दोनों पार्श्वों में ग्रास या सिंहमुख बनाने चाहिए। मन्दारक के लिए प्राचीन शब्द सन्तानक भी था (अंग्रेजी फेस्टून)। गोल सन्तानक में पद्मपत्रों से युक्त मृणाल की आकृति उकेरी जाती थी। ग्रास या सिंह मुख को कीर्तिवक्त्र या कीर्तिमुख भी कहते थे। देहली के दोनों ओर के पार्श्व स्तम्भों के नीचे तलरूपक (हिन्दी-तलकड़ा) नाम के दो अलंकरण बनाये जाते हैं। तलकड़ों के बीच में देहली के सामने की ओर बीच के दो भागों में अर्धचन्द्र और उसके दोनों ओर एक-एक गगारा बनाया जाता है। गगारों के पास में शंखों की और पद्मपत्र की आकृति उत्कीर्ण की जाती हैं। द्वार की यह विशेषता गुप्त युग से ही आरम्भ हो गई थी, जैसा कालिदास ने मेघदूत में वर्णन किया है (द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शंखपद्मौ च दृष्ट्वा, उत्तर मेघ १७)। गगारक या गगारा शब्द की व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। यहां पृष्ठ ५९ और वास्तुसार में पृ० १४० पर गगारक का चित्र दिया गया है। द्वार की ऊंचाई से उसकी चौड़ाई आधी होनी चाहिए। और यदि चौड़ाई में एक कला या सोलहवां भाग बढ़ा दिया जाय तो द्वार की शोभा कुछ अधिक हो जाती है, द्वार के उत्तरंग या सिरदल भाग में उस देव की मूर्ति बनानी चाहिए जिसकी गर्भगृह में प्रतिष्ठा हो। इस नियम का पालन प्रायः सभी मंदिरों में पाया जाता है। इस मूर्ति को ललाट-बिम्ब भी कहते थे। द्वार के दोनों पार्श्व स्तम्भों में कई फालना या भाग बनाये जाते थे जिन्हें संस्कृत में शाखा कहा गया है। इस प्रकार एक शाख, त्रिशाख, पंच शाख, सप्त शाख, और नव शाखा तक के पार्श्व स्तम्भ युक्त द्वार बनाये जाते थे। इन्हीं के लिए तिसाही, पंचसाही आदि शब्द हिन्दी में अभी तक प्रचलित हैं। सूत्रधार मंडन ने एक नियम यह बताया है कि गर्भगृह की दीवार में जितनी फालना या अंग बनाये जांय उतनी ही द्वार के पार्श्व स्तम्भ में शाखा रखनी चाहिए (शाखाः स्युरंग तुल्यकाः ३।४६)। द्वार स्तम्भ की सजावट के लिए कई प्रकार के अलंकरण प्रयुक्त किये जाते थे। उनमें रूप या स्त्री पुरुषों की मूर्तियां मुख्य थी। जिस भाग में ये आकृतियां उकेरी जाती थीं उसे रूप स्तम्भ या रूप शाखा कहते थे। पुरुष संज्ञक और स्त्री संज्ञक शाखाओं का उल्लेख मण्डन ने किया है। इस प्रकार की शाखायें गुप्तकालीन मंदिर द्वारों पर भी मिलती हैं। अलंकरणों के अनुसार इन शाखाओं के और नाम भी मिलते हैं जैसे—पत्रशाखा, सिंह शाखा, गन्धर्व शाखा, खल्व शाखा आदि। खल्व शाखा पर जो अलंकरण बनाया जाता था वह मकर आदि के मुखों के उठते हुए गोल प्रतानों के सदृश होता था। आबू के विमलवसही आदि मंदिरों में तथा अन्यत्र भी इसके उदाहरण हैं। खल्व शब्द प्राचीन था और उसका अर्थ फलिमीलता या भटर आदि की बेल के लिए प्रयुक्त होता था।

प्रासाद मंडन के चौथे अध्याय में आरम्भ में प्रतिमा की ऊंचाई बताते हुए फिर शिखर निर्माण का ब्यौरे वार वर्णन किया गया है। देव प्रासादों के निर्माण में शिखरों का महत्वपूर्ण स्थान था। मंदिर के वास्तु में नाना प्रकार के शिखरों का विकास देखा जाता है। शिखरों की अनेक जातियां शिल्प ग्रंथों में कही

गई है। वास्तविक प्रासाद शिखरों के साथ उन्हें मिलाकर अभी तक कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है। बाण ने सातवी शती में बहुभूमिक शिखरों का उल्लेख किया है। आरम्भिक गुप्तकाल में बने हुए सांची के छोटे देव मंदिर में कोई शिखर नहीं है। देवगढ़ के दशावतार मंदिर में शिखर के भीतर का ढोला विद्यमान है। वह इस बात का साक्षी है कि उस मंदिर पर भी शिखर की रचना की गई थी। शिखर का प्रारम्भ किस रूप में और कब हुआ यह विषय अनुसंधान के योग्य है। पंजाब में मिले हुए उदुम्बर जनपद के सिक्कों पर उपलब्ध देवप्रासाद के ऊपर त्रिभूमिक शिखर का स्पष्ट अंकन पाया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शिखरों का निर्माण गुप्त युग से पहले होने लगा था। ज्ञात होता है कि मंदिर के वास्तु में दोनों प्रकार मान्य थे। एक शिखर युक्त गर्भ गृह या मंडप था और दूसरे शिखर विहीन चौरसछत वाले सादा मंदिर जैसे सांची और मालवा के मुकन्दरा आदि स्थानों में मिले हैं। इस प्रकार के मंदिरों के विकास का पूर्वरूप कुषाण कालीन गन्धकुटी में प्राप्त होता है, जिसमें तीन खड़े पत्थरों को चौरस पत्थर से पाट कर उसके भीतर बुद्ध या बोधिसत्व की प्रतिमा स्थापित कर दी जाती थी। कालान्तर में तो शिखर मंदिरों का अनिवार्य अंग बनगया और उसकी शोभा एवं रूप विधान में अत्यधिक ध्यान दिया जाने लगा। मंदिर के गर्भ गृह में खड़ी हुई या बैठी हुई देव प्रतिमा की ऊंचाई कितनी हो और उसका दृष्टिसूत्र कितना ऊंचा रक्खा जाय इसके विषय में द्वार की ऊंचाई के अनुसार निर्णय किया जाता था। जैसे एक विकल्प यह था कि द्वार की ऊंचाई के आठ या नव भाग करके, एक भाग छोड़कर शेष ऊंचाई के तीन भाग करके उनमें से दो के बराबर मूर्ति की ऊंचाई रखनी चाहिए।

मंदिर के शिखर की रचना अत्यन्त जटिल विषय है। मंडोवर के छज्जे के ऊपर दो एक थर और लगाकर तब शिखर का प्रारम्भ करते हैं। वास्तुसार में इन थरों के नाम वेराडु और पहाड़ कहे है (वास्तुसार पृ.११२) किन्तु मंडन ने केवल पहार नामक थर का उल्लेख किया है। शिखर के उठते हुए विन्यास में शृंगों की रचना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मंडोवर की विभिन्न फालनाओं की ऊंचाई स्कन्ध के बाद जब शिखर में उठती हैं तो कोण, प्रतिरथ और रथ आदि की सीध में शृंग बनाये जाते हैं। इन्हीं शृंगो के द्वारा शिखर का ठाठ जटिल और सुन्दर हो जाता है। बीच के शिखर को यदि हम एक ईकाई मानें तो उसकी चारों दिशाओं में चार उरुशृंग बनाये जा सकते हैं। ये शृंग भी शिखर की आकृति के होते हैं। यदि मूल शिखर का सामने से दर्शन किया जाय तो वही आकृति शृंग की होती है। प्रासाद के शिखर का सम्मुख दर्शन ही शृंग है। मूल शिखर और उसके चारों ओर के चार शृंग इस प्रकार कुल ५ शृंग युक्तरूप प्रासाद का एक सीधा प्रकार हुआ। बीच के शिखर को मूलमंजरी और चारों ओर के मूलभूत बड़े शृंगों को उरु शृंग कहते हैं। इसी के लिए राजस्थानी और गुजराती स्थपतियों से छातियाशृंग शब्द भी प्रचलित है। वस्तुतः शृंग और शिखर पर्यायवाची हैं। ठक्कुर फेरू ने उरुशृंग या छातिया शृंग को उर सिहर (=उरु शिखर) कहा है। मूलमंजरी के चार भद्र या पार्श्वों में चार उरुशृंगों के अतिरिक्त और भी अनेकशृंग बनाये जाते थे। सूत्रधार मंडन ने कहा है कि उरुशृंगों की संख्या प्रत्येक भद्र में एक से नव तक हो सकती है (४।१०) सबसे बड़ा उरुशृंग शिखर की कितनी ऊंचाई तक रक्खा जाय इसका भी नियम दिया गया है। शिखर के उदय के १३ भाग करके नीचे से सात भाग तक पहला छातिया शृंग बनाया जाता है। अर्थात् शिखर की ऊंचाई के सात भाग पहले उरुशृंग के नीचे छिप जाते हैं। अब इस उरुशृंग पर दूसरा उरुशृंग बैठाना हो तो फिर इसकी ऊंचाई के तेरह भाग करके सात भाग तक के उदय तक दूसरा शृंग बनाया जाता है इस प्रकार जिस शिखर में नव उरुशृंग रखने हों उसकी ऊंचाई सोच विचार कर उसी अनुपात से निश्चित करनी होगी। शिखर में गोलाई लाने या ढलान देने के लिए आवश्यक है कि यदि उसके मूल में दस भाग हों तो अग्र स्थान या सिरे पर छः भाग का अनुपात

रखना चाहिये । इस अनुपात से शिखर सुहावना प्रतीत होता है । गर्भ गृह की मूलरेखा या चौड़ाई से शिखर का उदय सवाया रक्खा जाता है । शिखर के वलण अर्थात् नमन की युक्ति साधने के लिए उसके उदय भाग में और स्कन्ध में क्रमशः रेखाओं और कलाओं की सूक्ष्म गणना स्थपति सम्प्रदाय में प्रचलित है । उस विषय का संक्षिप्त संकेत मंडन ने किया है । रेखाओं और कलाओं का यह विषय अपराजित पृच्छा (सू. १३६-१४१) में भी आया है । खेद है कि यह विषय अभी तक स्पष्ट न होने से इस पर अधिक प्रकाश डालना सम्भव नहीं । मंडन का कथन है कि खरशिला से कलश तक बीस भाग करके आठ या ८½ या ९ भाग में मंडोवर की ऊंचाई और शेष में शिखर का उदय रक्खा जाता है । शिखर के गुमट नुमा उठान को पद्मकोश कहा जाता है (४।२३) पद्मकोश की आकृति लाने के लिए मंडन ने अति संक्षिप्त रीति से एक युक्ति कही है (चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः (४।२३) इसके अनुसार शिखर की मूलरेखा से चौगुना सूत्र लेकर यदि नये प्राप्त दोनों बिन्दुओं को केन्द्र मानकर गोल रेखायें खींची जांय तो जहां वे एक दूसरे को काटती हों वह शिखर का अंतिम बिन्दु हुआ । शिखर की मूल रेखा से उसकी (मूल रेखा की) सवाई जितनी ऊंचाई पर एक रेखा खींची जाय तो वह शिखर का स्कन्ध स्थान होगा । इस स्कन्ध और पद्मकोश के अंतिम बिन्दु तक की ऊंचाई के सात भाग करके एक भाग में ग्रीवा, १½ भाग में आमलक शिला, १½ भाग में पद्मपत्र (जिन्हें आजकल लीलोफर कहते हैं), और तीन भाग में कलश का भाग रहेगा ।

शिखर में शुकनास का भी महत्वपूर्ण स्थान है । शुकनास की ऊंचाई के पांच विकल्प कहे हैं । अर्थात् छज्जे से स्कन्ध तक के उदय को जब इक्कीस भागों में बांटा जाय तो ९, १०, ११, १२, १३, अंशों तक कहीं भी शुकनास का उच्छ्रय किया जा सकता है । शुकनासिका के उदय के पुनः नव भाग करके १, ३, ५, ७, या ९ भागों में कहीं पर भी कण्ठसिंह रखना चाहिये । शुकनासा, प्रासाद या देव मंदिर की नासिका के समान है । शिखर में शुकनासिका का निकलता खाता नीचे के अंतराल मण्डप के अनुसार बनाया जाता है । अंतराल मण्डप को कपिली या कोली मण्डप भी कहते हैं । (४।२७) अन्तराल मंडप की गहराई छः प्रकार की बताई गई है । शिखर की रचना में शृंग, उरुशृंग (खासिया शृंग), प्रत्यंग और अण्डकों का महत्वपूर्ण स्थान है । एवं भिन्न भिन्न प्रकार के शिखरों के लिए उनकी गणना अलग २ की जाती है । इसी प्रकार रथंग, तिलक और सिंहकर्ण ये भी प्रकारान्तर के अलंकरण हैं जिन्हें प्रासाद के शिखर का भूषण कहा जाता है और इनकी रचना भी शिखर को विभिन्नता प्रदान करती है ।

मंडन के अनुसार प्रासाद के शिखर पर एक हिरण्मय प्रासाद पुरुष की स्थापना की जाती है । कलश, दण्ड, और ध्वजारोपण के संबंध में भी विवरण पाया जाता है ।

पांचवें-छठे अध्यायों में वैराज्य आदि पच्चीस प्रकार के प्रासादों के लक्षण कहे गए हैं । गर्भ गृह के कोण से कोण तक प्रासाद के विस्तार के ४ से ११२ तक आवश्यकतानुसार भाग किए जा सकते हैं और उन्हीं भागों के अनुसार फालनाओं के अनेक भेद किए जाते हैं । प्रासादों के नाम और जातियां उनके शिखरों के अनुसार कही गई हैं । वस्तुतः इन भेदों के आधार पर प्रासादों की सहस्रों जातियां कल्पित की जाती हैं । गर्भ गृह, प्रासाद भित्ति, भ्रमणी या परिक्रमा और परिक्रमा-भित्ति यह प्रासाद का विन्यास है । इनमें प्रासाद भित्ति, परिक्रमा और परिक्रमा भित्ति तीनों की चौड़ाई समान होती है । यदि दो हाथ की प्रासाद भित्ति, दो हाथ की परिक्रमा और दो हाथ की भ्रम भित्ति करें तो गर्भ गृह चार हाथ का होना चाहिए । परिक्रमा युक्त प्रासाद दस हाथ से कम का बनाना ठीक नहीं । प्रासादों के वैराज्य आदि पच्चीस भेद नागर जाति के कहे जाते हैं । छठे अध्याय में विशेषतः शिखरों के अनेक भेदापभेदों की व्याख्या करते हुए केसरी

आदि प्रासादों का निरूपण किया गया है। प्रयोगात्मक दृष्टि से यह विषय अत्यधिक विस्तार को प्राप्त हो गया था। यहां तक कि मेरु-प्रासाद में ५०१ शृंगक बनाए जाते थे। वृषभध्वज नामक मेरु में एक-सहस्र एक अण्डक कहे गये हैं। मेरु प्रासाद बहु व्यय साध्य होने से केवल राजकीय निर्माण का विषय समझा जाता था।

७ वें अध्याय में, मण्डपों के निर्माण की विधि दी गई है। १० हाथ से ५० हाथ तक की चौड़ाई के सम या सपाद मण्डप बनाए जाते थे। जैन मन्दिरों में मूलमण्डप, चौकी मण्डप, नृत्य मण्डप, इन तीनों मण्डपों का होना आवश्यक माना गया है। मण्डप के ऊपर की छत घण्टा कहलाती थी जिसे हिन्दी में गुमट कहते हैं। इसके ऊपर के भाग को संवरण और नीचे के भाग को वितान कहते थे। मंडप के निर्माण में स्तम्भों का विशेषतः विधान किया गया है। ४, ८, १२ या २० कोने तक के स्तम्भ अथवा गोल स्तम्भ बनाए जाते थे। स्तम्भों की संख्या के भेद से २७ प्रकार के मण्डप कहे गए हैं। १२ स्तम्भों से लेकर २-२ की वृद्धि करते हुए ६४ स्तम्भों तक के मण्डपों का उल्लेख है। गुमट की छत के वितान को दर्दरी, रूपकण्ठ, विद्याधर, नर्तकी, गजतालु, कोल आदि अलंकरणों से युक्त थरों से सुशोभित किया जाता था, एक से एक विचित्र वितानों के निर्माण में भारतीय शिल्पाचार्यों ने अपने कौशल का परिचय दिया था। यहां तक कि एक हजार एक सौ तेरह प्रकार के वितान कहे गये हैं। गुमट के ऊपरी भाग या संवरण के सजावट में घण्टी का अलंकरण मुख्य था। क्रमशः न्यून पांच घंटियों से लेकर ४-४ की संख्या बढ़ाते हुए एक सौ एक घंटियों तक की गिनती की जाती थी।

आठवें अध्याय में मंदिरों के एवं वापी-कूप-तड़ागादि के जीर्णोद्धार की विधि कही गई है। साथ ही राजपुर आदि नगरों के निर्माण को सौध, जाल-गवाक्ष, कीर्ति स्तम्भ, जलाशय आदि से सुशोभित करने का वर्णन आया है। इसी प्रकार कोष्ठागार, मल्लवारणी, महानस, नृत्यशाला, आयुधशाला, सत्रागार, जल स्थान, विद्या मण्डप, व्याख्यान मण्डप आदि के निर्माण का विधान भी दिया गया है। इस प्रकार सूत्रधार मण्डन ने अपने वास्तुसार संबन्धी इस ग्रंथ में संक्षिप्त शैली द्वारा प्रासाद रचना संबन्धि विस्तृत जानकारी भरने का प्रयत्न किया है। इस ग्रंथ का पठन-पाठन में अधिक प्रचार होना उचित है।

श्री पं. भगवानदास जैन ने अनुवाद और चित्रमय व्याख्या के द्वारा इस ग्रंथ को सुलभ बनाने का जो प्रयत्न किया है इसके लिए हमें उनका उपकार मानना चाहिए। व्यक्तिगत रीति से हम उनके और भी आभारी हैं क्योंकि आज से कई वर्ष पूर्व जयपुर में रहकर हमें उनसे इस ग्रंथ के साक्षात् अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ था। विदित हुआ है कि इस ग्रन्थ का वे हिन्दी भाषान्तर भी प्रकाशित करना चाहते हैं। आशा है उस संस्करण में विषय को स्पष्ट करने वाले रेखाचित्रों की संख्या में और भी वृद्धि संभव होगी।

वासुदेवशरण अग्रवाल
अध्यक्ष-कला वास्तु विभाग
काशी विश्व विद्यालय

ता० १-१-६२

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१
देव पूजित शिव स्थान	२
प्रासाद की जाति	२
आठ जाति के उत्तम प्रासाद	३
प्रासाद का निर्माण समय	४
भूमि परीक्षा	४
वास्तु मंडल लिखने का पदार्थ	४
आठ दिक्पाल	५
कार्यारंभ के समय पूजनीय देव	५
निषेध समय	५
वत्समुख	५
आय आदिका विचार	६
देवालय में विचारणीय	७
आय व्यय और नक्षत्र लाने का प्रकार	७
आयों की संज्ञा और दिशा	८
प्रासाद के प्रशस्त आय	८
व्यय संज्ञा	८
राशि, योनि, नाडी, गण, चंद्रमा आदि जानने का शतपद चक्र	९-१०
ध्वजाय और देवगण नक्षत्र वाले समचोरस क्षेत्र का नाप	११
अंश लाने का प्रकार	१२
दिक् साधन	१२
दिक् साधन यंत्र	१४
खात विधि	१४
नाग वास्तु	१४
राहु (नाग) मुख	१५
कूर्ममान	१६
अपराजित के मत से कूर्म का मान	१६
क्षीरार्णव के मत से कूर्ममान	१७
कूर्म का ज्येष्ठ और कनिष्ठ मान	१७
शिला और कूर्म का स्थापन क्रम	१७
शिला के नाम	१८
धरणी शिला का मान	१८
धरणी शिला ऊपर के रूप	२०
सूत्रारंभ नक्षत्र	२१
शिला स्थापन नक्षत्र	२१
देवालय का निर्माण स्थान	२१
प्रासाद निर्माण पदार्थ	२२
देव स्थापन का फल	२२
देवालय बनाने का फल	२२
वास्तु पूजा का सप्त स्थान	२२
शान्ति पूजा का चौदह स्थान	२३
प्रासाद का प्रमाण	२३
मण्डोवर के थरों का निर्णय	२३
प्रासाद के अंगों की संख्या	२३
कालनाओं का सामान्य मान	२४

दूसरा अध्याय

विषय	पृष्ठ
जगती	२५
जगती का आकार	२५
जगति का विस्तार मान	२५
मण्डप की जगती	२६
भ्रमणी (परिक्रमा)	२७
जगती के कोने	२७
जगती की ऊंचाई का मान	२७
जगती के उदय का थर मान	२८
जगती के आभूषण	२८
जगती का दिग्दर्शन रेखाचित्र	२९
देव के वाहन का स्थान	३०
देव के वाहन का उदय	३०
देव के वाहन का दृष्टि स्थान	३१

विषय	पृष्ठ
जिनप्रासाद के मंडपों का क्रम	३१
जिनप्रासाद में देवकुलिका का क्रम	३१
बावन जिनालय	३२
बहत्तर देवकुलिका	३२
चौबीस देवकुलिका	३२
रथ और मठका स्थान	३२
शिवलिङ्ग के आगे अन्य देव ...	३३
देव के सम्मुख स्वदेव	३३
परस्पर दृष्टिवेध ...	३४
दृष्टिवेध का परिहार	३४
शिवस्नानोदक	३४
देवों की प्रदक्षिणा	३५
जलमार्ग (प्रनाल)	३५
मण्डप स्थित देवों की [illegible]	३६
पूर्व और पश्चिमाभिमुखदेव	३६
दक्षिणाभिमुखदेव	३७
विदिशाभिमुख देव	३७
सूर्य आयतन ...	३७
गणेश आयतन ...	३८
विष्णु आयतन ...	३८
चण्डी आयतन ...	३८
शिव पञ्चायतन ...	३८
त्रिदेव स्थापन क्रम ...	३९
त्रिदेवों का न्यूनाधिकमान ...	३९

तीसरा अध्याय

विषय	पृष्ठ
प्रासाद धारिणी खरशिला	४१
खरशिला का मान ...	४१
भिट्टमान	४२
भिट्ट का निर्गम	४२
पीठ का उदयमान ...	४३
पीठोदय का थरमान	४५
थरों का निर्गम मान ...	४६
कामदपीठ और कर्णपीठ ...	४६
प्रासाद का उदयमान (मंडोवर)	४७
प्रासाद के उदय से पीठका उदयमान	४९
१४४ भाग का मंडोवर (दीवार) ...	४९
१४४ भाग के मंडोवर का दिग्दर्शन ...	५१
चार प्रकार की जंघा ...	५२
मेरु मंडोवर और उसका चित्र ...	५३
सामान्य मंडोवर का चित्र	५४
सामान्य मंडोवर	५५
२७ भाग का मंडोवर सचित्र	५५
मंडोवर की मोटाई	५५
शुभाशुभ गर्भगृह	५६
लंब चोरस शुभ गर्भगृह ...	५७
स्तंभ और मंडोवर का समन्वय ...	५७
गर्भगृह के उदय का मान और [illegible] ...	५७
उदुम्बर (देहली) की ऊंचाई ...	५८
उदुम्बर की रचना ...	५८
कुम्भा से हीन उदुम्बर और तल ...	५८
अर्द्धचन्द्र (शंखावर्त) ...	६०
उत्तरंग ...	६१
नागरप्रासाद का द्वारमान ...	६२
भूमिजादि प्रासाद का द्वारमान ...	६३
द्राविड प्रासाद का द्वारमान ...	६४
अन्यजाति के प्रासाद का द्वारमान ...	६४
द्वार शाखा ...	६४
शाखा के आय ...	६५
शाखा से द्वार का नाम और परिचय	६५
त्रिशाखा द्वार का चित्र	६६
न्यूनाधिक शाखामान	६७
त्रिशाखा	६७
शाखा स्तंभ का निर्गम	६७
शाखोदर का विस्तार और प्रवेश	६७
त्रि पंच सप्त नव शाखा का चित्र	६८
शाखा के द्वारपाल का मान	६८
शाखाके रूप	६९
पद्म शाखा	६९
सप्त शाखा	७०

विषय		पृष्ठ
नव शाखा	....	७०
उत्तरंग के देव	....	७१

चौथा अध्याय

विषय		पृष्ठ
द्वारमान से मूर्ति और पबासन का मान	....	७२
गर्भगृह का मान	....	७३
गर्भगृह के मान से मूर्ति का मान	....	७३
देवों का दृष्टि स्थान	....	७३
देवों का पद स्थान	....	७४
प्रहार थर	....	७४
छाद्य (छज्जा) के थर मान	....	७५
शृङ्ग क्रम	....	७५
उरु शृङ्ग का क्रम सचित्र	....	७६
शिखर निर्माण	....	७६
२५६ रेखा की साधना सचित्र	....	७७
उदय भेदोद्भव रेखा	....	७८
कलाभेदोद्भव रेखा	....	७८
रेखाचक्र	....	७९
त्रिखंडा कला रेखा	....	७९
सोलह प्रकार के थार	....	७९
त्रिखंडा की रेखा और कला	....	८०
रेखा संख्या	....	८१
मंडोवर और शिखर का उदयमान	....	८१
शिखर विधान	....	८१
ग्रीवा, आमलसार और कलश का मान	....	८२
शुकनास का उदय	....	८२
सिंह स्थान	....	८२
कपिली (कोली) का स्थान	....	८३
कपिली का मान	....	८३
छह प्रकार की कपिली	....	८३
प्रासाद के अंडक और आभूषण	....	८४
शिखर के नमन का विभाग	....	८४
आमलसार का मान सचित्र	....	८४
आमलसार के नीचे शिखर के कोणरूप	....	८५
सुवर्णपुरुष (प्रासादपुरुष) की स्थापना	....	८६
सुवर्णपुरुष का मान और उसकी रचना	....	८६
कलश की उत्पत्ति और स्थापना	....	८७
कलश का उदयमान	....	८८
कलश का विस्तारमान	....	८८
ध्वजादंड रखने का स्थान	....	८९
ध्वजाधार (स्तंभवेध) का स्थान	....	८९
ध्वजाधार की मोटाई और स्तंभिका	....	८९
ध्वजाधार, ध्वजदंड और ध्वजा का चित्र	....	९०
ध्वजादंड का उदयमान	....	९०
ध्वजादंड का दूसरा उदयमान	....	९१
ध्वजादंड का तीसरा उदयमान	....	९१
ध्वजादंड का विस्तारमान	....	९१
ध्वजादंड की रचना	....	९२
विषमपर्व वाले ध्वजादंड के तेरह नाम	...	९२
ध्वजादंड की पाटली	....	९२
ध्वजा का मान	....	९३
ध्वजा का महात्म्य	...	९३

पांचवां अध्याय

विषय		पृष्ठ
ग्रंथ मान्यता की याचना	...	९५
वैराज्यप्रासाद	...	९५
फालना के भेद	...	९५
भ्रमणी (परिक्रमा)	...	९६
१ वैराज्य प्रासाद	...	९६
वैराज्यादि जातिका प्रासाद चित्र		
नागर जातिका कलामय मंडोवर चित्र		
दिशा के द्वारका नियम	...	९७
२ नन्दन प्रासाद	...	९८
३ सिंह प्रासाद	...	९९
४ श्रीनन्दन, ५ मंदिर और ६ मलयप्रासाद		९९
७ विमान, ८ विशाल, ९ त्रैलोक्य भूषण प्रासाद		१००
१० माहेन्द्र प्रासाद, ११ रत्नशीर्ष		
१२ सितशृंग प्रासाद	...	१०१
१३ भूधर, १४ भुवन मंडन, १५ त्रैलोक्य विजय,		
१६ क्षिति वल्लभ, १७ महीधर प्रासाद	...	१०२

विषय	पृष्ठ
१८ कैलास प्रासाद	१०३
१९ नवमंगल, २० गंधमादन, २१ सर्वांगसुन्दर, २२ विजयानन्द प्रासाद	१०३
२३ सर्वांगतिलक, २४ महा भोग, २५ मेरु प्रासाद और प्रासाद प्रदक्षिणा का फल	१०४

छठा अध्याय

विषय	पृष्ठ
केसरी आदि, २५ प्रासादों का नाम	१०६
पचीस प्रासादों की शृंगसंख्या	१०६
अष्टविभागीय तलमान	१०७
दश और बारह विभागीय तलमान	१०७
चौदह और सोलह विभागीय तलमान	१०७
अठारह, बीस और बाईस विभागीय तलमान	१०८
तलों के क्रम से प्रासाद संख्या	१०८
निरंधार प्रासाद	११०
प्रासाद तलाकृति	११०
लम्ब चोरस प्रासाद	१११
गोल, लंबगोल और अष्टास्रप्रासाद	१११
नागरप्रासाद	१११
द्राविड प्रासाद	११२
भूमिज प्रासाद	११२
लतिन, श्रीवत्स और नागरप्रासाद	११२
मेरु प्रासाद	११२
द्राविडजातिका गोपुर प्रासाद चित्र	
विमान नागर प्रासाद	११३
१ श्रीमेरु २ हेमशीर्षमेरु, ३ सुरवल्लभ मेरु प्रासाद	११३
४ भुवनमण्डन, ५ रत्नशीर्ष, ६ किरणोद्भव ७ कमल हंस मेरुप्रासाद	११४
८ स्वर्णकेतु और ९ वृषभध्वज मेरुप्रासाद	११५

सातवां अध्याय

विषय	पृष्ठ
मंडपविधान	११७
गर्भायमण्डप	११७
जिनप्रासाद के मण्डप	११७
मंडप के पांच मान	११८
प्रासाद और मंडपका तलदर्शन	११८
प्रासाद और मंडपोंका उदय चित्र	
प्रासाद के मानसे मंडप का माप	११९
घूमट का घंटा कलश और शुकनासका मान....	११९
मंडप के समविषमतल	११९
मुख मण्डप	१२०
स्तंभका विस्तार मान	१२१
आकृति से स्तंभसंज्ञा	१२१
प्राचीन मण्डप	१२२
आठ जाति के गूढ मण्डप	१२२
सर्वांगपूर्ण सांगोपांग वाला प्राचीन देवालयका चित्र	
आमेर के जगतशरणजी के मन्दिर का चित्र	
प्राचीन स्तंभोका रेखा चित्र	१२३
आठ गूढ मंडपों का रेखा चित्र	१२४
आबू मन्दिर के मण्डप, स्तंभ और तोरण का चित्र	
गूढमंडप की फालना	१२५
घूमट के उदय का तीन प्रकार	१२५
घूमटका न्यूनाधिक उदय फल	१२६
बारह चौकी मंडप	१२६
बारह चौकी मंडप का रेखा चित्र	१२७
सप्तविंशति मंडपका रेखा चित्र	१२८
नृत्यमंडप	१२९
सप्तविंशति मण्डप	१३०
अष्टास्र और षोडशास्र का मान	१३०
क्षिप्त वितान का चित्र	
उत्क्षिप्त वितान का चित्र	
वितान का प्रकार	१३१
वितान के थर	१३१
वितान संख्या	१३२
समतल वितान में नृसिंहावतार का चित्र	
वर्ण और जाति के चार प्रकार के वितान	१३३
रंगभूमि	१३४
बलाणक का स्थान	१३४

विषय		पृष्ठ	विषय		पृष्ठ
बलाणक का मान	....	१३४	छाया भेद	....	१५०
प्रासाद के मान से बलाणक का मान	....	१३४	देवपुर, राजमहल और नगर का मान	....	१५०
उत्तरंग का पेटा भाग	....	१३५	राजनगर में देव स्थान	....	१५०
पांच प्रकार के बलाणक	....	१३५	आश्रम और मठ	....	१५१
संवरणा	....	१३६	स्थान विभाग	....	१५१
प्रथम संवरणा का रेखा चित्र	....	१३७	प्रतिष्ठा मुहूर्त	....	१५१
दूसरी संवरणा का चित्र	....	१३८	प्रतिष्ठा के नक्षत्र	....	१५२
पचीस संवरणा के नाम	....	१३९	प्रतिष्ठा में वर्जनीय तिथि	....	१५२
प्रथम पुष्पिका संवरणा	....	१३९	प्रतिष्ठा मण्डप	....	१५२
१८ वीं शताब्दी से आधुनिक समय की			यज्ञ कुण्ड का मान	....	१५३
संवरणा का रेखा चित्र	....	१४०	आहुति संख्या से कुण्ड मान	....	१५३
जैसलमेर जैन मन्दिर की संवरणाचित्र			दिशानुसार कुण्डों की आकृति	....	१५३
कीर्ति स्तंभ का चित्र			मण्डल	....	१५४
दूसरी नन्दिनी संवरणा	....	१४१	ऋत्विजसंख्या	....	१५५
प्राचीन संवरणा का चित्र	....	१४२	देवस्नान विधि	....	१५५

आठ वां अध्याय

विषय		पृष्ठ	विषय		पृष्ठ
			देवशयन	....	१५५
			रत्नन्यास	....	१५६
शिवलिंग का न्यूनाधिक मान	....	१४३	धातुन्यास	....	१५६
वास्तुदोष	....	१४३	औषधिन्यास	....	१५६
निषेधवास्तु द्रव्य	....	१४३	धान्यन्यास	....	१५७
शिवालय उत्थापन दोष	....	१४४	आचार्य और शिल्पिओं का सम्मान	....	१५७
जीर्णोद्धार का पुण्य	....	१४४	प्रासाद के अंगों में देव न्यास	....	१५८
जीर्णोद्धार का वास्तु स्वरूप	....	१४४	प्रतिष्ठत देव का प्रथम दर्शन	....	१५९
दिङ्मूढ दोष	....	१४४	सूत्रधार पूजन	....	१६०
दिङ्मूढ का परिहार	....	१४५	देवालय निर्माण का फल	....	१६०
अव्यक्त प्रासाद का चालन	....	१४५	सूत्रधार का आशिर्वाद	....	१६०
महापुरुष स्थापित देव	....	१४५	आचार्य पूजन	....	१६०
जीर्णवास्तु पालन विधि	....	१४६	जिनदेवप्रतिष्ठा	....	१६१
महादोष	....	१४६	जलाश्रय प्रतिष्ठा	....	१६२
शिल्पिकुल महा दोष	....	१४६	जलाश्रय बनाने का पुण्य	....	१६२
मिश्र और अमिश्र दोष	....	१४७	वास्तु पुरुषोत्पत्ति	....	१६२
देवों के मिश्रदोष	....	१४७	वास्तुपुरुष के ४५ देव	....	१६४
व्यक्ताव्यक्त प्रासाद	....	१४८	वास्तुमंडल के कोने की आठ देवी	....	१६६
महामर्म दोष	....	१४८	शास्त्र प्रशंसा	....	१६६
अन्य दोषों का फल	....	१४९	अन्तिममंगल	....	१६७

परिशिष्ट नं० १

विषय		पृष्ठ
केसरी आदि २५ प्रासादों का नाम	....	१६८
१ केसरी प्रासाद	....	१६९
२ सर्वतोभद्र प्रासाद	....	१७०
३ नन्दनप्रासाद	....	१७१
४ नंदिशाल प्रासाद	....	१७१
५ नन्दीशप्रासाद	....	१७२
६ मंदर प्रासाद	....	१७२
७ श्रीवृक्षप्रासाद	....	१७३
८ अमृतोद्भव प्रासाद	....	१७३
९ हिमवान प्रासाद	....	१७४
१० हेमकूट प्रासाद	....	१७४
११ कैलास प्रासाद	....	१७४
१२ पृथ्वीजय प्रासाद	....	१७५
१३ इन्द्रनील प्रासाद	....	१७५
१४ महानील प्रासाद	....	१७६
१५ भूधर प्रासाद	....	१७७
१६ रत्नकूट प्रासाद	....	१७७
१७ वैडूर्य प्रासाद	....	१७८
१८ पद्मराग प्रासाद	....	१७९
१९ वज्रक प्रासाद	....	१७९
२० मुकुटोज्ज्वल प्रासाद	....	१७९
२१ ऐरावत प्रासाद	....	१८१
२२ राजहंस प्रासाद	....	१८१
२३ पक्षिराज (गरुड) प्रासाद	....	१८१
२४ वृषभ प्रासाद	....	१८२
२५ मेरु प्रासाद	....	१८३
मेरुप्रासाद की प्रदक्षिणा का फल	....	१८३

परिशिष्ट नं० २

विषय		पृष्ठ
जिन प्रासादाध्याय	....	१८४
१ ऋषभजिनवल्लभ प्रासाद	....	१८५
२ अजितजिनवल्लभ प्रासाद	....	१८६
३ संभव जिनवल्लभ प्रासाद	....	१८७
४ अमृतोद्भव प्रासाद	....	१८८
५ अभिनन्दन जिन प्रासाद	....	१८८
६ सुमतिजिनवल्लभ प्रासाद	..	१८९
७ पद्मप्रभजिन प्रासाद	....	१८९
८ पद्मराग प्रासाद	....	१९०
९ पुष्टि वर्द्धन प्रासाद	....	१९०
१० सुपार्श्वजिन प्रासाद	....	१९०
११ नंद्यावर्तप्रासाद	....	१९१
१२ चन्द्रप्रभजिन प्रासाद	....	१९१
१३ श्रीचन्द्रप्रासाद	....	१९२
१४ हितुराज प्रासाद	....	१९२
१५ पुष्पदंतजिन प्रासाद	....	१९२
१६ शीतल जिन प्रासाद	....	१९३
१७ कीर्तिदायक प्रासाद	....	१९४
१८ मनोहर प्रासाद	....	१९४
१९ श्रेयांसजिनवल्लभ प्रासाद	...	१९५
२० मुकुन्द प्रासाद	....	१९५
२१ कुलनन्दन प्रासाद	....	१९५
२२ वासु पूज्य जिन प्रासाद	....	१९६
२३ रत्न संजय प्रासाद	....	१९६
२४ धर्मद प्रासाद	....	१९६
२५ विमल जिनवल्लभ प्रासाद	....	१९७
२६ मुक्तिद प्रासाद	....	१९७
२७ अनन्त जिन प्रासाद	..	१९८
२८ सुरेन्द्र प्रासाद	....	१९८
२९ धर्मनाथ जिन प्रासाद	....	१९९
३० धर्मवृक्ष प्रासाद	...	१९९
३१ शान्तिनाथ जिन प्रासाद	....	२००
३२ कामदायक प्रासाद	....	२००
३३ कुंथुनाथ जिनवल्लभ प्रासाद	....	२०१
३४ शक्तिद प्रासाद	....	२०१
३५ हर्षण प्रासाद	....	२०२
३६ भूषण प्रासाद	....	२०२
३७ अरनाथ जिनवल्लभ प्रासाद	....	२०२
३८ श्रीशैल प्रासाद	....	२०३
३९ अरिनाशन प्रासाद	....	२०३

विषय	पृष्ठ
४० श्रीमल्लिनाथ जिन प्रासाद	२०३
४१ मानवेन्द्र प्रासाद	२०४
४२ [illegible] प्रासाद	२०४
४३ मुनिसुव्रत जिन प्रासाद	२०४
४४ मनोल्याचन्द्र प्रासाद	२०४
४५ श्रीभव प्रासाद	२०५
४६ नमिनाथ जिन प्रासाद	२०५
४७ सुमतिकीर्ति प्रासाद	२०६
४८ सुरेन्द्र प्रासाद	२०६
४९ राजेन्द्र प्रासाद	२०७
५० नेमिनाथ जिन प्रासाद	२०७
५१ यतिभूषण प्रासाद	२०८
५२ सुपुष्प प्रासाद	२०८
५३ पार्श्वनाथ जिन वल्लभ प्रासाद	२०८
५४ पद्मावती प्रासाद	२०९
५५ रूप वल्लभ प्रासाद	२०९
५६ महावीर जिन प्रासाद	२१०
५७ अष्टापद प्रासाद	२१०
५८ तुष्टि पुष्टि प्रासाद	२११
जिन प्रासाद प्रशंसा	२११
शब्दों का अकारादिक्रम	२१३
शुद्धि पत्रक	२२६
अनुवाद के सहायक ग्रन्थ	२२८

ॐ णमो जिणाणं

मण्डनसूत्रधारविरचितम्

प्रासादमण्डनम्

टीकाकारका मंगलाचरण—

"परं परमेष्ठिनं जिनं नत्वा करोम्यहम् ।
प्रासादमण्डनप्रबोधाय भाषां सुबोधिनीम् ॥"

श्रेष्ठ जो पंच परमेष्ठी जिनदेव हैं, उनको नमस्कार करके प्रासाद मंडन नाम के शिल्प-शास्त्र को अच्छी तरह समझने के लिये सुबोधिनी नामकी टीका करता हूं।

ग्रन्थकार का मंगलाचरण—

गणेशाय नमस्तस्मै निर्विघ्नसिद्धिहेतवे ।
आदिगौरीसमुद्भूत-तेजसा सम्भूताय[1] वै ॥१॥

निर्विघ्न रूप से अपने कार्य की सिद्धि के लिए महामाया पार्वतीदेवी के अद्भुत तेज से उत्पन्न हुए श्री गणेश देव को नमस्कार है ॥१॥

महामायेति या गीता चिन्मयी मुनिसत्तमैः ।
तनोतु[2] वाग्विलासं मे जिह्वायां सा सरस्वती ॥२॥

महान् ऋषियों ने जिनकी स्तुति की है, ऐसी ज्ञानमयी महामाया सरस्वती देवी मेरी जिह्वा में निवास करके वाणी का विस्तार करें ॥२॥

सृष्ट्याद्यसूत्रधारस्य प्रसादाद् विश्वकर्मणः ।
प्रासादमण्डनं ब्रूते सूत्रधारेषु मण्डनः ॥३॥

सृष्टि के आद्य सूत्रधार श्री विश्वकर्मा की कृपा से सूत्रधारों में श्रेष्ठ भूषण रूप 'मण्डन' नाम का सूत्रधार प्रासादमण्डन नामका यह ग्रन्थ कहता है ॥३॥

गृहेषु यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशने ।
स एव विधिना[3] कार्यो देवतायतनेष्वपि ॥४॥

---

(१) सम्भवाय (२) करोतु (३) विदुषा

घर बनाने की तथा उसमें प्रवेश करने की जो विधि वास्तुशास्त्र में विद्वानों ने बतलायी है, उस विधि के अनुसार देवालय में भी कार्य करें ॥४॥

देवपूजित शिवस्थान—

हिमाद्रेरुत्तरे पार्श्वे चारुदारुवनं[1] परम् ।
पावनं शङ्करस्थानं तत्र सर्वैः शिवोऽर्चितः ॥५॥

हिमालय पर्वत के उत्तर दिशा में एक बड़ा मनोहर देवदारु वृक्षों का सुन्दर वन है, यह महादेवजी का पवित्र तीर्थस्थान है। वहां सब देव और दैत्य आदि ने मिलकर महादेव की पूजा की ॥५॥

प्रासादों की जाति—

प्रासादाकारपूजाभि-र्देवदैत्यादिभिः क्रमात् ।
चतुर्दश समुत्पन्नाः प्रासादानां सुजातयः[2] ॥६॥

देव और दैत्य आदि सब देवों ने अनुक्रम से प्रासाद के आकार वाली शंकर की अनेक प्रकार से पूजा की, जिसके चौदह लोक के देवों द्वारा भिन्न भिन्न रूप से पूजित होने से चौदह प्रकार की प्रासाद की जाति उत्पन्न हुई ॥६॥

प्रासादोत्पत्ति की चौदह जाति—

"यत्र येषां कृता पूजा तत्र तन्नामकास्तु ते ।
प्रासादानां समस्तानां कथयिष्याम्यनुक्रमम् ॥
सुरैस्तु नागराः ख्याता द्राविडा दानवेन्द्रकैः ।
लतिनाश्चैव गन्धर्व-यक्षैश्चापि विमानजाः ॥
विद्याधरैर्मिश्रकाश्च वसुभिश्च वराटकाः ।
सान्धाराश्चोरगैः ख्याताः नरेन्द्रै र्भूमिजास्तथा ॥
विमाननागरच्छन्दाः सूर्यलोकसमुद्भवाः ।
नक्षत्राधिपलोकाच्चताश्छन्दा विमानपुष्पकाः ॥
पार्वतीसम्भवाः सैना वलभ्याकारसंस्थिताः ।
हरसिद्धयादिदेवीभिः कार्याः सिंहावलोकनाः ॥
व्यन्तरस्थितदेवैस्तु फांसनाकारिणो मताः ।
इन्द्रलोकसमुद्भूता रथाश्च विविधा मताः ॥"

अपराजितपृच्छा सू० १०६

(१) देवपुष (२) 'च'

जिन जिन देवों ने प्रासाद के आकार वाली पूजा की, उनके नाम वाले, जो जो प्रासाद उत्पन्न हुए, उनको अनुक्रम से कहूँगा (१) देवों के पूजन से नागर जाति, (२) दानवों के पूजन से द्राविडजाति, (३) गन्धर्वों के पूजन से लतिनजाति, (४) यक्षों के पूजन से विमानजाति, (५) विद्याधरों के पूजन से मिश्रजाति, (६) वसु देवों के पूजन से वराटकजाति, (७) नागदेवों के पूजन से सान्धार जाति, (८) नरेन्द्रों के पूजन से भूमिजजाति, (९) सूर्यदेवों के पूजन से विमान-नागर जाति, (१०) चन्द्रमा के पूजन से विमानपुष्पक जाति, (११) पार्वती के पूजन से वलभी जाति, (१२) हरसिद्धि आदि देवियों के पूजन से सिंहावलोकन जाति, (१३) व्यन्तर स्थित देवों के पूजन से फांसी के आकार वाली जाति, १४—और इन्द्रलोक के देवों के पूजन से रथारूह (दारुआदि) जाति, ये चौदह जाति के प्रासाद उत्पन्न हुए।

आठ जाति के उत्तम प्रासाद—

नागरा द्राविडाश्चैव भूमिजा लतिनास्तथा।
सान्धारा विमानादि-नागराः पुष्पकाङ्किताः[1] ॥७॥
मिश्रकास्तिलकैः[2] शृङ्गैरष्टौ जातिषु चोत्तमाः।
सर्वदेवेषु कर्त्तव्याः शिवस्यापि विशेषतः ॥८॥

चौदह जाति के प्रासादों में (१) नागर, (२) द्राविड, (३) भूमिज, (४) लतिन, (५) सांधार (सांधार केसरी आदि), (६) विमान नागर, (७) विमान पुष्पक, और (८) शृङ्ग और तिलक वाला मिश्र, ये आठ जाति के प्रासाद उत्तम हैं। इसलिये सब देवों के लिये यही बनाने चाहिये, उनमें भी विशेषकर महादेवजी के लिये बनाना श्रेयस्कर है ॥७-८॥

प्रासादानां च सर्वेषां जातयो देशभेदतः।
चतुर्दश प्रवर्त्तन्ते ज्ञेया लोकानुसारतः ॥९॥

सब प्रासादों के भेद देशों के भेद के अनुसार होते हैं। इनके मुख्य चौदह भेद हैं, वे ग्रन्थ अपराजित पृच्छा सूत्र ११२ आदि शास्त्रों से जानना चाहिये ॥९॥

लक्ष्यलक्षणतोऽभ्यासाद् गुरुमार्गानुसारतः।
प्रासादभवनादीनां सर्वज्ञानमवाप्यते ॥१०॥

प्रासाद और गृह आदि बनाने के लिये सब प्रकार का शिल्पज्ञान, उसके लक्ष्य और लक्षण के अभ्यास से एवं गुरुशिक्षा के अनुसार प्राप्त करना चाहिये ॥१०॥

(१) पुष्पकान्तिकाः (२) प्रासादमिश्रकाश्चैव

प्रासाद का निर्माण समय—

शुभलग्ने सुनक्षत्रे[1] पञ्चग्रहबलान्विते ।
माससंक्रान्तिवत्सादि-निषिद्धकालवर्जिते ॥११॥

शुभ लग्न और शुभ नक्षत्र में, पांच ग्रह (सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र) के बलवान् होने पर, तथा मास, संक्रान्ति और वत्स आदि के निषेध समय को छोड़ कर प्रासाद बनाना आरम्भ करें ॥११॥

भूमि परीक्षा—

सर्वदिक्षु प्रवाहो वा प्रागुदक्शङ्करप्लवाम् ।
भूमिं परीक्ष्य संसिञ्चेत् पञ्चगव्येन कोविदः ॥१२॥
मणिसुवर्णरूप्येण विद्रुमेण फलेन वा ।

प्रथम प्रासाद बनाने की भूमि की परीक्षा करनी चाहिये । जिस भूमि पर चारों दिशाओं में पानी का प्रवाह चलता हो अर्थात् वह चारों दिशाओं में नीची हो और बीच में ऊंची हो, अथवा पूर्व, उत्तर और ईशान कोनों में नीची हो, अर्थात् इन तीन दिशाओं में पानी का प्रवाह जाता हो तो ऐसी भूमि शुभदायक है । विशेष जानने के लिये देखें अपराजित पृच्छा सूत्र० ५१.

इस प्रकार भूमिकी परीक्षा करके विद्वान् जन पञ्च गव्य (गाय का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर) से उस भूमि पर छिड़काव करें तथा मणि, सोना, रूपा, मूंगा और फलों से भूमि को पवित्र करें ॥१२॥

वास्तुमंडल लिखने का पदार्थ—

चतुःषष्टिपदं वास्तुं लिखेद्वापि शताशकैः ॥१३॥
पिष्टेन चाक्षतैः शुद्धैस्ततो[2] वास्तुं समर्चयेत् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन बलिपुष्पैश्च[3] पूजयेत् ॥१४॥

प्रासाद के आरंभ होने से समाप्त होने तक उतने समय में सात अथवा चौदह बार चौसठ पद का अथवा एकसो पद का वास्तुमण्डल* पूजा जाता है । वह शुद्ध आटा अथवा शुद्ध चावलों से बनाना चाहिये । पश्चात् उसे पूर्वाचार्यों द्वारा बतलाई गई विधि के अनुसार बलि और पुष्प आदि से पूजना चाहिये ॥१३॥१४॥

(१) शुभर्क्षे च (२) ऊर्ध्वं (३) बलिपुष्पादिपूजनैः

* विशेष जानने के लिये देखें स्वयंद्वारा अनुदित राजवल्लभमंडन में दूसरा अध्याय ।

आठ दिक्पाल—

इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत् ।
कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥१५॥

इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर और ईश, ये आठ देव अनुक्रम से पूर्वादि दिशाओं के अधिपति हैं ॥१५॥

कार्यारम्भ के समय पूजनीय देव—

दिक्पालाः क्षेत्रपालाश्च गणेशश्चण्डिका तथा ।
एतेषां विधिवत् पूजां कृत्वा कर्म समारभेत्(१) ॥१६॥

दिक्पाल, क्षेत्रपाल, गणेश और चण्डिका देवी आदि देव देवियों की विधि पूर्वक पूजा करके कार्य आरंभ करें ॥१६॥

निषेध समय—

धनुर्मीनस्थिते सूर्ये गुरौ शुक्रेऽस्तगे विधौ ।
वैधृतौ व्यतिपाते च दग्धायां न कदाचन ॥१७॥

धन और मीन संक्रांति का सूर्य हो, गुरु शुक्र और चन्द्रमा ये अस्त हो, वैधृति और व्यतिपात के योग हो, तथा दग्धा तिथि हो, तब कभी भी नवीन कार्य का आरंभ नहीं करना चाहिये ॥१७॥

वत्समुख—

कन्यादित्रित्रिभे(२) सूर्ये द्वारं पूर्वादिषु त्यजेत् ।
सृष्ट्या वत्समुखं तत्र स्वामिनो हानिकृद्यतः ॥१८॥

कन्या आदि तीन तीन राशि पर सूर्य हो, तब अनुक्रम से पूर्व आदि दिशाओं में द्वार आदि का कार्य नहीं करना चाहिये। क्योंकि उन दिशाओं में सृष्टिक्रम से अर्थात् पूर्व, दक्षिण पश्चिम और उत्तर दिशा में वत्सका मुख रहता है। यह कार्य कराने वाले स्वामी को हानिकारक है। जैसे—कन्या, तुला और वृश्चिक राशि पर सूर्य हो तब वत्स का मुख पूर्व दिशा में; धन, मकर और कुंभ राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख दक्षिण दिशा में; मीन मेष और वृष राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख पश्चिम दिशा में; मिथुन, कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब वत्स का मुख उत्तर दिशा में रहता है। ॥१८॥

(१) समाचरेत् (२) त्रिभिगे

जिस दिशा में वत्स का मुख हो, उस दिशा में तथा मुख के सामने वाली दिशा में खात, देव प्रतिष्ठा, द्वार प्रतिष्ठा आदि कार्य करना शास्त्र में वर्जित है, परन्तु वत्समुख एक दिशा में तीन तीन मास तक रहता है। इसलिये तीन मास तक उक्त कार्य को नहीं रोकने के लिये ठक्कुर फेरु कृत 'वत्थुसार पयरण' प्र० १ गाथा २० में विशेष रूप से बतलाया है कि—

"गिहभूमि सत्तभाए पण दह तिहि तीस तिहि दहक्क कमा
इअ दिणसंखा चउदिसि सिरपुच्छसमंकि वच्छठिई ॥"

घर या प्रासाद की भूमि का प्रत्येक दिशा में सात सात भाग करना, उनमें अनुक्रम से प्रथम भाग में पांच दिन, दूसरे में दस दिन, तीसरे में पंद्रह दिन, चौथे में तीस दिन, पांचवें में पंद्रह दिन, छट्ठे में दस दिन और सातवें भाग में पांच दिन वत्स का मुख रहता है। इस प्रकार भूमि को चारों दिशाओं में दिन संख्या समझना चाहिये। जिस अंक पर वत्स का मुख हो, उसी अंक के सामने वाले बराबर के अंक पर वत्स की पूंछ रहती है। इस प्रकार की वत्स की स्थिति है।

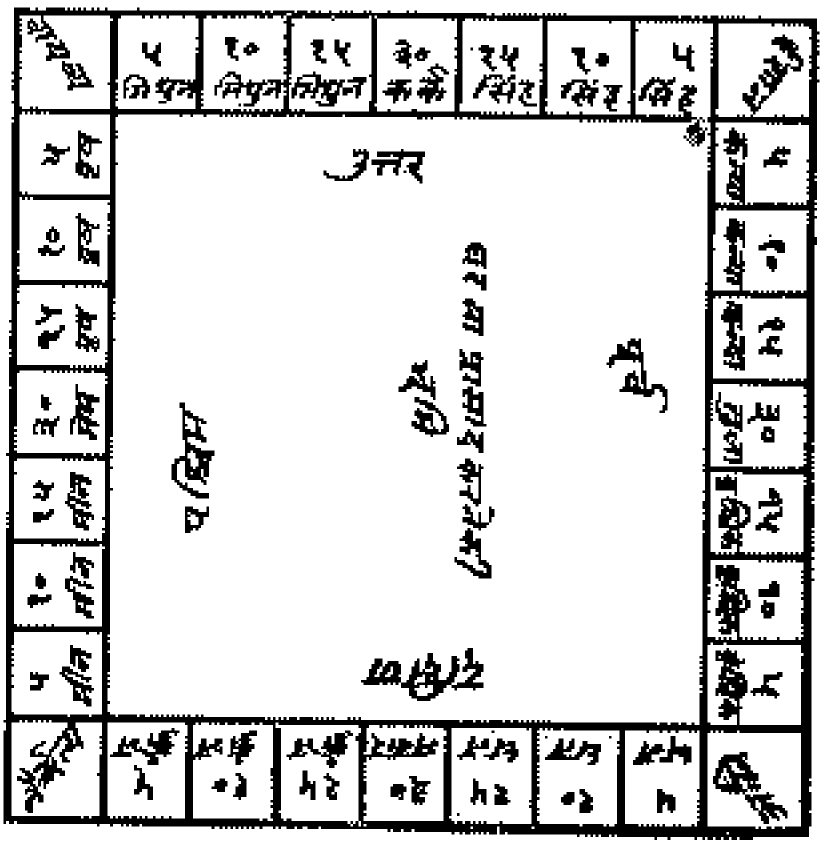

जैसे कन्याराशि पर सूर्य हो, और यदि पूर्व दिशा में खात आदि कार्य करने की आवश्यकता हो तो कन्याराशि को प्रथम पांच दिन तक प्रथम भाग में खात आदि कार्य नहीं करना चाहिये, परन्तु दूसरे छह भागों में से किसी एक भाग में शुभ मुहूर्त में कार्य कर सकते हैं। एवं छट्ठे से पंद्रहवें दिन तक दूसरे भाग में और सोलहवें से तीस दिन तक तीसरे भाग में कार्य नहीं करें। तुला राशि के सूर्य में तीस दिन तक मध्य के चौथे भाग में कार्य नहीं करें। वृश्चिक राशि के सूर्य में पहले पंद्रह दिन पांचवें भाग में, सोलहवें से पचीसवें दिन तक छट्ठे भाग में और छब्बीसवें से तीसवें दिन तक सातवें भाग में कार्य नहीं करें। इसी प्रकार प्रत्येक दिशा में प्रत्येक संक्रांति के दिन संख्या समझ लेनी चाहिये।

अपराजित पृच्छा सूत्र ६२ में कहा है कि—

"देवागारं गृहं यत्र न कुर्याच्छिरःसन्मुखम्।
मृत्युरोगभया नित्यं शस्तं च कुक्षिसम्भवम् ॥"

वत्सके सिर के भाग में और उसके सामने के भाग में देव मंदिर अथवा मनुष्य के घर नहीं बनावें, यदि बनावेंगे तो मृत्यु, रोग और भय हमेशा बना रहेगा। इसलिये वत्स की कुक्षि में कार्य करना अच्छा है। विशेष उक्त ग्रंथ में देखें।

आयादिका विचार—

आयो व्ययर्क्षमंशस्य भित्तिबाह्ये सुरालये ।
ध्वजायो देवनक्षत्रं व्ययांशौ प्रथमौ शुभौ ॥१६॥

आय, व्यय, नक्षत्र और अंश आदि की गणना देवालय में दीवार के बाहर के भाग से होती है। देवालय में ध्वज आय, देव नक्षत्र, प्रथम व्यय और प्रथम अंश ये शुभ हैं ॥१६॥

केषाञ्चिन्मतो[1] गेहे वृषसिंहगजाः शुभाः ।
आयादूनो[2] व्ययः श्रेष्ठः पिशाचस्तु समोऽधिकः ॥२०॥

देवालयों में वृष, सिंह और गज आय भी श्रेष्ठ हैं। अपराजित पृच्छा सूत्र ६४ में भी कहा है कि—'ध्वजः सिंहो वृषगजौ शस्यन्ते सुरवेश्मनि।' आय से व्यय कम हो तो श्रेष्ठ है। सम व्यय हो तो पिशाच और अधिक व्यय हो तो राक्षस नाम का व्यय माना जाता है ॥२०॥

देवालय में विचारणीय—

देवतानां गृहे चिन्त्य-मायाद्यङ्गचतुष्टयम् ।
नवाङ्गं नाडीवेधादि-स्थापकामरयोर्मिथः ॥२१॥

देवालय में आय, व्यय, अंश और नक्षत्र इन चार अंगों का, तथा स्थापक (देव स्थापन करने वाले) और देव इन दोनों के परस्पर नाडीवेध, योनि, गण, राशि, वर्ण, वश्य, तारा, वर्ग और राशिपति, इन नव अङ्गों का विचार करना चाहिये ॥२१॥

आयादिचिन्तनं भूमि-लक्षणं वास्तुमण्डलम् ।
मासनक्षत्रलग्नादि-चिन्तनं पूर्वशास्त्रतः ॥२२॥

आय आदिका विचार, भूमिका लक्षण, वास्तु मण्डल, मास, नक्षत्र और लग्न आदिका विचार, ये सब राजवल्लभ मंडन और अपराजित पृच्छा आदि शास्त्रों से जानना चाहिये ॥२२॥

आय व्यय और नक्षत्र लाने का प्रकार—

"व्यासे दैर्घ्यगुणेऽष्टभिर्विभजिते शेषो ध्वजाद्यायको,
ऽष्टघ्ने तद्गुणिते च धिष्ण्यभजिते साहक्षमश्वादिकम् ।

(१) केषां च (२) हीन आयाद्

नक्षत्रे वसुभिर्व्ययोऽपि भजिते हीनस्तु लक्ष्मीप्रदः।
तुल्यायश्च पिशाचको ध्वजमृते संवर्द्धितो राक्षसः ॥" राज व० अ० ३

प्रासाद अथवा गृह बनाने की भूमि की लंबाई और चौड़ाई के नाप का गुणाकार करने से जो गुणनफल हो, वह क्षेत्रफल कहा जाता है। इसको आठ से भाग देने से जो शेष बचे, वह ध्वज आदि आय कहलाती है। क्षेत्रफल को आठ से गुणा करके, गुणनफल को सत्ताईस से भाग दें जो शेष बचे वह अश्विनी आदि नक्षत्र होता है। नक्षत्र की जो संख्या आवे, उसमें आठ का भाग देने से जो शेष बचे वह व्यय कहलाता है। आय से व्यय कम हो तो लक्ष्मी को प्राप्त करने वाला है। आय और व्यय दोनों बराबर हो तो पिशाच नाम का व्यय और ध्वज आय को छोड़कर दूसरी आयों से व्यय अधिक हो तो वह राक्षस नाम का व्यय कहलाता है।

आयों की संज्ञा और दिशा—

"ध्वजो धूमश्च सिंहश्च श्वानो वृषखरौ गजः।
ध्वांक्षश्चेति समुद्दिष्टाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः ॥" अप० सू० ६४

ध्वज, धूम्र, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांक्ष, ये आठ आयों के नाम हैं। ये अनुक्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं।

प्रासाद के प्रशस्त आय—

ध्वजः सिंहो वृषगजौ शस्यते सुरवेश्मनि।
अधमानां खरध्वांक्ष-धूमश्वानाः सुखावहाः ॥" अप० सू० ६४

ध्वज, सिंह, वृष और गज ये चार आय देवालय में शुभ हैं। तथा खर, ध्वांक्ष, धूम और श्वान ये चार आय अधम जातिवालों के घरों में सुखकारक हैं[१]।

व्यय संज्ञा—

"शान्तः पौरः प्रद्योतश्च श्रियानन्दो मनोहरः।
श्रीवत्सो विभवश्चैव चिन्तात्मा च व्ययाः स्मृताः ॥
समो व्ययः पिशाचश्च राक्षसस्तु व्ययोऽधिकः।
व्ययो न्यूनो यक्षश्चैव धनधान्यकरः स्मृतः ॥" अप० सू० ६६

शान्त, पौर, प्रद्योत, श्रियानन्द, मनोहर, श्रीवत्स, विभव और चिन्तात्मा, ये व्ययों के आठ नाम हैं। आय और व्यय समान हो तो पिशाच नाम का व्यय, आय से व्यय अधिक हो तो राक्षस नाम का व्यय और आय से व्यय कम हो तो यक्ष नाम का व्यय होता है। यह धन धान्य की वृद्धि करने वाला है।

(१) विशेष जानने के लिये देखो मेरा अनुवादित राजवल्लभ मंडन ग्रंथ

राशि, योनि, नाडी, गण आदि जानने का शतपदचक्र—

संख्या	नक्षत्र	अक्षर	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	गण	नाडी	चन्द्र	व्यय
१	अश्विनि	चू. चे. चो. ला.	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	अश्व	मंगल	देव	आद्य	उत्तर	शान्त
२	भरणी	ली. लू. ले. लो.	मेष	क्षत्रिय	चतुष्पद	गज	मंगल	मनुष्य	मध्य	उत्तर	घोर
३	कृत्तिका	अ. इ. उ. ए.	१ मेष ३ वृष	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	बकरा	१ मंगल ३ शुक्र	राक्षस	अंत्य	पूर्व	प्रद्योत
४	रोहिणी	ओ. वा. वी. वू.	वृष	वैश्य	चतुष्पद	सर्प	शुक्र	मनुष्य	अन्त्य	पूर्व	श्रियानंद
५	मृगशिर	वे. वो. का. की.	२ वृष २ मिथुन	२ वैश्य २ शूद्र	२ चतुष्पद २ मनुष्य	सर्प	२ शुक्र २ बुध	देव	मध्य	पूर्व	मनोहर
६	आर्द्रा	कु. घ. ङ. छ.	मिथुन	शूद्र	मनुष्य	श्वान	बुध	मनुष्य	आद्य	पूर्व	श्रीवत्स
७	पुनर्वसु	के. को. हा. ही.	३ मिथुन १ कर्क	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	मार्जार	३ बुध १ चन्द्र	देव	आद्य	पूर्व	विभव
८	पुष्य	हु. हे. हो. डा.	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	बकरा	चंद्रमा	देव	मध्य	पूर्व	चिन्तात्म
९	आश्लेषा	डी. डू. डे. डो.	कर्क	ब्राह्मण	जलचर	मार्जार	चन्द्रमा	राक्षस	अंत्य	पूर्व	शान्त
१०	मघा	मा. मी. मू. मे.	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	मूषा	सूर्य	राक्षस	अंत्य	दक्षिण	घोर
११	पूर्वा फा०	मो. टा टी. टू.	सिंह	क्षत्रिय	वनचर	मूषा	सूर्य	मनुष्य	मध्य	दक्षिण	प्रद्योत
१२	उत्तरा फा.	टे. टो. पा. पी.	१ सिंह ३ कन्या	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	१ वनचर ३ मनुष्य	गौ	१ सूर्य ३ बुध	मनुष्य	आद्य	दक्षिण	श्रियानन्द
१३	हस्त	पु. षा. ण. ठ.	कन्या	वैश्य	मनुष्य	भैंस	बुध	देव	आद्य	दक्षिण	मनोहर

संख्या	नक्षत्र	अक्षर	राशि	वर्ण	वश्य	योनि	राशीश	गण	नाडी	पक्ष	व्यय
१४	चित्रा	पे. पो रा. री.	२ कन्या २ तुला	२ वैश्य २ शूद्र	मनुष्य	बाघ	२ बुध २ शुक्र	राक्षस	मध्य	दक्षिण	श्रीवत्स
१५	स्वाति	रू. रे. रो. ता.	तुला	शूद्र	मनुष्य	भैंस	शुक्र	देव	अंत्य	दक्षिण	विमल
१६	विशाखा	ती. तू. ते. तो.	३ तुला १ वृश्चिक	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ कीड़ा	व्याघ्र	३ शुक्र १ मंगल	राक्षस	अंत्य	दक्षिण	चित्रात्मा
१७	अनुराधा	ना. नी. नू. ने.	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीड़ा	हीरण	मंगल	देव	मध्य	पश्चिम.	शान्त
१८	ज्येष्ठा	नो. या. यी. यु.	वृश्चिक	ब्राह्मण	कीड़ा	हीरण	मंगल	राक्षस	आद्य	पश्चिम	पौर
१९	मूल	ये. यो. भा. भी.	धन	क्षत्रिय	मनुष्य	कुक्कुर	गुरु	राक्षस	आद्य	पश्चिम	प्रद्योत
२०	पूर्वाषाढा	भु. धा. फ. ढा.	धन	क्षत्रिय	मनुष्य चतुष्पद	वानर	गुरु	मनुष्य	मध्य	पश्चिम	सियानंद
२१	उत्तराषाढा	भे. भो. जा. जी.	१ धन ३ मकर	१ क्षत्रिय ३ वैश्य	चतुष्पद	न्योला	१ गुरु ३ शनि	मनुष्य	अंत्य	पश्चिम	मनोहर
२२	श्रवण	खी. खू. खे. खो.	मकर	वैश्य	चतुष्पद जलचर	वानर	शनि	देव	अंत्य	पश्चिम	श्रीवत्स
२३	धनिष्ठा	गा. गी. गु. गे.	२ मकर २ कुम्भ	२ वैश्य २ शूद्र	२ जलचर २ मनुष्य	सिंह	शनि	राक्षस	मध्य	उत्तर	विमल
२	[illegible]भिष	गो. सा. [illegible]ी. सु	कुम्भ	शूद्र	मनुष्य	घोड़ा	शनि	राक्षस	आद्य	उत्तर	चित्रात्मा
२५	पूर्वा भाद्र	से. सो. दा. दी.	३ कुम्भ १ मीन	३ शूद्र १ ब्राह्मण	३ मनुष्य १ जलचर	सिंह	३ शनि १ गुरु	मनुष्य	आद्य	उत्तर	शान्त
२६	उत्तराभाद्र	दु. थ. झ. ञ.	मीन	ब्राह्मण	जलचर	गौ	गुरु	मनुष्य	मध्य	उत्तर	पौर
२७	रेवती	दे. दो. चा. ची.	मीन	ब्राह्मण	जलचर	हाथी	गुरु	देव	अंत्य	उत्तर	प्रद्योत

व्ययाय और देवगणनक्षत्रवाले समचोरस क्षेत्र का माप—

गज – इंच	नक्षत्र	गज – इंच	नक्षत्र	गज – इंच	नक्षत्र
१—१	मृगशीर	७-२१	रेवती	१५—१	अनुराधा
१—३	रेवती	७-२३	मृगशीर	१५—९	रेवती
१—५	मृगशीर	८—७	अनुराधा	१५-१९	पुष्य
१-१३	अनुराधा	८-१५	रेवती	१६—३	रेवती
१-२१	रेवती	८-२३	पुष्य	१६-११	अनुराधा
२—५	पुष्य	९—१	पुष्य	१६-१९	मृगशीर
२—७	पुष्य	९—९	रेवती	१६-२१	रेवती
२-१५	रेवती	९-१७	अनुराधा	१७-१३	रेवती
२-२३	अनुराधा	१०—१	मृगशीर	१७-१५	रेवती
३—७	मृगशीर	१०—३	रेवती	१७-२३	पुष्य
३—९	रेवती	१०—५	मृगशीर	१८—१	पुष्य
३-११	मृगशीर	१०-१३	अनुराधा	१८—९	रेवती
३-१९	अनुराधा	११—५	पुष्य	१८-१७	रेवती
४—३	रेवती	११—७	पुष्य	१९—१	मृगशीर
४-११	पुष्य	११-१५	रेवती	१९—३	रेवती
४-१३	पुष्य	११-२३	अनुराधा	१९—५	मृगशीर
४-२१	रेवती	१२—७	मृगशीर	१९-२१	रेवती
५—५	अनुराधा	१२—९	रेवती	१९-२३	पुनर्वसु
५-१३	मृगशीर	१२-११	मृगशीर	२०—५	पुष्य
५-१५	रेवती	१२-१९	अनुराधा	२०—७	पुष्य
५-१७	मृगशीर	१३—३	रेवती	२०-१५	रेवती
६—१	अनुराधा	१३-११	पुष्य	२०-१९	हस्त
६—९	रेवती	१३-१३	पुष्य	२०-२३	अनुराधा
६-१७	पुष्य	१३-२१	रेवती	२१—७	मृगशीर
६-१९	पुष्य	१४—५	अनुराधा	२१—९	रेवती
७—३	रेवती	१४-१३	मृगशीर	२१-११	मृगशीर
७-११	अनुराधा	१४-१५	रेवती	२१-१९	अनुराधा
७-१९	मृगशीर	१४-१७	मृगशीर	२१-२३	मृगशीर

अंश लाने का प्रकार—

"तन्मूले व्ययहर्म्यनामसहिते भक्ते त्रिभिस्त्वंशकः,
स्यादिन्द्रो यमभूपती क्रमवशाद् देवे सुरेन्द्रो हितः ।
वेश्मापि यमस्तु पण्यभवने नागे तथा भैरवे,
राजांशो गजवाजियाननगरे राज्ञो गृहे मन्दिरे ॥" राज० अ० ३

मूलराशि (क्षेत्रफल) में व्यय की संख्या और घरके नामाक्षर की संख्या जोड़ करके उसमें तीन से भाग दें। जो एक शेष बचे तो इन्द्रांश, दो शेष बचे तो यमांश और तीन (शून्य) शेष बचे तो राजांश जानें। इन्द्र का अंश-देवालय और वेदी में शुभ है। यमका अंश-दुकान, नागदेव और भैरव के प्रासाद में शुभ है। राजा का अंश—गजशाला, अश्वशाला, वाहन, नगर, राजमहल और साधारण घर में शुभ है।

दिक् साधन—

रात्रौ दिक्साधनं कुर्याद् दीपसूत्रध्रुवैक्यतः ।
समे भूमिप्रदेशे तु शङ्कुना दिवसेऽथवा ॥२३॥

घर और देवालय आदि बराबर वास्तविक दिशा में न होने से दिङ्मूढदोष माना जाता है। इसलिये गृह आदि बराबर ठीक दिशा में रखने के लिये दिक् साधन करना जरूरी है। रात्रि में दिशा का साधन दीपक, सूत और ध्रुव से किया जाता है और दिन में दिशा का साधन समतल भूमि के ऊपर शंकु रखकर किया जाता है ॥२३॥

"प्राची मेषतुलारवेरुदयतः स्याद् वैष्णवे वह्निभे,
चित्रास्वातिभमध्यगा निगदिता प्राची बुधैः पञ्चधा ।
प्रासादं भवनं करोति नगरं दिङ्मूढमर्थक्षयं,
हर्म्ये देवगृहे पुरे च नितरामायुर्धनं दिङ्मुखे ॥" राज० अ० १

मेष और तुला संक्रान्ति को सूर्य का उदय पूर्व दिशा में होता है। श्रवण और कृत्तिका नक्षत्र का उदय पूर्व दिशा में होता है। चित्रा और स्वाति नक्षत्र के मध्य में पूर्व दिशा मानी जाती है। विद्वानों ने कहा है कि इन पांच प्रकार से पूर्व दिशा को जानें। प्रासाद गृह और नगर को दिङ्मूढ करने से धन का नाश होता है। यदि ये वास्तविक दिशा में हो तो हमेशा आयु और धन की वृद्धि होती है।

रात्री में और दिन में दिक्साधन—

"तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे सते,
दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा ।

शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो-

र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे ॥"

राज० अ० १ श्लो० ११

रात्रि में दिक साधन—

सप्तर्षि और ध्रुव के बीच में एक गज के अन्तर वाले दो तारा हैं जो ध्रुव के चारों तरफ घूमते हैं उनको मार्कटिका कहते हैं। यह मार्कटिका और ध्रुव जब बराबर समसूत्र में आवे, तब एक अवलंब लटकावें और उसके सामने दक्षिण की तरफ एक दीपक रखें। यदि दीपक का अग्र भाग, अवलंब और ध्रुव ये तीनों बराबर समसूत्र में दिखाई पड़े तो उसे उत्तर दिशा जानें। अवलंब और दीपक के समसूत्र एक रेखा खींची जाय तो वह उत्तर दक्षिण रेखा होगी *।

दिन में दिक्साधन करना हो तो समतल भूमि के उपर बत्तीस अंगुल का एक गोल चक्र बनावें, उसके मध्य बिन्दु पर एक बारह अंगुल के नाप का शंकु रखें। पश्चात् दिन के पूर्वार्ध में देखें कि शंकुकी छाया गोल में जिस जगह प्रवेश करें, वहां एक चिह्न करें वह पश्चिम दिशा होगी और दिन के उत्तरार्ध में जहाँ बाहर निकलें वहां एक बिन्दु करें यह पूर्व दिशा होगी। पीछे पूर्व और पश्चिम की इन दोनों बिन्दुओं तक एक सरल रेखा खींची जाय तो यह पूर्व पश्चिम रेखा होगी, इसको व्यासार्ध मान करके दो गोल बनावें, जिसे एक मत्स्य के जैसी आकृति होगी, उसके ऊपर और नीचे के योग बिन्दु से एक सरल रेखा खींची जाय तो यह उत्तर दक्षिण रेखा होगी। देखो नीचे का दिक्साधन चक्र—

चक्र परिचय—

बत्तीस अंगुल का 'इ उ ए' एक गोल है, उसका मध्य बिन्दु 'अ' है। उसके ऊपर बारह अंगुल का एक शंकु रखकर दिन के पूर्वार्द्ध में देखा गया तो शंकुकी छाया गोल के 'क' बिन्दु के पास प्रवेश करती है, यह पश्चिम दिशा जानें और दिनार्द्ध के बाद 'च' बिन्दु के पास बाहर निकलती है, यह पूर्व दिशा जानें। इन 'क' और 'च' दोनों बिन्दु तक एक सरल रेखा खींचो जाय तो यह पूर्व पश्चिम रेखा होती है। इसको व्यासार्द्ध मान कर 'क' बिन्दु से 'च छ ज' और दूसरा 'च' बिन्दु से 'क ख ग' ऐसे दो गोल बनावें तो पूर्व पश्चिम रेखा के ऊपर एक मछली के जैसी आकृति हो जाती है। उसके मध्य बिन्दु 'अ' से एक सरल रेखा खींची जाय जो गोलके दोनों स्पर्श बिन्दु से बाहर निकल जाय, यह उत्तर दक्षिण रेखा होती है।

---

* उपरोक्त प्रकार से भी वास्तविक दिशा का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि अयनांश के कारण ध्रुव का तारा एवं कृत्तिकादि नक्षत्र ठीक दिशा में उदय नहीं होता। जिसे आजकल नवीन आविष्कार दिक् साधन यंत्र (कुतुबनुमा) से करना चाहिये।

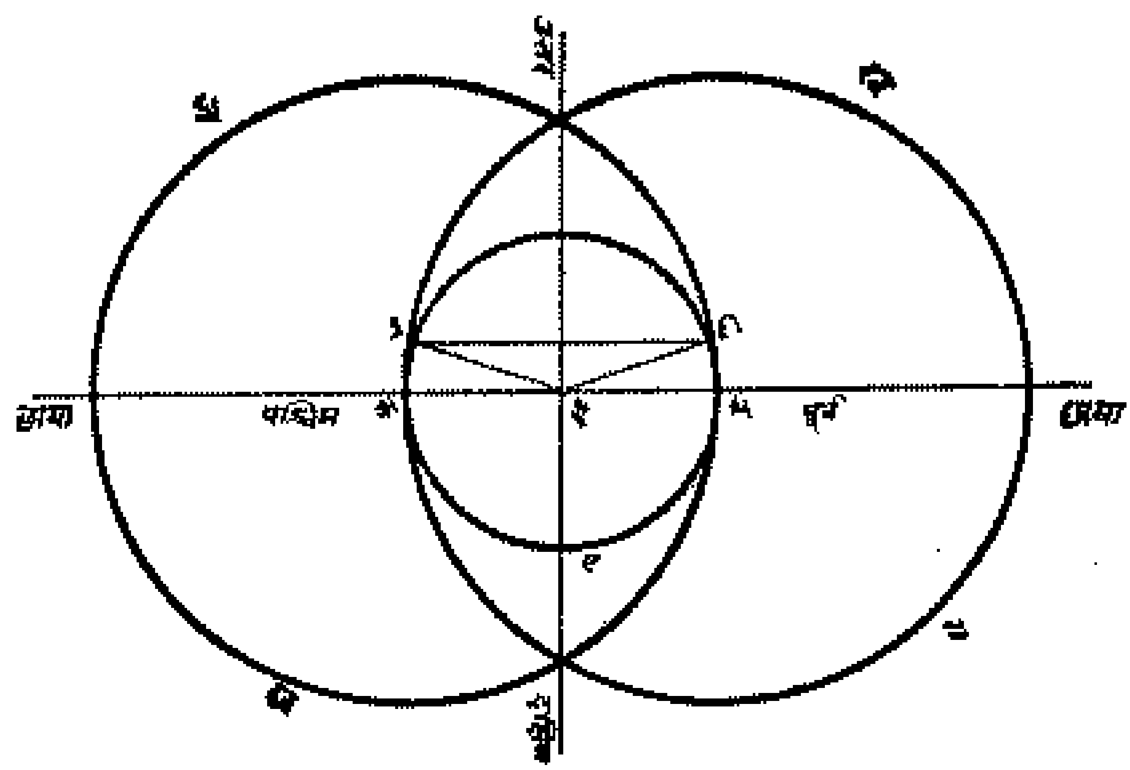

खात विधि—

'नागवास्तु' समालोक्य कुर्यात् खातविधिं' सुधीः ।
पाषाणान्तं जलान्तं वा ततः कूर्मं निवेशयेत् ॥२४॥

प्रथम शेषनाग चक्र का विचार करके विद्वान् शिल्पी खात विधि करें। नींव को खोदने से भूमि में पाषाण अथवा पानी निकल आय, उसके ऊपर कूर्म (कच्छुवा) की स्थापना करें ॥२४॥

नागवास्तु—

"कन्यादौ रवितस्त्रये फणीमुखं पूर्वादि सृष्टिक्रमात्"

ऐसा राजवल्लभ मण्डन के अध्याय प्रथम श्लोक २२ में कहा है कि—
कन्या, तुला और वृश्चिक राशि का सूर्य हो तब शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में; धन, मकर कुम्भ राशि का सूर्य हो तब दक्षिण दिशा में; मीन, मेष और वृष राशि का सूर्य हो तब पश्चिम दिशा में, मिथुन कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब उत्तर में शेषनाग का मुख रहता है।

"पूर्वास्येऽनिलखातनं यममुखे खातं शिवे कारयेत्
श्चीर्षे पश्चिमगे च वह्नि खननं सौम्ये खनेन्नैर्ऋते ॥"

ऐसा राजवल्लभ मण्डन के अध्याय प्रथम श्लोक २४ में कहा है कि-शेषनाग का मुख पूर्व दिशा में हो तो वायुकोण में, दक्षिण दिशा में हो तो ईशानकोण में, पश्चिम दिशा में हो तो अग्निकोण में और उत्तर दिशा में हो तो नैर्ऋत्य कोण में खात करना चाहिये।

(१) वास्तुविधि

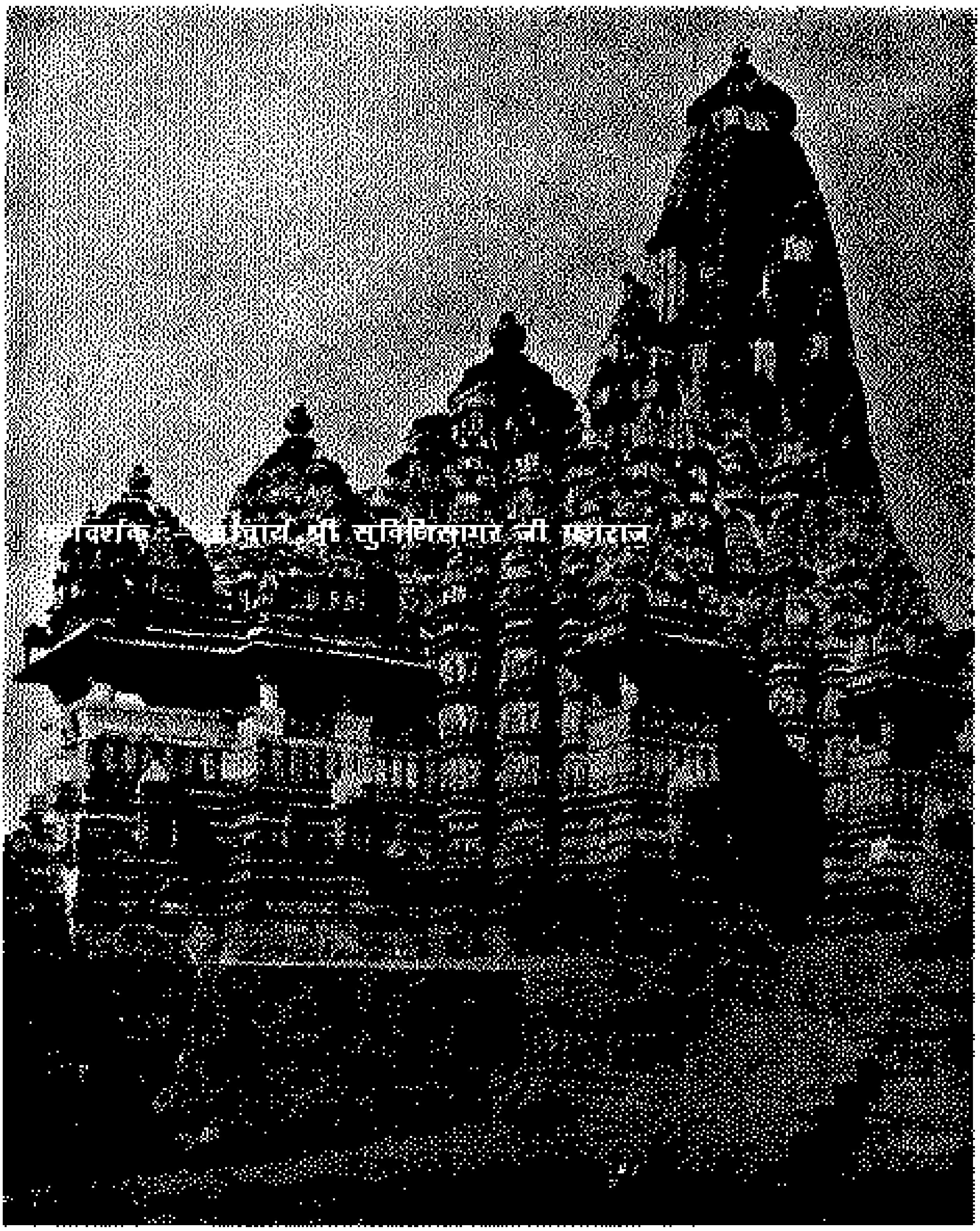
मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

प्राग्ग्रीवं मंडप वाला नागर जाति का निरंधार प्रासाद

खजुराहो (मध्यप्रदेश)

लताश्रृंगवाला विमान नागर जाति का प्रासाद (पीठ मंडोवर और शिखर का सर्वाङ्गपूर्ण दृश्य) — उदयपुर-मेवाड़

ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त ग्रन्थों में अन्य प्रकार से कहा है। मुहूर्त चिन्तामणि के वास्तु प्रकरण श्लोक १९ की टीका में विश्वकर्मा का प्रमाण देकर लिखा है कि—

"ईशानतः सर्पति कालसर्पो, विहाय सृष्टिं गणयेद् विदिक्षु।
शेषस्य वास्तोर्मुखमध्यपुच्छं, त्रयं परित्यज्य खनेच्च तुर्यम्॥"

शेषनाग प्रथम ईशानकोण से चलता है, उसका मुख, नाभि और पूंछ सृष्टिमार्ग को छोड़कर विपरीत विदिशा में रहता है। अर्थात् ईशान में मुख, वायुकोण में नाभि और नैऋत्य कोण में पूंछ रहता है। इसलिये इन तीनों विदिशाओं को छोड़कर चौथा अग्निकोण खाली रहता है, उसमें प्रथम खात करना चाहिये।

राहु (नाग) मुख—

"देवालये गेहविधौ जलाशये, राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः।
मीनार्क सिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे, खाते मुखात् पृष्ठविदिक्शुभाभवेत्॥"

देवालय का खात मुहूर्त करते समय राहु का मुख यदि मीन, मेष और वृषभ राशि का सूर्य हो तब ईशान कोण में, मिथुन, कर्क और सिंह राशि का सूर्य हो तब वायुकोण में, कन्या तुला और वृश्चिक राशि का सूर्य हो तब नैऋत्यकोण में, धन, मकर और कुम्भ राशि का सूर्य हो तब अग्निकोण में, राहु का मुख रहता है।

घरके खात मुहूर्त के समय नाग का मुख सिंह कन्या और तुला राशि के सूर्य में ईशान कोण में, वृश्चिक धन और मकर राशि के सूर्य में वायुकोण में, कुम्भ मीन और मेषराशि के सूर्य में नैऋत्यकोण में, वृष मिथुन और कर्क राशि के सूर्य में अग्निकोण में राहु का मुख रहता है।

कुंआ, बावडी, तालाब आदि जलाशयको आरंभ करते समय राहु का मुख मकर कुम्भ और मीन राशि के सूर्य में ईशान कोण में, मेष वृष और मिथुन राशि के सूर्य में वायुकोण में, कर्क सिंह और कन्या राशि के सूर्य में नैऋत्यकोण में, तुला वृश्चिक और धन राशी के सूर्य में अग्निकोण में राहु का मुख रहता है।

जिस विदिशा में राहु का मुख हो, उसके पीछे की विदिशा में खात करना शुभ है। जैसे—ईशान कोण में मुख है तो अग्निकोण में, वायुकोण में मुख हो तो ईशानकोण में, नैऋत्य कोण में मुख हो तो वायुकोण में और अग्निकोण में मुख हो तो नैऋत्य कोण में खात करना शुभ है।●

● राहु मुख वाले नागमुख या वास्तुमुख इसमें बहुत मतान्तर है। कोई सृष्टि क्रम से और कोई विलोम क्रम से मानते हैं। विशेष जानने के लिये देखें स्वयं द्वारा अनुवादित 'राजवल्लभ मंडन ग्रंथ'।

कूर्ममानं—

अर्धाङ्गुलो भवेत् कूर्म एकहस्ते सुरालये ।
अर्धाङ्गुला ततो वृद्धिः कार्या तिथिकरावधि ॥२५॥
एकत्रिंशत्करान्तं च तदर्धा वृद्धिरिष्यते ।
ततोऽर्धापि शतार्धान्तं कूर्मो मन्वङ्गुलोत्तमः ॥२६॥

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में आधे अंगुल के माप का कूर्म (कच्छुआ) नींव में स्थापित करें। दोसे पंद्रह हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके, (दो हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में डेढ़ अंगुल, चार हाथ के प्रासाद में दो अंगुल, इस प्रकार आधा २ अंगुल बढ़ाने से पंद्रह हाथ के प्रासाद में साढ़े सात अंगुल के मान का कूर्म होता है)। सोलह से इकतीस हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढ़ा करके और बत्तीस से पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ एक २ सूत बढ़ा करके नींव में स्थापित करें। इस प्रकार पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में एक सूत कम चौदह अंगुल के मान का कूर्म होता है ॥२५-२६॥

अपराजितपृच्छा के मत से कूर्ममान—

"एकहस्ते सुरागारे कूर्मः स्याच्चतुरङ्गुलः ।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धिः प्रतिहस्तं दशावधिः ॥
पादवृद्धिः पुनः कुर्याद् विंशतिहस्ततः करे ।
ऊर्ध्वं वै त्रिंशद्धस्तान्तं वसुहस्तैकमङ्गुलम् ॥
ततः परं शतार्धान्तं सूर्यहस्तैकमङ्गुलम् ।
अनेन क्रमयोगेन मन्वङ्गुलः शतार्धके ॥" सूत्र ५२

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में कूर्म चार अंगुल के मान का, दोसे दस हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा कर के, ग्यारह से बीस हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढ़ा करके, इक्कीस से तीस हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ एक २ सूत बढ़ा कर के और इकतीस से पचास हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ $\frac{1}{12}$ अंगुल बढ़ा कर के बनावें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद में लगभग चौदह अंगुल के मान का कूर्म होता है।

अपराजितपृच्छाके मत से दूसरा कूर्ममान—

"एकहस्ते तु प्रासादे कूर्मश्चार्धाङ्गुलः स्मृतः ।
अर्द्धवृद्धिः प्रकर्तव्या पञ्चदशहस्तावधिः ॥
एकत्रिंशश्च हस्तान्तं पादवृद्धिः प्रकीर्तिता ।
तदर्धेन पुनर्वृद्धि-र्मन्वङ्गुलः शतार्धके ॥" सूत्र १५३

एक हाथ के प्रासाद में कूर्म आधा अंगुल का, दोसे पंद्रह हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके, सोलह से एकत्तीस हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढ़ा करके, और बत्तीस से पचास हाथ के प्रासाद में प्रत्येक हाथ एक २ सूत बढ़ा करके बनावें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद में एक सूत कम चौदह अंगुल के मान का कूर्म होता है।

क्षीरार्णव के मत से कूर्ममान—

"शिलायाः पञ्चमांशेन कारयेत् कूर्ममुत्तमम् ।
सर्वालङ्कारसंयुक्तं दिव्यपुष्पैश्च पूजितम् ।।" अध्याय १०१

धारणी शिला के पांचवें भाग का कूर्म बनावें, यह उत्तम मान है। उसको सब प्रकार के अलंकारो से युक्त करें और सुगंधित पुष्पों से पूजित करें।

कूर्म का ज्येष्ठ और कनिष्ठ मान—

चतुर्थांशाधिको ज्येष्ठः कनिष्ठो हीनयोगतः ।
सौवर्णो रूप्यजो वापि स्नाप्यः पञ्चामृतेन स ।।२७।।
तिलैर्यवैस्तथा होम-पूर्णां चैव प्रदापयेत् ।

कूर्मका जो मान आया हो, वह मध्यम मान है, उसमें इस मान का चौथा भाग बढ़ावे तो ज्येष्ठ मानका और चौथा भाग कम करें तो कनिष्ठ मानका कूर्म होता है। यह कूर्म सुवर्ण अथवा चांदी का बनाना चाहिये। उसको पञ्चामृत से स्नान कराके, तथा तिल और जवों का पूर्ण आहुति पूर्वक होम करके स्थापित करें ।।२७।।

शिला और कूर्म का स्थापन क्रम—

ईशानादग्निकोणाद्या शिलाः स्थाप्याः प्रदक्षिणाः ।।२८।।
मध्ये कूर्मशिला पश्चाद् गीतवादित्रमङ्गलैः ।
बलिदानं च नैवेद्यं विविधान्नं घृतप्लुतम् ।।
देवताभ्यः सुधीर्दद्यात् कूर्मन्यासे शिलासु च ।।२६।।

इति कूर्म स्थापनम् ।

प्रथम ईशान अथवा अग्नि कोने में नंदा शिला की स्थापना करके पीछे प्रदक्षिण क्रम से अन्य शिलाओं को स्थापित करें। पीछे मध्य में कूर्म शिला (धारणी शिला) को स्थापित करें। शिला स्थापन करते समय मांगलिक गीत और वाजीत्रों का नाद करावें। वास्तु के देवों को बलि बाकुले, नैवेद्य और अनेक प्रकार के धान्य के घृत से पूर्ण मालपूवे आदि चढ़ावें ।।२८-२९।।

पुनः शिला स्थापन क्रम—

"नन्दां पुरः प्रदातव्यां शिलाः शेषाः प्रदक्षिणे ।
मध्ये च धरणीं स्थाप्या यथाक्रमं प्रयत्नतः ॥" क्षीरार्णवे अध्य० १०१

प्रथम नन्दा नाम की शिला को स्थापित करें, पीछे अनुक्रम से भद्रा आदि शिलाओं को प्रदक्षिण क्रम से स्थापित करें और मध्य में धरणी शिला को स्थापन करें। ऐसा क्षीरार्णव ग्रंथ में कहा है।

शिला के नाम—

"नन्दा भद्रा जया रिक्ता अजिता चापराजिता
शुक्ला सौभागिनी चैव धरणी नवमी शिला ॥" क्षीरार्णवे अ० १०१

नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता, अजिता, अपराजिता, शुक्ला और सौभागिनी ये अनुक्रम से दिशाओं की आठ शिलाओं के नाम हैं। नवमीं धरणी नाम की शिला मध्य भाग की है।

अपराजित मत से शिला के नाम—

"नन्दा भद्रा जया पूर्णा विजया पञ्चमी शिला
मङ्गला ह्यजितापरा-जिता च धरणीभवाः ॥"

नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, विजया, मंगला, अजिता, अपराजिता, ये अनुक्रम से दिशाओं की शिला के नाम है और मध्य भाग की नवमीं धरणी नाम की शिला है।

धरणी शिला का मान—

"एक हस्ते तु प्रासादे शिला वेदाङ्गुला भवेत् ।
द्व्यङ्गुला च भवेद् वृद्धि-र्यावच्च दशहस्तकम् ॥
दशोर्ध्वं विंशपर्यन्तं हस्ते हस्ते चैकाङ्गुला ।
अर्द्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि-र्यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥
तृतीयांशे कृते पिण्डे तदर्धे रूपपालकम् ।
पुष्पाणि च यथाकारं शिलामध्ये ह्यलंकृतम् ॥" क्षीरार्णवे अ० १०१

एक हाथ के प्रासाद में चार अंगुल की शिला, दोसे दस हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ दो २ अंगुल बड़ा करके, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद में एक २ अंगुल बड़ा करके, और इक्कीस से पचास हाथ तक के प्रासाद में आधा २ अंगुल बड़ा करके स्थापित करें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद में ४७ अंगुल के मान की समचोरस धरणी शिला होती है।

शिला का जो समचोरस मान आवे, उसके तीसरे भाग का पिंड (मोटाई) रक्खें। पिंड के आधे भाग में शिला के ऊपर रूपों बनावें। तथा पुष्पकी आकृति बनावें।

ज्ञान प्रकाश दीपार्णव के मत से धरणी शिला का मान—

"एकहस्ते तु प्रासादे शिला वेदाङ्गुला भवेत् ।
षडंगुला द्विहस्ते तु त्रिहस्ते ग्रहसंख्यया ॥
द्वादशाङ्गुलं शिलामानं प्रासादे चतुर्हस्तके ।
तृतीयांशोदयः कार्यो हस्ताद्याद् वेदहस्तकम् ॥
चतुर्हस्तादितः कृत्वा यावद् द्वादशहस्तकम् ।
पादोनाङ्गुला च वृद्धि-र्हस्ते हस्ते च दापयेत् ॥
सूर्यहस्तादितः कृत्वा यावच्च जिनहस्तकम् ।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि-रुच्छ्रये तु नवाङ्गुला ॥
चतुर्विंशादितः कृत्वा यावत् षट्त्रिंशहस्तकम् ।
पादोनाङ्गुला च वृद्धिः पिण्डं च द्वादशाङ्गुलम् ॥
षट्त्रिंशादितश्च कृत्वा यावत् पञ्चाशद्धस्तकम् ।
एकाङ्गुला भवेद् वृद्धिः पिण्डं च द्वादशाङ्गुलम् ॥" अ० ११

एक हाथ के प्रासाद में शिला का मान चार अंगुल, दो हाथ में छः अंगुल, तीन हाथ में नव अंगुल और चार हाथ के प्रासाद में बारह अंगुल शिला का मान है। एक से चार हाथ तक के प्रासाद में शिला का जो मान आवे, उसके तीसरे भाग शिला की मोटाई रक्खें। पांच से बारह हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ पौना २ अंगुल बढ़ाकर के, तेरह से चोबीस हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके बनावें। पांच से चोबीस हाथ तक के प्रासाद में शिला का जो मान आवे उसकी मोटाई नव अंगुल की रक्खें। पचीस से छत्तीस हाथ तक पौन २

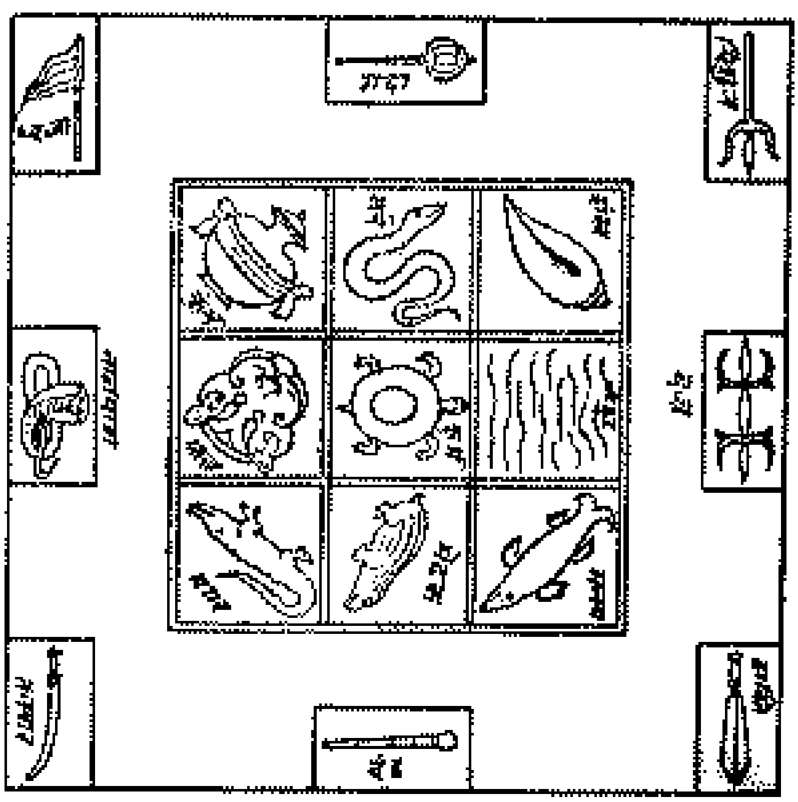

अंगुल और सोलह से पचास हाथ तक प्रत्येक हाथ एक अंगुल बढ़ा करके बनावें। उसकी मोटाई बारह अंगुल की रक्खें। इस प्रकार समचोरस शिला का कुल मान ४७ अंगुल का होता है।

अपराजित मत से धारणी शिला का मान—

"नवत्यङ्गुल दैर्घ्ये च पृथुत्वे चतुर्विंशतिः।
द्वादशाङ्गुलपिण्डं च शिलामानप्रमाणतः॥" सूत्र ४७ श्लो० १६

नब्बे अंगुल लंबी, चोवीस अंगुल चौड़ी और बारह अंगुल मोटी, यह धरणी शिला का मान जानें।

दूसरा मत—

"एकहस्ते च प्रासादे शिला वेदाङ्गुला भवेत्।
षडंगुला द्विहस्ते च त्रिहस्ते च ग्रहाङ्गुला॥
चतुर्हस्ते च प्रासादे शिला स्याद् द्वादशाङ्गुला।
तृतीयांशोदयः कार्यो हस्तादौ च युगान्ततः॥
ततोऽपरेऽष्टहस्तान्तं वृद्धिस्त्र्यङ्गुलतो भवेत्।
पुनर्द्व्यङ्गुलतो वृद्धिः पञ्चाशद्धस्तकावधि॥
पादेन चोच्छ्रिता शस्ता तां कुर्यात् पद्मलाञ्छिताम्॥" सूत्र १५३

एक हाथ के प्रासाद में चार अंगुल की, दो हाथ के प्रासाद में छह अंगुल की, तीन हाथ के प्रासाद में नव अंगुल की और चार हाथ के प्रासाद में बारह अंगुल की समचोरस धरणी शिला स्थापन करना चाहिए। चार हाथ तक के प्रासाद के लिये धरणी शिला का जो मान आया हो, उसके तीसरे भाग शिला की मोटाई रखना चाहिये। पांच से आठ हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ तीन तीन अंगुल और नव से पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ दो दो अंगुल बढ़ा करके बनावें। इस प्रकार पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद के लिये १०८ अंगुल के मान की धरणी शिला होती है। वह चौथे भाग मोटी रक्खें और कमल की आकृतियों से शोभायमान बनावें।

धरणी शिला ऊपर के रूप—

"लहरं मत्स्यं मण्डूकं मकरीं ग्रासमेव च।
जलं सर्पं शंखयुक्तं शिलामध्ये ह्यलङ्कृतम्॥" क्षीरा० सू० १०१

पानी की लहर, मछली, मेंढक, मगर, ग्रास, कल (कलश) सर्प शंख इत्यादि रूप बना करके शिला को सुशोभित करना चाहिये।

कूर्मशिला के रूपों के संबंध में सूत्रधार वीरपाल विरचित बेडाया प्रासाद तिलक ग्रंथ का अध्याय दूसरे में लीखा है कि—

"कूर्ममानमिदं च गर्भरचनाथाग्नौ शिलायां जलम्,
याम्ये मीनमुखं च नैऋ तदिशि स्थाप्यं तथा दर्दुरम् ।
वारुण्यां मकरश्च वायुदिशि वै ग्रासश्च सौम्ये ध्वनिः,
नागं शङ्करदिशु पूर्वविषये कुम्भः शिलालाञ्छितः ।।"

कूर्म के मान की गर्भ रचना कहता है कि—अग्निकोण में पाणी की लहर, दक्षिण में माछली, नैऋत्य में मेंढक, पश्चिम में मगर, वायुकोण में ग्रास, उत्तर में शंख, ईशान में सर्प और पूर्व दिशा में कुम्भ की आकृतियां बनानी चाहिये।

शिल्पियों की मान्यता वंश परंपरा से लहर की आकृति पूर्व दिशा में बनाने की हैं।

सूत्रारंभ नक्षत्र—

सूत्रारम्भो गृहादीना-मुत्तरायां करत्रये ।
आर्द्रे पुष्ये मृगे मैत्र्ये पौष्णये वासववारुणे ।।२०।।

प्रासाद और गृह आदि का सूत्रारंभ तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद), हस्त, चित्रा, स्वाति, रोहिणी, पुष्य, मृगशीर्ष, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा और शतभिषा इन नक्षत्रों में करना चाहिये ।।२०

शिला स्थापन नक्षत्र—

शिलान्यासस्तु रोहिण्यां श्रवणे हस्तपुष्ययोः ।
मृगशीर्षे च रेवत्या-मुत्तरात्रितये शुभः ।।२१।।

रोहिणी, श्रवण, हस्त, पुष्य, मृगशीर, रेवती और तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में शिलाकी स्थापना करना शुभ है ।।२१।।

देवालय का निर्माणस्थान—

नद्यां सिद्धाश्रमे तीर्थे पुरे ग्रामे च गह्वरे ।
वापी-वाटी-तडागादि-स्थाने कार्यं सुरालयम् ।।२२।।

नदी के तट, सिद्ध पुरुषों के निर्वाण स्थान, तीर्थभूमि, शहर गांव, पर्वत की गुफाओं में, बावडी, वाटिका (उपवन) और तालाब आदि पवित्र स्थानों में देवालय बनाना चाहिये ॥३२॥

प्रासाद निर्माण पदार्थ—

स्वशक्त्या काष्ठमृदिष्टका शैलधातुरत्नजम् ।
देवतायतनं कुर्याद् धर्मार्थकाममोक्षदम् ॥३३॥

अपनी शक्ति के अनुसार काष्ठ, मिट्टी, ईंट, पाषाण, सुवर्ण आदि धातुओं और रत्न, इन पदार्थों का देवालय बनाना चाहिये। किसी भी पदार्थ का देवालय बनाने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३३॥

देव स्थापन का फल—

देवानां स्थापनं पूजा पापघ्नं दर्शनादिकम् ।
धर्मवृद्धिर्भवेदर्थः कामो मोक्षस्ततो नृणाम् ॥३४॥

देवों की स्थापना, पूजा और दर्शन करने से मनुष्यों के सब पापों का नाश होता है तथा धर्म की वृद्धि, एवं अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३४॥

देवालय बनाने का फल—

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृन्मये दशसङ्गुणम् ।
ऐष्टके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं स्मृतम् ॥३५॥

देवालय घास का बनाने से कोटिगुणा, मिट्टी का बनाने से दस कोटिगुणा, ईंटों का बनाने से सौकोटिगुणा और पाषाण का बनाने से अनन्त गुणा फल होता है ॥३५॥

वास्तु पूजा का सप्त स्थान—

कूर्मसंस्थापने द्वारे पद्माख्यायां च पौरुषे ।
घटे ध्वजे प्रतिष्ठाया-मेवं पुण्याहसप्तकम् ॥३६॥

कूर्म की स्थापना, द्वार स्थापन, पद्मशिला की स्थापना, प्रासाद पुरुष की स्थापना, कलश और ध्वजा चढाना, और देव प्रतिष्ठा, ये सात कार्य करते समय वास्तु पूजन अवश्य करना चाहिये। यह पुण्याहसप्तक कहा जाता है ॥३६॥

शान्तिपूजा का चौदह स्थान—

भूम्यारम्भे तथा कूर्मे शिलायां सूत्रपातने ।
खुरे द्वारोच्छ्रये स्तम्भे पट्टे पद्मशिलासु च ॥३७॥
शुकनासे च पुरुषे घण्टायां कलशे तथा ।
ध्वजोच्छ्रये च कुर्वीत शान्तिकानि चतुर्दश ॥३८॥

भूमिका आरंभ, कूर्म न्यास, शिला न्यास और सूत्रपात (तलनिर्माण), खुर शिला स्थापन, द्वार और स्तंभ स्थापन, पाट चढाते समय, पद्मशिला, शुकनास और प्रासाद पुरुष के रखते समय, आमलसार, कलश चढ़ाना, और ध्वजा चढ़ाना, ये चौदह कार्य करते समय शान्तिपूजा अवश्य करनी चाहिये ॥३७–३८॥

प्रासाद का प्रमाण—

एक हस्तादिप्रासादात् यावद्धस्तशतार्धकम् ।
प्रमाणं कुम्भके मूल-नासिके भित्तिबाह्यतः ॥३९॥

एक हाथ से पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का प्रमाण दीवार के बाहर कुंभा के मूलनासक (कोणा) तक गिना जाता है ॥३९॥

मण्डोवर के थरों का निर्गम—

कुम्भादिस्थावराणां च निर्गमः समसूत्रतः ।
पीठस्य निर्गमो बाह्ये तथैव छाद्यकस्य च ॥४०॥

कुम्भा से लेकर छज्जा के तल भाग तक जितने थर बनाये जायं, ये सब थरों के निर्गम समसूत्र में रखने चाहिये । तथा पीठ और छज्जा का निर्गम थरों के आगे निकलता हुआ रखना चाहिये ॥४०॥

प्रासाद के अंगों की संख्या—

त्रिपञ्चसप्तनवभिः फालनाभिर्विभाजिते ।
प्रासादस्याङ्गसंख्या च वारिमार्गान्तरस्थितिः ॥४१॥

कर्ण, प्रतिकर्ण और नन्दी आदि फालनायें तीन, पांच, सात अथवा नव संख्या तक की जाती हैं, ये प्रासाद की अंग संख्या हैं । उन्हें वारिमार्ग के अंतराल में (प्रासाद की दीवार से बाहर निकलती) रखना चाहिये ॥४१॥

फालनाओं का सामान्य मान—

फालना कर्णतुल्या स्याद् भद्रं तु द्विगुणं मतम् ।
सामान्योऽयं विधिस्तुल्यो हस्ताङ्गुलविनिर्गमः ॥४२॥

इति श्री सूत्रधारमण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे
मिश्रलक्षणो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

सब फालनायें कोने के मान के बराबर रखनी चाहिये और भद्र कोने से दुगुना रखना चाहिये, ऐसा सामान्य नियम है। ये सब फालनायें प्रासाद का जितने हाथ का विस्तार हो उतने अंगुल निकलती रखनी चाहिये ॥४२॥

इति श्रीपंडित भगवानदास जैन द्वारा अनुवादित प्रासादमण्डन के मिश्र-
लक्षण नाम के प्रथमाध्याय की सुबोधिनी नाम की भाषाटीका समाप्त ॥१॥

अथ प्रासादमण्डने द्वितीयोऽध्यायः

जगती—

विश्वकर्मोवाच—

प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते ।
यथा सिंहासनं राज्ञः प्रासादस्य तथैव सा ॥१॥

प्रासाद की मर्यादित भूमि को जगती कहते हैं। जैसे—राजा का सिंहासन रखने के लिये अमुक स्थान मर्यादित रखा जाता है, वैसे प्रासाद बनाने के लिये अमुक भूमि मर्यादित रक्खी जाती है ॥१॥

अपराजितपृच्छा के सूत्र ११५ में श्लोक ५ में लीखा हैं कि—

"प्रासादो लिङ्गमित्युक्तो जगती पीठमेव च ॥"

प्रासाद शिवलिङ्गका स्वरूप है। जैसे शिवलिङ्ग के चारों तरफ पीठिका है, वैसे ही प्रासाद के जगतीरूप पीठिका है।

जगती का आकार—

चतुरस्रायताष्टास्रा वृत्ता वृत्तायता तथा ।
जगती पञ्चधा प्रोक्ता प्रासादस्यानुरूपतः ॥२॥

समचोरस, लंब चोरस, आठ कोने वाली, गोल और लंब गोल, ऐसे पांच आकार वाली जगती हैं। उनमें से प्रासाद का जैसा आकार हो, वैसी जगती बनानी चाहिये ॥२॥

जगती का विस्तार मान—

प्रासादपृथुमानाच्च त्रिगुणा च चतुर्गुणा ।
क्रमात् पञ्चगुणा प्रोक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठिका ॥३॥

प्रासाद के विस्तार के मान से तीन गुणी, चार गुणी अथवा पांच गुणी जगती बनानी चाहिये। उनमें तीनगुणी ज्येष्ठमान की, चार गुणी मध्यममान की और पांच गुणी कनिष्ठ-मान की जगती समझनी चाहिये ॥३॥

अपराजितपृच्छा सू० ११५ में भी कहा है कि—

"प्रासादपृथुमानेन द्वि (त्रि ?) गुणा चोत्तमा तथा ।
मध्यमा चतुर्गुणा याधमा पञ्चगुणोच्यते ॥"

प्रासाद के विस्तार से दुगुनी हो तो उत्तम, चार गुनी हो तो मध्यम और पांच गुनी हो तो कनिष्ठ मान की जगती कही जाती है।

कनिष्ठे[1] ज्येष्ठा कनिष्ठा ज्येष्ठे मध्ये च मध्यमा ।
प्रासादे जगती कार्या स्वरूपा लक्षणान्विता ॥४॥

कनिष्ठ मान के प्रासाद में ज्येष्ठमान की जगती, मध्यम मान के प्रासाद में मध्यम मान की, और ज्येष्ठमान के प्रासाद में कनिष्ठ मान की जगती प्रासाद के स्वरूप के लक्षण वाली बनानी। अर्थात् जिस आकार का प्रासाद हो, उसी आकार की जगती बनानी चाहिये ॥४॥

अपराजितपृच्छा में भी लिखा है कि—

"ज्येष्ठा कनिष्ठप्रासादे मध्यमे मध्यमा तथा ।
ज्येष्ठे कनिष्ठा व्याख्याता जगती मानसंख्यया ॥" सूत्र० ११५

कनिष्ठमान के प्रासाद में ज्येष्ठमान की, मध्यममान के प्रासाद में मध्यममान की और ज्येष्ठमान के प्रासाद में कनिष्ठ मान की जगती रखनी चाहिये।

रससप्तगुणाख्याता जिने पर्यायसंस्थिते ।
द्वारिकायां च कर्त्तव्या तथैव पुरुषत्रये ॥५॥

पंच कल्याणक (च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और मोक्ष) वाले अथवा देवकुलिका वाले जिन प्रासाद में, द्वारिका प्रासाद में और त्रिपुरुष (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के प्रासाद में छहगुणी अथवा सातगुणी जगती रखनी चाहिये ॥५॥

मण्डप की जगती—

मण्डपानुक्रमेणैव सपादांशेन सार्धतः ।
द्विगुणा वायता कार्या सहस्रायतने[2] विधिः ॥६॥

मंडप के अनुक्रम से सवायी, डेढ़ी अथवा दुगुनी लंबी जगती करनी चाहिये। हजारों प्रासादों में यही विधि है ॥६॥

(१) कन्यसे कन्यसा ज्येष्ठा", मुद्रित पुस्तकद्वये । (२) 'स्वहस्तायतने' ।

भ्रमणी (परीक्रमा)—

त्रिद्वयेकभ्रमसंयुक्ता ज्येष्ठा मध्या कनिष्ठिका[1] ।
उच्छ्रायस्य त्रिभागेन भ्रमणीनां समुच्छ्रयः ॥७॥

जगती में तीन भ्रमणी (परिक्रमा) हो तो ज्येष्ठा, दो भ्रमणी हो तो मध्यमा और एक भ्रमणी हो तो कनिष्ठा जगती कहा जाता है। यह भ्रमणी की ऊंचाई जगती की ऊंचाई के तीसरे २ भाग की होनी चाहिये ॥७॥

"कनिष्ठे भ्रमणी चैका मध्यमे भ्रमणीद्वयम् ।
ज्येष्ठे तिस्रो भ्रमण्यश्च साङ्गोपाङ्गिकसङ्ख्यया ॥" अप० सूत्र० ११५

कनिष्ठ प्रासाद हो तो एक भ्रमणी, मध्यम प्रासाद हो तो दो भ्रमणी, और ज्येष्ठ प्रासाद हो तो तीन भ्रमणी अपने अंगोपांग वाली बनानी चाहिये।

जगती के कोने—

चतुष्कोणैस्तथा सूर्य-कोणैर्विंशतिकोणकैः ।
अष्टाविंशति-षट्त्रिंशत्-कोणैः स्युः पञ्च कालनाः ॥८॥

चार कोने वाली, बारह कोने वाली, बीस कोने वाली, अट्ठाईस कोने वाली और छत्तीस कोने वाली, ये पांच प्रकार के कोने वाली जगती हैं ॥८॥

जगती की ऊंचाई का मान—

प्रासादार्द्धकहस्तान्ते त्र्यंशा द्वाविंशतिकरे ।
द्वात्रिंशे चतुर्थांशा भूतांशोच्चा शतार्द्धके ॥९॥

एक से बारह हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती प्रासाद के अर्ध भाग की ऊंची बनावें। तेरह से बाईस हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती प्रासाद के तीसरे भाग की, तेईस से बत्तीस हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती चौथे भाग की, और तेतीस से पचास हाथ के प्रासाद की जगती पांचवें भाग की ऊंची बनानी चाहिये ॥९॥

पुनः—

एकहस्ते करेणोच्चा सार्द्धद्वयंशाश्चतुष्करे ।
सूर्यजैनशतार्धान्तं क्रमाद् द्वित्रियुगांशकैः ॥१०॥

(१) 'कनीयसी'।

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की जगती एक हाथ, दो हाथ के प्रासाद की जगती डेढ़ हाथ, तीन हाथ के प्रासाद की जगती दो हाथ, चार हाथ के प्रासाद की जगती ढाई हाथ ऊंची बनावें। पीछे पांच से बारह हाथ तक के प्रासाद की जगती दूसरे भाग की अर्थात् प्रासाद से आधी, तेरह से चौबीस हाथ के प्रासाद की जगती तीसरे भाग और पच्चीस से पचास हाथ तक के प्रासाद की जगती चौथे भाग जितनी ऊंची बनावें ॥१०॥

(यह अपराजितपृच्छा का मत है। देखें सूत्र ११५ श्लोक २२ से २६)

जगती के उदय का थर मान—

तदुच्छ्रायं भजेत् प्राज्ञ-स्त्वष्टाविंशतिभिः पदैः ।
त्रिपदो जाड्यकुम्भश्च द्विपदं कर्णकं तथा ॥११॥
पद्मपत्रसमायुक्ता त्रिपदा शिरःपत्रिका[1] ।
द्विपदं खुरकं कुर्यात् सप्तभागं च कुम्भकम् ॥१२॥
कलशस्त्रिपदः प्रोक्तो भागेनान्तरपत्रकम् ।
कपोतालिस्त्रिभागा च पुष्पकण्ठो युगांशकः ॥१३॥
पुष्पकाज्जाड्यकुम्भस्य निर्गमश्चाष्टभिः पदैः ।
कर्णेषु च दिशापालाः प्राच्यादिषु प्रदक्षिणाः ॥१४॥

जगती के उदय के अट्ठाईस भाग करें। उनमें से तीन भाग का जाड्यकुम्भ, दो ॥ की कर्णिका (कणी), तीन भाग का पद्मपत्र (दासा) सहित ग्रासपट्टी, दो भाग का खुरा, सात भाग का कुम्भ, तीन भाग का कलश, एक भाग का अंतरपत्र, तीन भाग की कपोताली (केवाल) और चार भाग का पुष्पकंठ बनावें। पुष्पकंठ से जाड्यकुम्भ का निर्गम आठ भाग रक्खें। जगती के कोने में पूर्वादि सृष्टि क्रम से दिक्पालों को स्थापित करना चाहिये ॥११ से १४॥

जगती के आभूषण—

प्राकारैर्मण्डिता कार्या चतुर्भिर्द्वारमण्डपैः ।
मकरैर्जलनिष्कासैः सोपानैस्तोरणादिभिः ॥१५॥

जगती को किलों से शोभायमान करें, अर्थात् जगती के चारों तरफ किला बनावें। तथा चारों दिशाओं में मण्डप वाले चार द्वार बनावें। पानी निकलने के लिये मगर के मुख वाली नाली रक्खें। एवं सीढ़ियां और तोरणों से शोभायमान जगती बनावें ॥१५॥

(१) शीर्षपत्रिका।

जगती का उदय और उसके थरों का दिग्दर्शन—

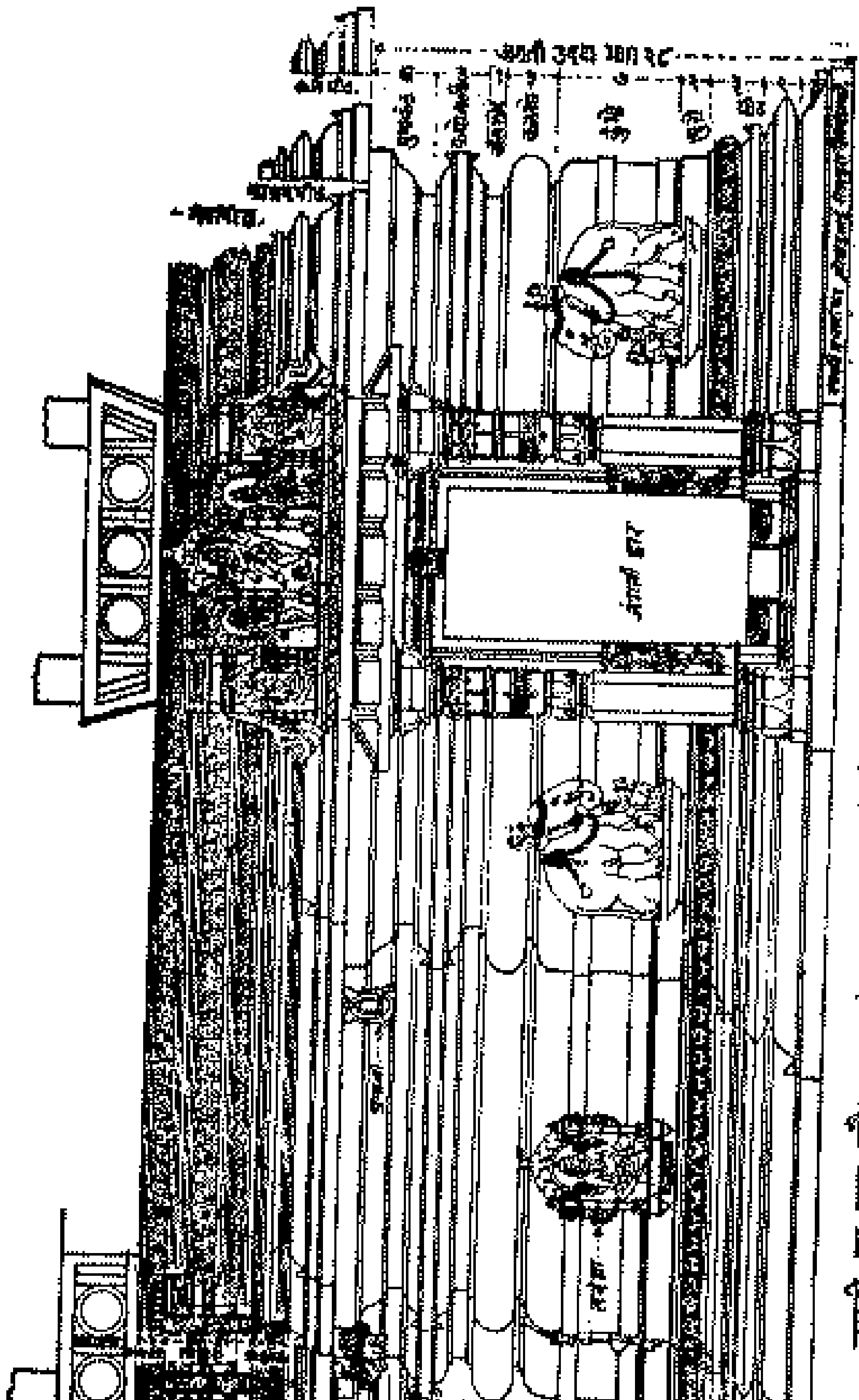

जगती का द्वार और द्वार मंडप तथा जगती के ऊपर प्रासाद की महापीठ

मण्डपाग्रे प्रतोल्यग्रे सोपानं शुण्डिकाकृतिम् ।
तोरणं कारयेत्[1] तस्य पदपदानुसारतः[2] ॥१६॥

मण्डप के आगे और प्रतोली (पोल) के आगे सीढ़ियाँ बनावें, इसके दोनों तरफ हाथी की आकृति रक्खें। प्रत्येक पद के अनुसार तोरण बनावें ॥१६॥

तोरणस्योभयस्तम्भ–विस्तरं गर्भमानतः ।
भित्तिगर्भप्रमाणेन सममानेन[3] वा भवेत् ॥१७॥

तोरण के दोनों स्तंभ के मध्य का विस्तार प्रासाद के गर्भगृह के मान से, अथवा दीवार के गर्भमान से, अथवा प्रासाद के मान से रखा जाता है ॥१७॥

वेदिका पीठरूपा च शोभाभिर्बहुभिर्युता ।
विचित्रं तोरणं कुर्याद् दोला देवस्य तत्र च ॥१८॥

यह जगतीरूप वेदिका प्रासाद की पीठरूप है, इसलिये इसे अनेक प्रकार के रूपों तथा तोरणों से शोभायमान बनाना चाहिये। तोरणों के झूलों में देवों की आकृतियाँ बनावें ॥१८॥

देवके वाहन का स्थान—

प्रासादाद्वाहनस्थाने करणीया चतुष्किका ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च-रससप्तपदान्तरे ॥१९॥

देवों के वाहन रहने के स्थान पर चौकी बनावें। यह चौकी प्रासाद से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह अथवा सात पद जितनी दूर बनावें ॥१९॥

देवके वाहन का उदय—

अर्चायामे[4] नवांशे तु पञ्चषट्सप्त भागिकः ।
गुह्यनाभिस्तनान्तं वा त्रिविधो वाहनोदयः ॥२०॥

मूर्ति के उदय का नव भाग करें। उनमें से पांच, छह अथवा सात भाग के मान का वाहन का उदय रखें। अथवा गुह्य, नाभि या स्तन पर्यन्त वाहन का उदय रक्खें। ये तीन २ प्रकार के वाहन का उदय कहा गया है ॥२०॥

(१) 'त्रिविधं कुर्यात्' (२) 'पट्ट पट्टानुसारतः'। (३) 'तयोर्मध्येऽथवा भवेत्'। (४) 'अर्चाया नवमांशे तु,'

देवके वाहन का दृष्टिस्थान—

पादं जानु कटिं याव-दर्चाया वाहनस्य दृक् ।
वृषस्य विष्णुभागान्ते सूर्ये व्योमस्तनान्तकम् ॥२१॥

मूर्ति के चरण, जानु अथवा कमर पर्यन्त ऊंचाई में वाहन की दृष्टि रखनी चाहिये। वृषभ (नन्दी) की दृष्टि शिवलिंग के विष्णु भाग तक और सूर्य के वाहन (घोड़ा) की दृष्टि मूर्ति के स्तनभाग तक रखनी चाहिये ॥२१॥

अपराजितपृच्छा में कहा है कि—

"वृषस्य चोच्छ्रयः कार्यो विष्णुभागान्तदृष्टिकः ॥
पादं जानु कटिं याव-दर्चाया वाहनस्य दृक् ।
गुह्यनाभिस्तनान्तं वा सूर्ये व्योमस्तनान्तकम् ॥
विलोमे कुरुते पीडा-मधोदृष्टिः सुखक्षयम् ।
स्थानं भ्रश्यादूर्ध्वदृष्टिः स्वस्थाने मुक्तिदायिका ॥" सूत्र० २०८

वृषभ की ऊंचाई शिवलिंग के विष्णुभाग तक दृष्टि रहे, इस प्रकार रक्खें। देवों के वाहन की दृष्टि उनके चरण, जानु अथवा कटि तक रहे तथा गुह्य नाभि और स्तन तक दृष्टि रहे, इस प्रकार ऊंचाई रक्खें। इससे विपरीत रखने से दुःख होवेगा। उपरोक्त भाग से नीची दृष्टि रहने पर सुख का क्षय होगा और यदि ऊंची दृष्टि ही रहेगी तो स्थान भ्रष्ट होगा। इसलिये कहे हुए अपने २ स्थान में दृष्टि रखने से मुक्तिपद मिलता है।

जिन प्रासाद के मंडपों का क्रम—

जिनाग्रे समोसरणं शुकाग्रे गूढमण्डपः ।
गूढस्याग्रे[1] चतुष्किका तदग्रे नृत्यमण्डपः ॥२२॥

जिन प्रासाद के आगे समवसरण बनाना। शुकनास (कवलीमंडप) के आगे गूढ मण्डप, इसके आगे चौकी मंडप और इसके आगे नृत्यमंडप बनाने चाहिये ॥२२॥

जिनप्रासाद में देवकुलिकाका क्रम—

द्विसप्तत्या द्विपञ्चाशै-र्वा चतुर्विंशतितोऽपि वा ।
जिनालये चतुर्दिक्षु सहितं जिनमन्दिरम् ॥२३॥

ऐसा जिनमन्दिर बनाना चाहिये की जिनप्रासाद के चारों तरफ बहत्तर, बावन अथवा चौवीस देवकुलिकायें हों ॥२३॥

(१) 'तस्याग्रे चतुष्किका च'।

परमजैन ठक्कुर 'फेरु' विरचित वत्थुसारपयरण के तीसरे प्रकरण में देवकुलिका का क्रम बतलाया है। जैसे—

बावन जिनालय—

"चउतीसं वाम दाहिण नव पुट्ठि अट्ठ पुरओ अ देहरयं।
मूलपासाय एगं बावण जिनालये एवं ॥"

जिनप्रासाद के बायीं और दाहिनी ओर सत्रह २, पीछे के भाग में नौ और आगे आठ, ऐसे इकावन देवकुलिका और एक मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बावन जिनालय कहा जाता है।

बहत्तर देवकुलिका—

"पणवीसं पणवीसं दाहिणवामेसु पिट्ठि इग्गारं।
दह अग्गे नायव्वं इम बहत्तरि जिणिदालं ॥"

जिनप्रासाद के बायीं और दाहिनी ओर पच्चीस २, पीछे की तरफ ग्यारह और आगे की तरफ दस, ऐसे इकहत्तर देवकुलिका और एक मुख्य प्रासाद मिलकर कुल बहत्तर जिनालय कहा जाता है।

चौवीस देवकुलिका—

"अग्गे दाहिण वामे अट्ठट्ठजिणिंदगेह चउवीसं।
मूलसिलागाउ कमं पकीरए जगइ-मज्झम्मि ॥"

मुख्य जिनप्रासाद के आगे, दाहिनी और बायीं ओर, ऐसे तीन दिशा में आठ २ देवकुलिका बनाने से कुल चौवीस जिनालय कहा जाता है। ये सब देवकुलिकाएं जगती के प्रान्त (सरहद) भाग में की जाती हैं।

मण्डपाद् गर्भसूत्रेण वामदक्षिणयोर्दिशोः।
अष्टापदं प्रकर्त्तव्यं त्रिशाला वा बलाणकम् ॥२४॥

मुख्य जिनप्रासाद के गूढ मंडप की बायीं और दाहिनी ओर अष्टापद, त्रिशाला अथवा बलाणक बनावें। (सामने भी बलाणक बनाया जाता है) ॥२४॥

रथ और मठ का स्थान—

अपरे रथशाला च मठं याम्ये प्रतिष्ठितम्।
उत्तरे रथरन्ध्रं च प्रोक्तं श्रीविश्वकर्मणा ॥२५॥

देवालय के पीछे की तरफ रथशाला, दक्षिण में मठ (धर्मगुरु का स्थान) और उत्तर में रथ का प्रवेश द्वार बनावें। ऐसा विश्वकर्मा ने कहा है ॥२५॥

जगती तादृशी कार्या प्रासादो यादृशो भवेत् ।
भिन्नच्छन्दा न कर्त्तव्या प्रासादासनसंस्थिता ॥२६॥

इति प्रासादजगती ।

प्रासाद जिस आकार का हो, उसी आकार की जगती बनानी चाहिये । भिन्न आकार की नहीं बनानी चाहिये । क्योंकि यह प्रासाद का आसनरूप है ॥२६॥

अन्य प्रासाद—

अग्रतः पृष्ठतश्चैव वामदक्षिणयोर्दिशोः[1] ।
प्रासादं कारयेदन्यं नाभिवेधविवर्जितम् ॥२७॥

मुख्य प्रासाद के आगे, पीछे, बायीं और दाहिनी ओर दूसरे प्रासाद बनायें जाय, वे सब नाभिवेध (प्रासाद के गर्भ) को छोड़कर के बनावें ॥२७॥

शिवलिंग के आगे अन्य देव—

लिङ्गाग्रे तु न कर्त्तव्या अर्चारूपेण देवताः ।
प्रभानष्टा न भोगाय यथा तारा दिवाकरे ॥२८॥

शिवलिंग के सामने कोई भी देव पूजन के रूप में स्थापित करना नहीं चाहिये । क्योंकि जैसे सूर्य के तेज से ताराओं की प्रभा नष्ट होती है, वैसे दूसरे देवों की प्रभा नष्ट होती है । इसलिये वे देव भोगादि सुख संपत्ति नहीं दे सकते ॥२८॥

देव के सम्मुख स्वदेव—

शिवस्याग्रे शिवं कुर्याद् ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽग्रतः ।
विष्णोरग्रे भवेद् विष्णु-र्जिने[2] जिनो रवौ रविः ॥२९॥

शिवके सामने शिव, ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा, विष्णु के सामने विष्णु, जिनदेव के सामने जिनदेव और सूर्य के सामने सूर्य, इस प्रकार आपस में स्वजातीय देव स्थापित किया जाय तो दोष नहीं माना जाता ॥२९॥

"चण्डिकाग्रे भवेन्माता यक्षः क्षेत्रादिभैरवः ।
ज्ञेयास्तेषामभिमुखे ये येषां च हितैषिणः ॥" अप० सू० १०८

चंडिका आदि देवी के सामने मातृदेवता, यक्ष, क्षेत्रपाल और भैरव आदि देव स्थापित किये जायें तो दोष नहीं है । क्योंकि वे आपस में हितैषी हैं ।

(१) 'सोऽपि वा' । (२) जिने जैनो ।

परस्पर दृष्टिवेध—

ब्रह्मा विष्णुरेकनाभि-र्द्वाभ्यां[1] दोषो न विद्यते ।
शिवस्याग्रेऽन्यदेवस्य दृष्टिवेधे महद्भयम् ॥३०॥

ब्रह्मा और विष्णु ये दोनों देव एक नाभि में हों अर्थात् उनका देवालय आपस में सामने हो तो दोष नहीं है । परंतु शिवके सामने दूसरे देवका दृष्टिवेध होता हो तो बड़ा भय उत्पन्न होता है ॥३०॥

दृष्टिवेध का परिहार—

प्रसिद्धराजमार्गस्य प्राकारस्यान्तरेऽपि वा ।
स्थापयेदन्यदेवांश्च तत्र दोषो न विद्यते ॥३१॥

शिवालय और अन्य देवों के देवालय, इन दोनों के बीच में प्रसिद्ध राजमार्ग (आम रास्ता) हो, अथवा दीवार हो तो दोष नहीं है ॥३१॥

शिवस्नानोदक—

शिवस्नानोदकं गूढ-मार्गे चण्डमुखे क्षिपेत् ।
दृष्टं न लङ्घयेत्तत्र[2] हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥३२॥

शिव का स्नानजल गुप्त मार्ग से चण्डगण के मुख में गिरे, इस प्रकार स्नान का जल निकलने की गुप्त नाली रखना चाहिये । दिखते हुये स्नान जल का उल्लंघन (लांघना) नहीं करना चाहिये । क्योंकि स्नान जल का उल्लंघन करने से पूर्वकृत पुण्य का नाश होता है ॥३२॥ *

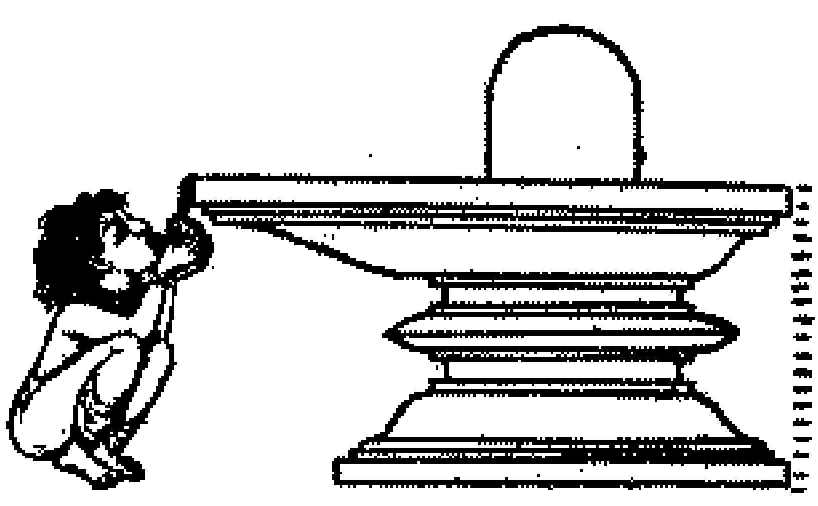

चंडगण शिवस्नानोदक पी रहा है

(१) द्विने । (२) स्नानं ।

* चंडनाथ गणदेव का स्वरूप अपराजित पृच्छा सूत्र २०८ में लिखा है कि—स्थूल शरीर वाला, भयंकर मुख वाला, ऊर्ध्वासन बैठा हुआ और दोनों हाथ से स्नान जल पीता हुआ, ऐसा स्वरूप बना करके पीठिका के जल स्थान के नीचे स्थापन किया जाता है, जिससे स्नान का जल उसके मुख में होकर बाहर गिरे । इस स्नान जल के उच्छिष्ट होजाने पर उसका यदि कभी उल्लंघन हो जाय तो दोष नहीं माना जाता, ऐसा शिल्पियों का कहना है ।

देवों की प्रदक्षिणा—

एका चण्ड्या रवौ सप्त तिस्रो दद्याद् विनायके ।
चतस्रो वासुदेवस्य[1] शिवस्यार्धा प्रदक्षिणा ॥३३॥

चंडीदेवी को एक, सूर्य को सात, गणेश को तीन, विष्णु को चार और महादेव को आधी प्रदक्षिणा देनी चाहिये ॥३३॥

अग्रतो जिनदेवस्य स्तोत्रमन्त्रार्चनादिकम् ।
कुर्याञ्च दर्शयेत् पृष्ठं सम्मुखं द्वारलङ्घनम् ॥३४॥

जिनदेव के आगे स्तोत्र, मंत्र और पूजन आदि करें। परंतु बाहर निकलते समय अपनी पीठ नहीं दिखावें, सम्मुख ही पिछले पैर चलकर द्वार का उल्लंघन करें ॥३४॥

जलमार्ग (पनाला)—

पूर्वापरमुखे द्वारे प्रणालं शुभमुत्तरे ।
इति शास्त्रविचारोऽय-मुत्तरास्या[2] न देवताः ॥३५॥

पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली (पनाला) उत्तर दिशा में रखना शुभ है। उत्तर दिशा में (दक्षिणाभिमुख) किसी भी देव की स्थापना नहीं करें ऐसा शास्त्र का नियम है ॥३५॥

अपराजितपृच्छा में लीखा है कि—

"पूर्वापरं यदा द्वारं प्रणालं चोत्तरे शुभम् ।
प्रशस्तं शिवलिङ्गाना-मिति शास्त्रार्थनिश्चयः ॥" सूत्र० १०८

पूर्व और पश्चिम दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली उत्तर दिशा में रखना शुभ है। शिवलिंग के लिये तो यह नियम विशेष प्रशंसनीय है। ऐसा शास्त्र का नियम है।

"अर्चानां मुखपूर्वाणां प्रणालं वामतः शुभम् ।
उत्तरास्या न विज्ञेया अर्चारूपेण देवताः ॥" सूत्र० १०८

यदि देवों का मुख पूर्व दिशा के सामने हो तो उसकी नाली बायीं ओर रखना शुभ है। उत्तर दिशा में दक्षिणाभिमुख किसी भी देव की मूर्ति स्थापित नहीं करें।

(१) विष्णुदेवस्य। (२) मुत्तरेशा।

"जैनमुक्ताः समस्ताश्च याम्योत्तरकमैः स्थिताः ।
वामदक्षिणयोगेन कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ॥" अ० सूत्र १०८

जिनदेव के प्रासाद दक्षिण और उत्तर दिशा के द्वार वाले भी बनाये जाते हैं। उनकी नाली वाम दक्षिणयोग से अर्थात् दक्षिण दिशा के सामने द्वार वाले अर्थात् दक्षिणाभिमुख प्रासाद की नाली बायीं ओर तथा उत्तर दिशा के सामने द्वार वाले (उत्तराभिमुख) प्रासाद की नाली दाहिनी ओर बनावें, अर्थात् उत्तर या दक्षिण दिशा के द्वार वाले प्रासाद की नाली पूर्व दिशा में रक्खें। यह सब इच्छापूर्ण करने वाली हैं।

वास्तुमंजरी में भी कहा है कि—

"पूर्वापरास्यप्रासादे नालं सौम्ये प्रकारयेत् ।
तत्पूर्वे याम्यसौम्यास्ये मण्डपे वामदक्षिणे ॥"

पूर्व और पश्चिमाभिमुख प्रासाद की नाली उत्तर दिशा में, उत्तर और दक्षिणाभिमुख प्रासाद की नाली पूर्व दिशा में रक्खें। मंडप में स्थापित किये देवों की नाली बायीं ओर दाहिनी ओर रखनी चाहिये।

मण्डपस्थित देवों की नाली—

मण्डपे ये स्थिता देवा-स्तेषां वामे च दक्षिणे ।
प्रणालं कारयेद् धीमान् जगत्यां च चतुर्दिशम् ॥३६॥

मंडप में जो देव स्थापित हों, उनके स्नान जल निकलने की नाली बायीं और दाहिनी ओर रखना चाहिये, अर्थात् मूलनायक के बायीं ओर बैठे हुए देवों की नाली बायीं ओर तथा दाहिनी ओर बैठे हुए देवों की नाली दाहिनी ओर बनावें। जगती के चारों दिशा में नाली बनावें ॥३६॥

"वामे वामं प्रकुर्वीत दक्षिणे दक्षिणं शुभम् ।
मण्डपादिषु प्रतिमा येषु युक्त्या विधीयते ॥" अप० सू० १०८

मंडप में जो देव बैठे हो, उनमें मूलनायक के बायीं ओर के देवों की नाली बायीं ओर तथा दाहिनी ओर के देवों की नाली दाहिनी ओर बनाना शुभ है।

पूर्व और पश्चिमाभिमुखदेव—

पूर्वापरास्यदेवानां कुर्यान्नो दक्षिणोत्तरम् ।
ब्रह्मविष्णुशिवार्केन्द्र-गुहाः पूर्वापराङ्मुखाः ॥३७॥

पूर्व और पश्चिम दिशाभिमुख वाले देवों का मुख दक्षिण और उत्तर दिशा में नहीं रखना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्र और कार्तिकेय, ये देव पूर्व और पश्चिम मुख वाले हैं। इसलिये इनका मुख पूर्व अथवा पश्चिम दिशा में रहे, इस प्रकार की स्थापना करनी चाहिये ॥३७॥

नगराभिमुखाः श्रेष्ठा मध्ये बाह्ये च देवताः ।
गणेशो धनदो लक्ष्मीः पुरद्वारे सुखावहाः ॥३८॥

नगर के मध्य और बाहर स्थापित किये हुए देवों का मुख नगर के सम्मुख रखना श्रेष्ठ है। गणेश, कुबेर और लक्ष्मीदेवी, उन्हें नगर के दरवाजों पर स्थापित करना सुखदायक है ॥३८॥

दक्षिणाभिमुखदेव—

विघ्नेशो भैरवश्चण्डी नकुलीशो ग्रहास्तथा ।
मातरो धनदश्चैव शुभा दक्षिणदिङ्मुखाः ॥३९॥

गणेश, भैरव, चण्डी, नकुलीश, नवग्रह, मातृदेवता और कुबेर, इन देवों को दक्षिणाभिमुख स्थापित करें तो शुभफल देनेवाले हैं ॥३९॥

विदिशाभिमुखदेव—

नैर्ऋत्याभिमुखः कार्यो हनुमान् वानरेश्वरः ।
अन्ये विदिङ्मुखा देवा न कर्त्तव्याः कदाचन ॥४०॥

इति देवानां दृष्टिदोषदिग्विभागः ।

वानरेश्वर हनुमानजी का मुख नैर्ऋत्य दिशाभिमुख रक्खें। बाकी दूसरे किसी भी देव का मुख विदिशा में कभी भी नहीं रखना चाहिये ॥४०॥

सूर्य आयतन—

सूर्याद् गणेशो विष्णुश्च चण्डी शम्भुः प्रदक्षिणे ।
भानोर्गृहे ग्रहास्तस्य गणा द्वादश मूर्त्तयः ॥४१॥

इति सूर्यायतनम् ।

सूर्य के पंचायतन देवों में—मध्य में सूर्य, उसके प्रदक्षिण क्रम से गणेश, विष्णु, चण्डीदेवी और महादेव को स्थापित करें। तथा नवग्रह और बारह गणों की मूर्त्तियां भी स्थापित करें ॥४१॥

गणेश आयतन—

गणेशस्य गृहे तद्वच्चण्डी शम्भुर्हरी रविः ।
मूर्त्तयो द्वादशान्येऽपि गणाः स्थाप्या हितारच ये ॥४२॥

इति गणेशायतनम् ।

गणेश के पंचायतन देवों में—मध्य में गणेश, उसके पीछे प्रदक्षिण क्रम से चंडीदेवी, महादेव, विष्णु और सूर्य की स्थापना करें। तथा बारह गणों की मूर्त्तियां भी स्थापित करना हित कारक है ॥४२॥

विष्णु आयतन—

विष्णोः प्रदक्षिणेनैव गणेशार्काम्बिकाशिवाः ।
गोप्यस्तस्यावतारस्य मूर्त्तयो द्वारिका तथा ॥४३॥

इति विष्ण्वायतनम् ।

विष्णु के पंचायतन देवों में—मध्य में विष्णु को स्थापित करके उसके प्रदक्षिण क्रमसे गणेश, सूर्य, अम्बिका और शिव को स्थापित करें। तथा गोपियों की और अवतारों की मूर्त्तियां तथा द्वारिका नगरी को स्थापित करें ॥४३॥

चण्डी आयतन—

चण्डयाः शम्भुर्गणेशोऽर्को विष्णुः स्थाप्यः प्रदक्षिणे ।
मातरो मूर्त्तयो देव्या योगिन्यो भैरवादयः ॥४४॥

इति चण्डिकायतनम् ।

चंडी देवी के पंचायतन देवों में—मध्य में चंडी देवी की स्थापना करके, उसके प्रदक्षिण क्रम से महादेव, गणेश, सूर्य और विष्णु को स्थापित करें। तथा मातृदेवी, चौसठ योगिनी आदि देवियों की और भैरव आदि देवों की भी मूर्त्तियां स्थापित करें ॥४४॥

शिव पञ्चायतन—

शम्भोः सूर्यो गणेशश्च चण्डी विष्णुः प्रदक्षिणे ।
स्थाप्याः सर्वे शिवस्थाने दृष्टिवेधविवर्जिताः ॥४५॥

इति शिवायतनम् ।

शिव के पञ्चायतन देवों में–मध्य में शिव को स्थापित करके, उसके प्रदक्षिण क्रम से सूर्य, गणेश, चण्डी और विष्णु को स्थापित करें। परंतु उनका दृष्टिवेध अवश्य छोड़ देवें ॥४५॥

त्रिदेव स्थापना क्रम—

रुद्रस्त्रिपुरुषे मध्ये रुद्राद्वामगतो हरिः ।
दक्षिणाङ्गे भवेद् ब्रह्मा विपर्यासे भयावहः ॥४६॥

त्रिपुरुष प्रासाद में महादेव को मध्य में स्थापित करें। उसकी बायीं ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा को स्थापित करें। इससे विपरीत स्थापन करेंगे तो भयकारक होंगे ॥४६॥

त्रिदेवों का न्यूनाधिक मान—

रुद्रवक्त्रत्रिभागोनो हरिरर्द्धे पितामहः ।
तत्तुल्या पार्वतीदेवी सुखदा सर्वकामदा ॥४७॥

इति त्रिपुरुषन्यासः ।

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते वास्तुशास्त्रे प्रासादमण्डने जगती-
दृष्टिदोषायतनाधिकारे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

शिवमुख का एक तृतीयांश भाग कम करके दो तृतीयांश भाग तक विष्णु की ऊंचाई रक्खें। और विष्णु के मुखार्द्ध भाग तक ब्रह्मा की ऊंचाई रक्खें। ब्रह्मा की ऊंचाई के बराबर पार्वती देवी की ऊंचाई रक्खें। यह नियम सुखदायक और सब इच्छितफल देनेवाला है ॥४७॥

अपराजित पृच्छा में भी कहा है कि—

"ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र-स्त्वेकस्मिन् वा पृथग्गृहे ।
भूयो न्यूनन्यूनतश्च रुद्रो हरिः पितामहः ॥
अंशोनश्च हराद्विष्णु-विष्णोरर्धं पितामहः ।
वामदक्षिणयोगेन मध्ये रुद्रं च स्थापयेत् ॥
संस्थाप्य च शुभं कर्त्ता नृपाद्याः सुजनाः प्रजाः ।
प्रकर्त्तव्यं त्यज विप्राद्याः समे यान्ति समन्वितम् ?॥
लाभ्यां ह्रस्वो यदा रुद्रः क्षयो राशि जने मृतिः ।
राष्ट्रक्षोभो नृपयुद्धं ब्रह्माविष्णू समौ यदा ॥
अनावृष्टिर्जने मारि-र्ब्रह्मह्रस्वे जनार्दने ।
विपर्यये नृपाद्याश्च अस्वस्था भ्रमति प्रजा ॥" सूत्र १३६

त्रिपुरुष प्रासाद में ब्रह्मा विष्णु और महादेव ये तीनों देव एक ही गर्भगृह में या अलग २ गर्भगृह में स्थापित करना हो तो महादेव से न्यून विष्णु और विष्णु से न्यून ब्रह्मा की ऊंचाई रखनी चाहिये। महादेव से एक भाग न्यून विष्णु और विष्णु से आधा भाग न्यून ब्रह्मा की ऊंचाई रखनी चाहिये। मध्य में महादेव, उसकी बांयीं ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा को स्थापित करने से राजा और प्रजा का कल्याण होता है। विष्णु और ब्रह्मा की ऊंचाई से महादेव की ऊंचाई कम हो तो राजाओं का विनाश और मनुष्यों का मरण होता है। ब्रह्मा और विष्णु की ऊंचाई बराबर हो तो देश में उत्पात और राजाओं का युद्ध होता है। ब्रह्मा की ऊंचाई से विष्णु की ऊंचाई कम हो तो अनावृष्टि और मनुष्यों में महामारी आदि रोग की उत्पत्ति होती है। इसलिये कहे हुए मानके अनुसार ही इन्हें बनाना चाहिये, विपरीत करने से राजा और प्रजा अस्वस्थ रहते हैं।

इति श्री पं० भगवानदास जैन विरचित प्रासाद मण्डन के
दूसरे अध्याय की सुबोधिनी नाम्नी भाषा टीका समाप्त ॥२॥

अथ प्रासादमण्डने तृतीयोऽध्यायः

प्रासादधारिणी खरशिला—

अतिस्थूला[1] सुविस्तीर्णा प्रासादधारिणी शिला ।
अतीवसुदृढा कार्या इष्टिकाचूर्णवारिभिः[2] ॥१॥

प्रासाद को धारण करनेवाली जो आधार शिला है, वह जगती के दासा के ऊपर और प्रथम भिट्ट के नीचे जो बनायी जाती है, उसको खरशिला कहते हैं। वह अतिस्थूल और अच्छी तरह विस्तारवाली बनावें, तथा ईंट, चूना और पानी से बहुत मजबूत बनावें ॥१॥

खरशिला का मान—

"प्रासादच्छन्दमस्योर्ध्वे दृढखरशिलोत्तमा ।
एकहस्ते पादहस्तः पञ्चान्तेऽङ्गुलवृद्धितः ॥
अर्धाङ्गुलं तदूर्ध्वे तु नवान्तं सुदृढोत्तमा ।
पादवृद्धिं पुनर्दद्याद् हस्ते हस्ते तथा पुनः ॥
हस्तानां त्रिंशतिर्यावद्–दर्धपादा तदूर्ध्वतः ।
विंशत्यङ्गुलपिण्डा च शतार्द्धे तु खरा शिला ॥" अप० सू० १२३

प्रासादतल के ऊपर बहुत मजबूत और उत्तम खरशिला बनावें। वह एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद में छः अंगुल के उदयवाली बनावें। पीछे दो से पांच हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ एक २ अंगुल, छह से नव हाथ तक आधा २ अंगुल, दस से तीस हाथ तक पाव २ अंगुल और इकतीस से पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद में प्रत्येक हाथ एक २ जव बढ़ा करके बनावें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद के लिये लगभग बीस अंगुल के ऊंचाई की खरशिला होनी चाहिये। क्षीरार्णव अध्याय १०२ में कहा है कि—

"प्रथमभिट्टस्याधस्तात् पिण्डो वर्णं (कूर्म ?) शिलोत्तमा ।
तस्य पिण्डस्य चार्धेन खरशिलापिण्डमेव च ॥"

प्रथम भिट्ट के नीचे कूर्मशिला की मोटाई से अर्धमान की खरशिला की मोटाई रक्खें।

(१) अतिस्थूलातिविस्तीर्णा। (२) 'इष्टका'।

भिट्टमान—

शिलोपरि भवेद् भिट्ट-मेकहस्ते युगाङ्गुलम् ।
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धि-र्यावद्धस्तशतार्द्धकम् ॥२॥

खरशिला के ऊपर भिट्ट नाम का थर बनावें। एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को चार अंगुल के उदय का बनावें। पीछे दोसे पचास हाथ तक के प्रासाद के लिये प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढा करके बनावें ॥२॥

प्रकारन्तर से भिट्टमान—

अङ्गुलेनांशहीनेन अर्द्धार्द्धेन च क्रमात् ।
पञ्चदिग्विंशतिर्यावि-च्छताद्धं च विवर्द्धयेत् ॥३॥

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को चार अंगुल का भिट्ट बनावें। पीछे दो से पांच हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ एक २ अंगुल, छह से दस हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ पौन २ अंगुल, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल और इक्कीस से पचास हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ पाव २ अंगुल बढा करके भिट्ट का उदय रक्खें ॥३॥

यही मत क्षीरार्णव, अपराजित पृच्छा वास्तुविद्या और वास्तुराज आदि शिल्पग्रन्थों में दिया गया है।

भिट्टका निर्गम—

एकद्वित्रीणि भिट्टानि हीनहीनानि कारयेत् ।
स्वस्वोदयप्रमाणस्य चतुर्थांशेन निर्गमः ॥४॥

इति भिट्टमानम् ।

उपरोक्त कथन के अनुसार भिट्टका जो उदयमान आया हो, उसमें एक, दो अथवा तीन भिट्ट बना सकते हैं। परन्तु ये एक दूसरे से हीनभाग का बनाना चाहिये। राजसिंहकृत वास्तुराज में कहा है कि—"युगांशहीनं द्वितीयं तदर्धोच्चं तृतीयकम् ।" अर्थात् प्रथम भिट्ट से दूसरा भिट्ट पौन भाग का, और तीसरा भिट्ट आधा उदय में रक्खें। तथा अपने २ उदय का चौथा भाग बराबर निर्गम रक्खें ॥४॥

क्षीरार्णवमें कहा है कि—

"प्रथमं निर्गमं कार्यं चतुर्थांशे महामुने ! ।
द्वितीयं तृतीयांशेन तृतीयं च तदर्धतः ॥"

प्रथम भीट का निर्गम अपने चौथे भाग, दूसरे भिट्टका निर्गम अपने तीसरे भाग और तीसरे भिट्टका निर्गम अपने उदय से आधा रक्खें।

पीठ का उदय मान—

पीठमर्धं त्रिपादांशै-रेकद्वित्रिकरे गृहे ।
चतुर्हस्ते त्रिसार्धांशं पादांशं पञ्चहस्तके ॥५॥
दशविंशतिषट्त्रिंश-च्छतार्धं हस्तकावधिः ।
वृद्धिर्वेदत्रियुग्मेन्दु-संख्या स्यादङ्गुलैः क्रमात् ॥६॥
पञ्चांशं हीनमाधिक्य-मेकैकं तु त्रिधा पुनः ।

भीट के ऊपर पीठ बनाया जाता है, उसका उदयमान—एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठका उदय बारह अंगुल, दो हाथ के प्रासाद की पीठका उदय सोलह अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद की पीठ अठारह अंगुल, चार हाथ के प्रासाद की पीठ अपने साढ़े तीन भाग (साढ़े सत्ताईस अंगुल) की, पांच हाथ के प्रासाद की पीठ अपने चौथे भाग (तीस अंगुल) की उदय में बनावें। छह से दस हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ चार २ अंगुल, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ तीन २ अंगुल, इक्कीस से छत्तीस हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ दो २ अंगुल और सैंतीस से पचास हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ एक २ अंगुल बढ़ा करके बनावें। इस प्रकार पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठ का उदय पांच हाथ और छह अंगुल होता है।

उदय का पांचवां भाग उदय में कम करे तो कनिष्ठ मान की और बढ़ा देवे तो ज्येष्ठ मान की पीठ होती है। ज्येष्ठ मान की पीठ का पांचवां भाग ज्येष्ठ पीठ में बढ़ावे तो ज्येष्ठ ज्येष्ठ, कम करे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ, मध्यम मान के पीठ का पांचवां भाग मध्यम में बढ़ावे तो ज्येष्ठ मध्यम और कम करे तो कनिष्ठ मध्यम, कनिष्ठ मान की पीठ का पांचवां भाग कनिष्ठ पीठ में बढ़ावे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ और कम करे तो कनिष्ठ कनिष्ठ मान की पीठ होती है। ऐसे नव प्रकार से पीठ का उदयमान समझना चाहिये ॥६॥

वास्तुमंजरी में कहा है कि—

"प्रासादस्य समुत्सेधे एकविंशतिभाजिते ।
पञ्चादिनवभागान्ते पञ्चधा पीठसमुच्छ्रयः ॥"

प्रासाद की (मंडोवरकी) ऊंचाई का इक्कीस भाग करें। इनमें से पांच, छह, सात, आठ अथवा नव भाग के मान का पीठ का उदय रक्खें। ये पांच प्रकार के पीठ के उदय हैं।

यह मत अपराजित पृच्छा सूत्र १२३ श्लोक ७ में भी लीखा है। तथा श्लोक २५ से २९ तक जो पीठ का मान लिखा है, उसमें चार हाथ के प्रासाद की पीठ अर्द्ध, तृतीयांश और चतुर्थांश मान की लिखा है।

क्षीरार्णव मत से पीठमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे पीठं वै द्वादशाङ्गुलम् ।
हस्तादिपञ्चपर्यन्तं हस्ते हस्ते पञ्चाङ्गुला ॥
पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्तं वृद्धिर्वेदाङ्गुला भवेत् ।
दशोर्ध्वं विंशयावत्तु हस्ते हस्ते त्र्यङ्गुला ॥
विंशोर्ध्वं षट्त्रिंशान्तं वृद्धिस्तु चाङ्गुलद्वया ।
षट्त्रिंशोर्ध्वं शतार्धान्तं हस्तहस्तैकमङ्गुला ॥
पञ्चमांशे ततो हीनं कनिष्ठं शुभलक्षणम् ।
पञ्चमांशेऽधिकं चैव ज्येष्ठं त्वष्ट्रा च भाषितम् ॥" अध्याय ३

इसका अर्थ श्लोक पांच और छह के बराबर है। सिर्फ दोसे पांच हाथ तक के प्रासाद की पीठ प्रत्येक हाथ पांच २ अंगुल बढा करके बनाना लिखा है, यही विशेष है। इस मत से पचास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद की पीठ का उदय पांच हाथ और आठ अंगुल का होता है।

अपराजितपृच्छा के मतसे पीठ का उदयमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे पीठं वै द्वादशाङ्गुलम् ।
द्व्यष्टाङ्गुलं द्विहस्ते च त्रिहस्तेऽष्टादशाङ्गुलम् ॥
अर्द्धं पादं त्रिभागं वा त्रिविधं परिकल्पयेत् ।
त्र्यंशेनार्धेन पादेन चतुर्हस्ते सुरालये ॥
पादं पीठोच्छ्रयं कार्यं प्रासादे पञ्चहस्तके ।
पञ्चोर्ध्वं दशपर्यन्तं रसांशं हस्तवृद्धये ॥
ततो हस्ते चाष्टमांशा वृद्धिः स्याद् द्वाविंशावधि ।
षट्त्रिंशदन्तं वृद्धिस्तु हस्ते वै द्वादशांशिका ॥
चतुर्विंशत्यंशिका तदूर्ध्वं यावच्छतार्धकम् ।
मध्ये न्यूनेऽधिके पञ्चमांशे ज्येष्ठं कनिष्ठकम् ॥
त्रिज्येष्ठमिति च ख्यातं त्रिमध्यं त्रिकनिष्ठकम् ।
तस्याभिधानं वक्ष्येऽहं-मुदितं नवधोच्छ्रयात् ॥" सूत्र० १२३

एक हाथ के प्रासाद को बारह अंगुल, दो हाथ के प्रासाद को सोलह अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद को अठारह अंगुल पीठ का उदय रक्खें। अर्थात् एक हाथ के अर्द्ध भाग, दो हाथ के तीसरे भाग और चार हाथ के चौथे भाग पीठ का उदय रक्खें। चार हाथ के प्रासाद को अर्द्ध भाग (४८ अंगुल), तीसरे भाग (३२ अंगुल) अथवा चौथे भाग (२४ अंगुल) पीठ का उदय रखना चाहिये। पांच हाथ के प्रासाद को चौथे भाग (३० अंगुल), छह से दस हाथ के प्रासाद को प्रत्येक हाथ चार २ अंगुल, ग्यारह से बाईस हाथ के प्रासाद को तीन २ अंगुल, तेईस से छत्तीस हाथ के प्रासाद को दो दो अंगुल और सेंतीस से पचास हाथ के प्रासाद को

प्रत्येक हाथ एक २ अंगुल बढ़ा करके पीठ का उदय रखना चाहिये। यह पीठ की ऊंचाई का मध्यम मान माना गया है। इसमें इसका पांचवां भाग बढावें तो ज्येष्ठमान और घटावें तो कनिष्ठ मान होता है। ज्येष्ठ मान का पांचवां भाग ज्येष्ठ में बढावें तो ज्येष्ठ ज्येष्ठ, घटावे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ, मध्यम का पांचवां भाग मध्यम में बढ़ावें तो ज्येष्ठ मध्यम घटावें तो कनिष्ठ मध्यम, कनिष्ठ मान का पांचवां भाग कनिष्ठ में बढावे तो ज्येष्ठ कनिष्ठ और घटावें तो कनिष्ठ कनिष्ठ, इस प्रकार पीठ के उदय का नव भेद होते हैं। इन नव भेदों के नाम बतलाते हैं—

"शुभदं सर्वतोभद्रं पद्मकं च वसुन्धरम्।
सिंहपीठं तथा व्योम गरुडं हंसमेव च॥
वृषभं यद्भवेत् पीठं मेरोराधारकारणम्।
पीठमानमिति ख्यातं प्रासादे प्रादिसोमया॥" सूत्र० १२३

शुभद, सर्वतोभद्र, पद्मक, वसुन्धर, सिंहपीठ, व्योम, गरुड, हंस और वृषभ ये नव नाम पीठोदय के हैं। इनमें वृषभपीठ मेरुप्रासाद का आधार रूप है।

वि० वसुनंदीकृत प्रतिष्ठासार में पीठ का मान—

"प्रासादविस्तरार्द्धेन स्वोच्छ्रितं पीठमुत्तमम्।
मध्यमं पादहीनं स्याद् उत्तमार्द्धेन कन्यसम्॥"

प्रासाद के विस्तार के अर्द्ध मान का पीठ का उदय रक्खें। इसे उत्तम मान की पीठ माना है। इस उत्तम मान की पीठ के उदय का चार भाग करके उनमें से तीन भाग के मान का पीठ का उदय रक्खें तो मध्यम मान की और दो भाग के मान का पीठ का उदय रक्खें तो कनिष्ठ मान की पीठ माना है।

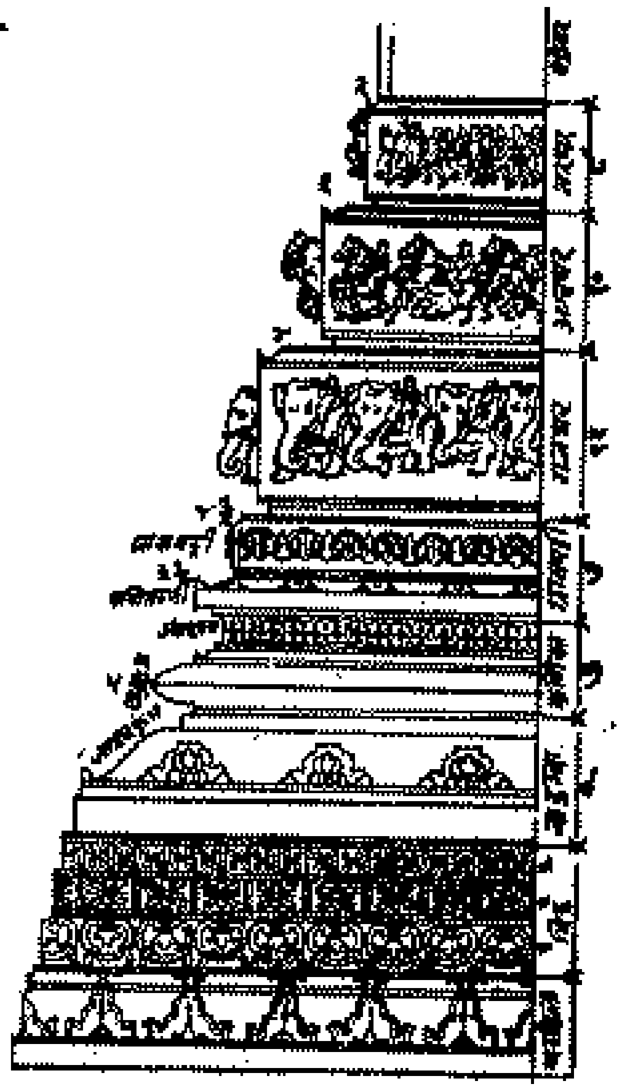

प्रासाद की महापीठ

पीठोदय का थरमान—

त्रिपञ्चाशत् समुत्सेधे द्वाविंशत्यंशनिर्गमे॥७॥
नवांशो जाड्यकुम्भस्च सप्तांशा[1] कर्णिका[2] भवेत्।
सान्तरालं कपोतालिः सप्तांशा ग्रासपट्टिका॥८॥
ऊर्ध्वं दिग्वसुभागैश्च गजवाजिनराः क्रमात्।
वाजिस्थानेऽथवा कार्यं स्वस्वदेवस्य वाहनम्॥९॥

पीठ का जो उदयमान आया हो, उसमें ५३ भाग करें। उनमें से बाईस भाग के मान का पीठ

(१) सप्तांशं। (२) कर्णकं।

का निर्गम रक्खें। उदय के तरेपन भाग में से नव भाग का जाड्यकुम्भ, सात भाग की अंतरपत्र के साथ कणिका, सात भाग की कपोतालि के साथ ग्रासपट्टी, इसके ऊपर बारह भाग का गजथर, दश भाग का अश्वथर, और आठ भाग का नरथर बनावें। अश्वथर के स्थान पर देव के वाहन का भी थर बना सकते हैं ॥७ से ९॥

थरों का निर्गमभाग—

पञ्चांशा कर्णिकाग्रे तु निर्गमो जाड्यकुम्भकः।
त्रिसार्द्धा कर्णिका सार्धा चतुर्भिर्ग्रासपट्टिका ॥१०॥
कुञ्जराश्वनरा वेदा रामयुग्मांशनिर्गमाः।
अन्तरालमधस्तेषा-मूर्ध्वाधः कर्णयुग्मकम् ॥११॥

कणिकासे आगे पांच भाग निकलता जाड्यकुम्भ, ग्रासपट्टी से आगे साढे तीन भाग निकलती कणिका, गजथर से आगे साढे चार भाग निकलती ग्रासपट्टी, अश्वथरसे आगे चार भाग निकलता गजथर, नर थरसे आगे तीन भाग निकलता अश्वथर और खुरासे आगे दो भाग निकलता नर थर रखें। इस प्रकार बाईस भाग पीठ का निर्गम जानें। इन गजादि थरों के नीचे अंतराल रक्खें और अंतराल के ऊपर और नीचे दो दो कणिका बनावें ॥१०-११॥

कामदपीठ और कणपीठ (साधारणपीठ)—

गजपीठं विना स्वल्प-द्रव्ये पुण्यं महत्तरम्।
जाड्यकुम्भश्च कर्णाली ग्रासपट्टी तदा भवेत् ॥१२॥
कामदं कर्णपीठं च जाड्यकुम्भश्च कर्णिका।
लतिने निर्गमं हीनं सान्धारे निर्गमाधिकम् ॥१३॥

गज आदि थरों वाली पीठ को गजपीठ कहते हैं। ऐसी रूपवाली पीठ बनाने में द्रव्य का अधिक खर्च होता है, इसलिये अपनी शक्ति के अनुसार अल्प द्रव्य से साधारण पीठ बनाने से भी बड़ा पुण्य होता है। गज अश्व आदि रूपोंवाली पीठ को छोड़कर जाड्यकुम्भ, कणिका और केवाल के साथ ग्रासपट्टी वाली साधारण पीठ बनावें, उसको कामदपीठ कहते हैं। तथा जाड्यकुम्भ और कणिका ये दो थरवाली पीठ बनावें, उसको कणपीठ कहते हैं। लतिनजाति के प्रासाद के पीठ का निर्गम कम होता है और सांधार जातिके प्रासाद के पीठ का निर्गम अधिक होता है ॥१२-१३॥

सर्वेषां पीठमाधारः पीठहीनं निराश्रयम्।
पीठहीनं विनाशाय प्रासादभुवनादिकम् ॥१४॥

इति पीठम्।

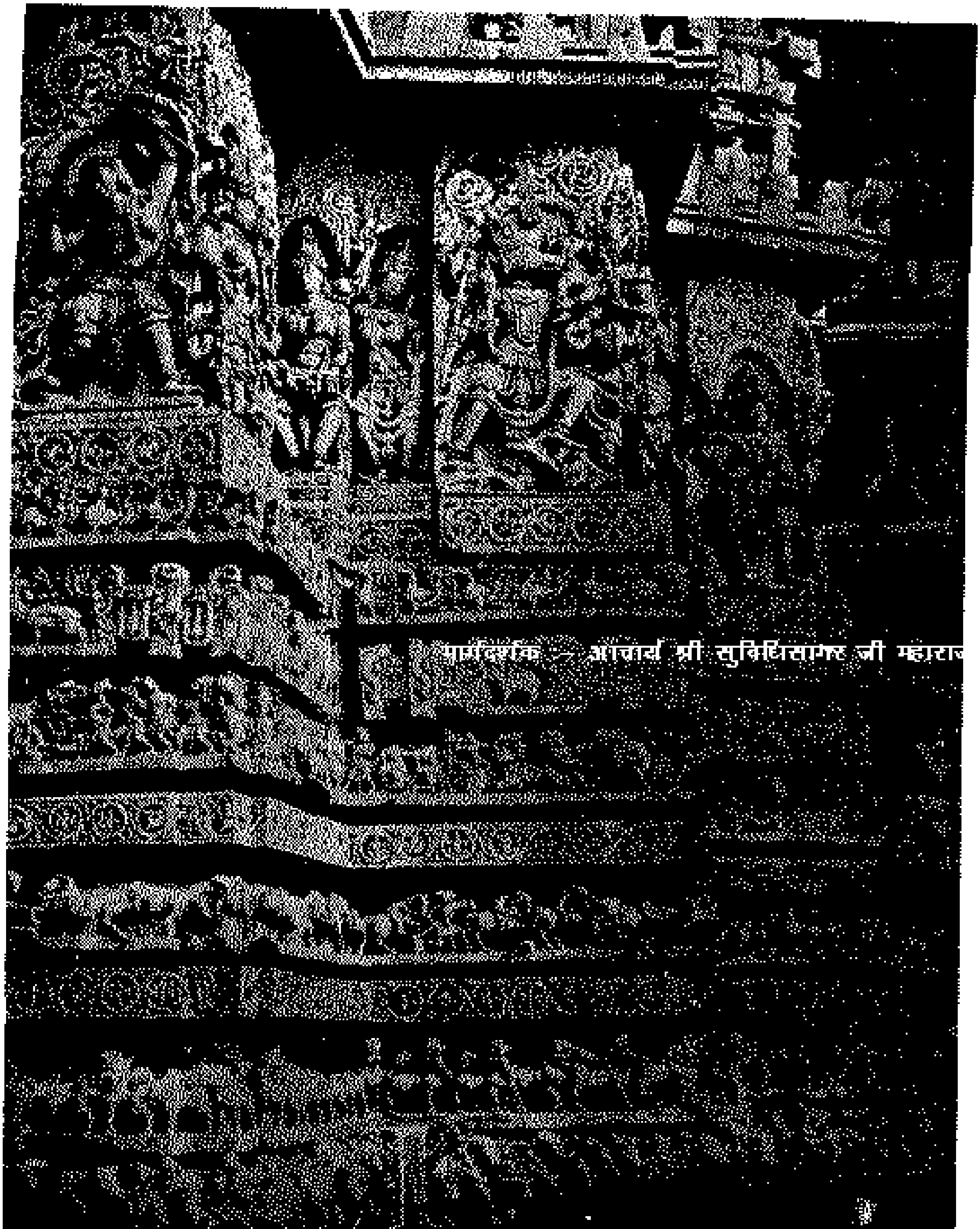

बेलूर के सोमनाथपुरम् का एक द्राविड प्रासाद के मंडोवर (दीवार) और
पीठ की अनुपम कलाकृति

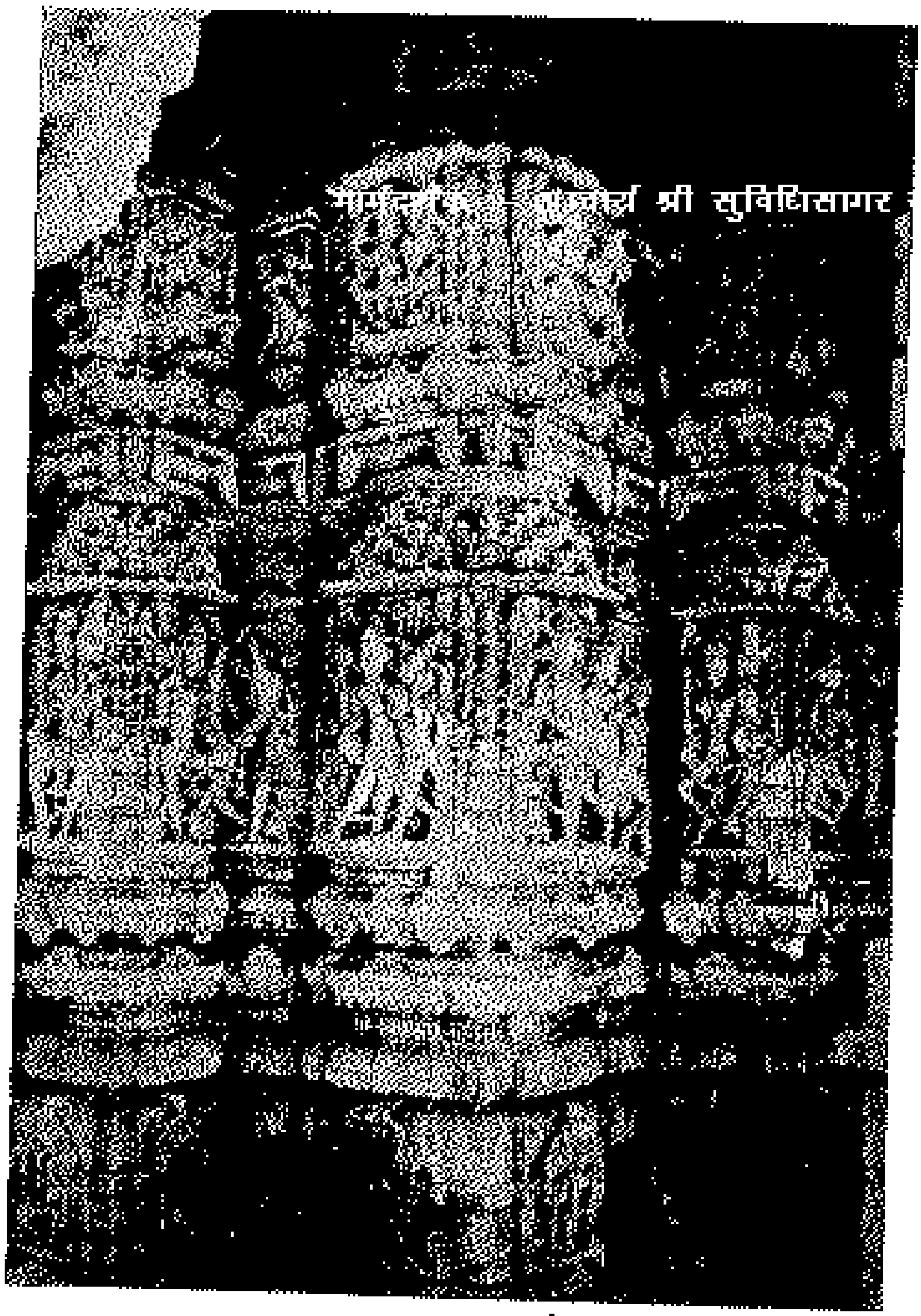

अनुपम कारीगरी वाला मेरु मंडोवर
जैन मंदिर - आबू

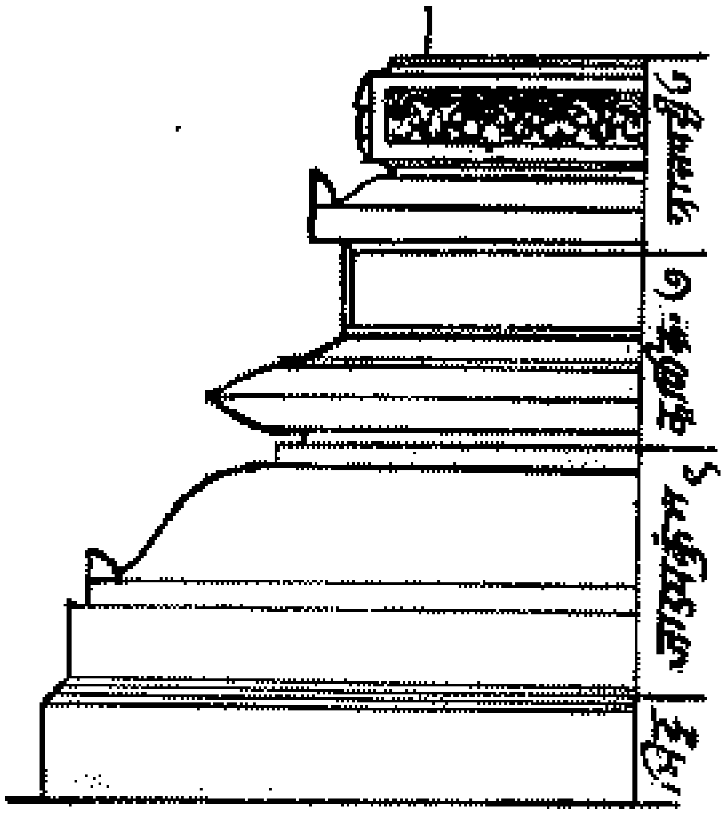

कामद पीठ

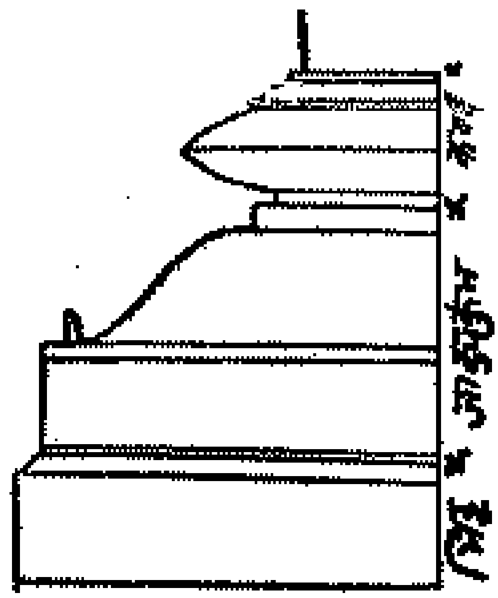

कणपीठ

प्रासाद और भवन (गृह) आदि सब में पीठका आधार है, यदि पीठ न होवे तो ये निराधार माने जाते हैं। इसलिये बिना पीठ वाले ये प्रासाद और गृह आदि थोड़े समय में ही नष्ट हो जाते हैं ॥१४॥

प्रासाद का उदयमान (मंडोवर)—

> हस्तादिपञ्चपर्यन्तं विस्तारेणोदयः समः ।
> स क्रमाञ्नवसप्तेषु-रामचन्द्राङ्गुलाधिकः ॥१५॥
> पञ्चादिदशपर्यन्तं त्रिंशद्यावच्छताद्र्धकम् ।
> हस्ते हस्ते क्रमाद् वृद्धि-र्मनुसूर्यनवाङ्गुला ॥१६॥

एक से पांच हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय विस्तार के बराबर मान का बनावें, परन्तु उनमें क्रमशः नव, सात, पांच, तीन और एक अंगुल बढ़ा करके बनावें। अर्थात् प्रासाद का विस्तार एक हाथ का हो तो उसका उदय एक हाथ और नव अंगुल (कुल ३३ अंगुल), दो हाथ का हो तो दो हाथ और सात अंगुल (कुल ५५ अंगुल), तीन हाथ का हो तो तीन हाथ और पांच अंगुल (कुल ७७ अंगुल), चार हाथ का हो तो चार हाथ और तीन अंगुल (कुल ९९ अंगुल) और पांच हाथ का हो तो पांच हाथ और एक अंगुल (कुल १२१ अंगुल) का उदय रक्खें। छह से दस हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ चौदह २ अंगुल, ग्यारह से तीस हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ

बारह २ अंगुल और इकतीस से पचास हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ नव २ अंगुल की वृद्धि करके रक्खें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद की कुल ऊंचाई पचीस हाथ और ग्यारह अंगुल होती है ॥१५-१६॥ देखो अपराजित पृच्छा सूत्र १२६

अन्य प्रकार का उदय मान—

एक हस्तादिपञ्चान्तं पृथुत्वेनोदयः समः ।
हस्ते सूर्याङ्गुलावृद्धि-र्यावत् त्रिंशत्करावधि ॥१७॥
नवाङ्गुला करे वृद्धि-र्यावद्धस्तशतार्धकम् ।
पीठोर्ध्वे उदयस्तैव छाद्यान्ते नागरादिषु[1] ॥१८॥

एक से पांच हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद का उदय विस्तार के बराबर रक्खें। पीछे छह से तीस हाथ तक के प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ बारह २ अंगुल बढ़ाकर के और इकतीस से पचास हाथ तक के प्रासाद का उदय प्रत्येक हाथ नव २ अंगुल बढ़ाकर के रक्खें। यह प्रासाद का उदय पीठ के ऊपर खुरा से लेकर छज्जा के अंत भाग तक माना गया है ॥१७-१८॥

प्रासाद के उदय के लिये अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ में श्लोक १० में अन्य प्रकार से लीखा है कि—

"कुम्भकादि प्रहारान्तं प्रयुक्तं वास्तुवेदिभिः ।
तदधस्तात्तु पीठं च ऊर्ध्वे स्याच्छिखरोदयः ॥"

कुम्भा के थर से लेकर छाद्य के प्रहार थर के अंत तक ऊंचाई जाननी चाहिये, ऐसा वास्तुशास्त्र के जानने वाले विद्वानों ने कहा है। कुम्भा के नीचे पीठ और प्रहार थर के ऊपर शिखर का उदय होता है।

क्षीरार्णव के मतानुसार प्रासाद का उदयमान—

"एकहस्ते तु प्रासादे अर्धत्रिंशाङ्गुलोदयः ।
द्विहस्ते तूदयः कार्यो सप्ताङ्गुलः करद्वयः ॥
त्रिहस्ते च यदा मात्रा-दधिकश्च पञ्चाङ्गुलः ।
चतुर्हस्तोदयः कार्य एकेनाङ्गुलेनाधिकः ॥
विस्तरेण समः कार्यः पञ्चहस्तोदये भवेत् ।
षड्हस्ते तूदयः कार्यो न्यूनो द्वावङ्गुलौ तथा ॥
उदयः सप्तहस्ते च न्यूनः सप्ताङ्गुलस्तथा ।
अष्टहस्तोदयः कार्यः षोडशाङ्गुलहीनकः ॥
हीन एकोनत्रिंशः स्यात् प्रासादे नवहस्तके ।
दशहस्तेषूदयः कार्योऽष्टहस्तप्रमाणतः ॥

(१) 'नागरोचितः।'

सपाददश हस्तश्च प्रासादे दशपञ्चके ।
विंशहस्तोदये कार्यः सार्द्धं द्वादशहस्तकः ॥
पञ्चविंशोदये ज्ञेयः पादोनदशपञ्चकः ।
त्रिंशहस्ते महाप्राज्ञ ! सप्तदशोदयस्तथा ॥
सपादैकोनविंशतिः पञ्चत्रिंशे मुनीश्वर ! ।
व्योमवेदे यदा हस्ते सार्धः स्यादेकविंशतिः ॥
चतुर्विंशतिः पादोनः पञ्चचत्वारिंशद्धस्तके ।
शतार्द्धोदये मानं तु हस्ताः स्युः पञ्चविंशतिः ॥''

प्रासाद का विस्तार एक हाथ हो तो ३३ अंगुल, दो हाथ हो तो ५५ अंगुल, तीन हाथ हो तो ७७ अंगुल, चार हाथ हो तो ९७ अंगुल, पांच हाथ का हो तो पांच हाथ, छह हाथ का हो तो पांच हाथ और २२ अंगुल, सात हाथ का हो तो छह हाथ और १७ अंगुल, आठ हाथ का हो तो सात हाथ और आठ अंगुल, नव हाथ का हो तो सात हाथ और १९ अंगुल, दस हाथ का हो तो आठ हाथ, पंद्रह हाथ का हो तो दस हाथ और छह अंगुल, बीस हाथ का हो तो बारह हाथ और बारह अंगुल, पचीस हाथ का हो तो चौदह हाथ और १८ अंगुल, तीस हाथ का हो तो सत्रह हाथ, पैंतीस हाथ का हो तो १९ हाथ और छह अंगुल, चालीस हाथ का हो तो २१ हाथ और १२ अंगुल, पैंतालीस हाथ का हो तो २३ हाथ १८ अंगुल, और पचास हाथ का हो तो २५ हाथ का उदय करना चाहिये । अर्थात् दश हाथ के बाद पांच पांच हाथ में सवा दो २ हाथ उदय करने का विधान है ।

प्रासाद के उदय से पीठका उदयमान—

एकविंशत्यंशभक्ते प्रासादस्य समुच्छ्रये ।
पञ्चादिनवभागान्तं पीठस्य पञ्चधोदयः ॥१९॥

प्रासाद का खुरा से लेकर छज्जा तक जो उदयमान आवे, उसका इक्कीस भाग करके पांच, छह, सात, आठ अथवा नव भाग जितना पीठ का उदय रक्खें । इस तरह पांच प्रकार से पीठ का उदयमान होता है ॥१९॥

१४४ भाग के मंडोवर (दीवार) के थरों का उदयमान—

वेदवेदेन्दुभक्ते तु छाद्यान्तं पीठमस्तकात् ।
खुरकः पञ्चभागः स्याद् विंशतिः कुम्भकस्तथा ॥२०॥
कलशोऽष्टौ द्विसार्द्धं तु कर्त्तव्यमन्तरालकम् ।
कपोतिकाऽष्टौ मञ्ची च कर्त्तव्या नवभागिका ॥२१॥

पञ्चत्रिंशत्पदा[1] जङ्घा तिथ्यंशैरुद्गमो भवेत् ।
वसुभिर्भरणी कार्या दिग्भागैश्च[2] शिरावटी ॥२२॥
अष्टांशोर्ध्वा कपोतालि-र्द्विसार्द्धमन्तरालकम् ।
छाद्यं त्रयोदशांशोच्चं दशभागैर्विनिर्गमः ॥२३॥

इति मण्डोवरः ।

पीठ के ऊपर से छज्जा के अंत भाग तक पूर्वोक्त प्रासाद के उदय का जो मान आया हो, उसका एक सौ चवआलीस (१४४) भाग करें। उनमें से पांच भाग का खुरा, बीस भाग का कुम्भा, आठ भाग का कलश, ढाई भाग का अंतराल, आठ भाग का केवाल, नव भाग की मंची, पैंतीस भाग की जंघा, पंद्रह भाग का उद्गम (उरःजंघा), आठ भाग की भरणी, दस भाग की शिरावटी, आठ भाग की कपोतिका (केवाल), ढाई भाग का अंतराल और तेरह भाग का छज्जा का उदय रक्खें और छज्जा का निर्गम दस भाग का रक्खें ॥२० से २४॥

इन १४४ भाग के मंडोवर के थरों में जो रूप किया जाता है, उसका वर्णन अपराजित पृच्छा सूत्र १२२ के अनुसार ज्ञानप्रकाश दीपार्णव के पांचवें अध्याय में लिखा है कि—

"खुरकः पञ्चभागस्तु विंशतिः कुम्भकस्तथा ।
पूर्वमध्यापरे भागे ब्रह्मविष्णुरुद्रादयः ॥
त्रिसन्ध्या भद्रे शोभाढ्या स्वपरिकरैर्युताः ।
नासके रूपसंघाटा गर्भे च रथिकोत्तमा ॥
मृणालपत्रं शोभाढ्यं स्तम्भिका तोरणान्विता ।"

पीठ के ऊपर खुरा पांच भाग और कुम्भा बीस भाग रक्खें। कुम्भा में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का स्वरूप बनावें, इन तीन देवों में से एक मध्य में और उसके दोनों बगल में एक २ देव बनावें। भद्र के कुम्भा में तीन संध्या देवी, अपने परिवार के साथ बनावें, कोणे के कुम्भा में अनेक प्रकार के रूप बनावें, तथा भद्र के मध्यगर्भ में सुन्दर रथिका (गवाक्ष) बनावें। कमल के पान के आकार और तोरण वाले स्तंभ बनावें।

"कलशो वसुभागस्तु सार्धद्वौ चान्तःपत्रकम् ॥
वसुभिश्च कपोतालि-र्मञ्चिका नवभागिका ।
पञ्चत्रिंशदुच्छ्रिता च जङ्घा कार्या विचक्षण ! ॥
भ्रमनिर्वाणतैः स्तम्भैः-र्नासिकोपाङ्गकासमाः ।
मूलनासकसर्वेषु स्तम्भाः स्युश्चतुरस्रकाः ॥
गजैः सिंहैर्व्यालैश्च मकरैः समलङ्कृताः ।"

(१) 'त्रिंशत्पञ्चयुता' । (२) 'शिरावटी दशांशिका ।'

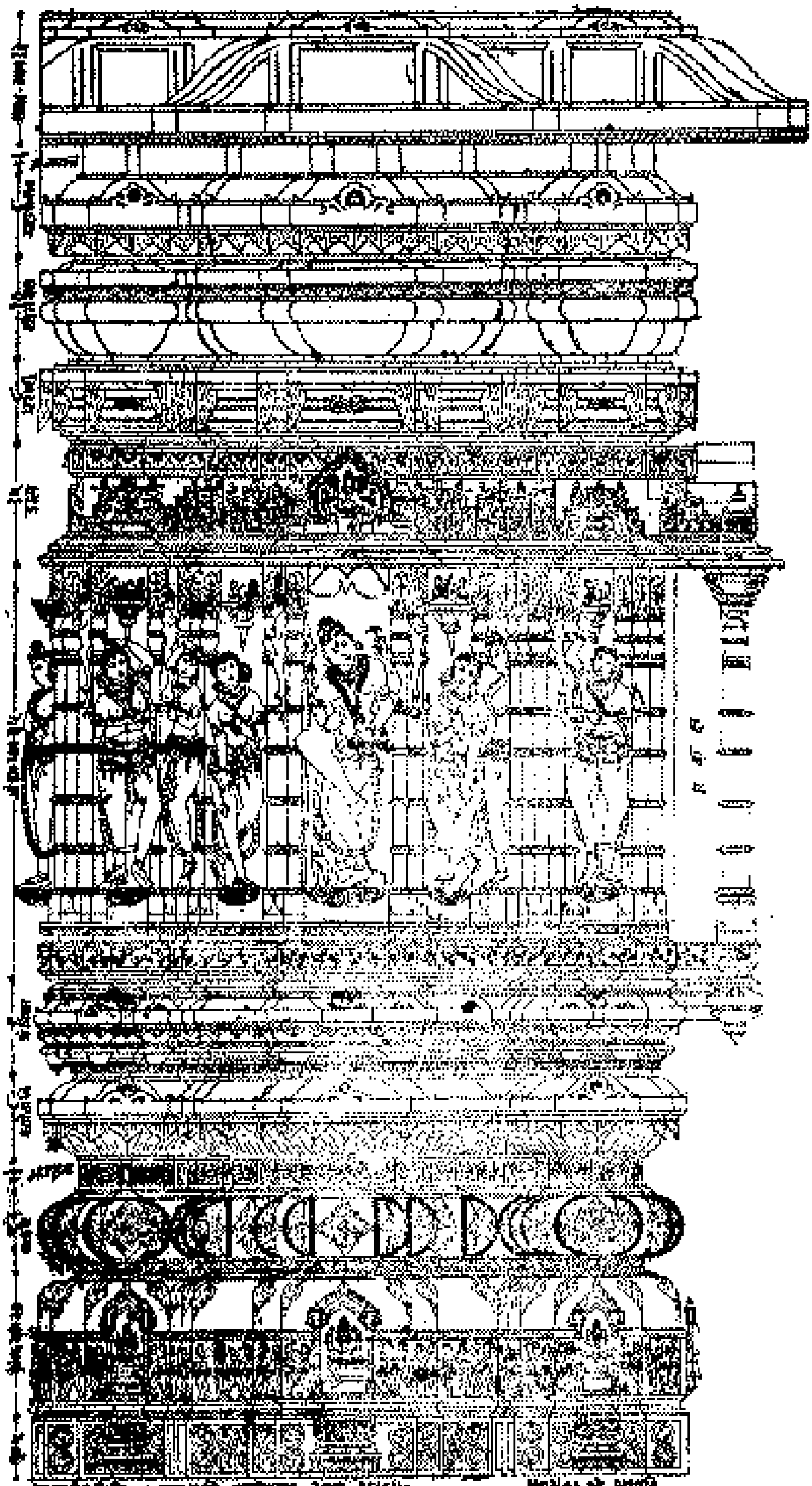

१४४ भाग का मंडोवर (प्रासाद की दीवार)

आठ भाग का कलश, ढाई भाग का अंतरपत्र, आठ भाग का केवाल, नव भाग की मंचिका और पैंतीस भाग की जंघा करें। कोना और उपांग आदि फालना की जंघा में भ्रमवाले स्तंभ बनावें, सब मुख्य कोने की जंघा में समचोरस स्तंभ बनावें, तथा गज, सिंह, वरालक और मकर के रूपों से शोभायमान बनावें।

"कर्णेषु च दिक्पालाष्टौ प्राच्यादिषु प्रदक्षिणे ॥
नाट्येशः पश्चिमे भद्रे अन्धकेश्वरो दक्षिणे ।
चण्डिका[1] उत्तरे देव्यो दंष्ट्राभुविकृताननाः ॥
प्रतिरथे तस्य देव्यः कर्त्तव्याश्च दिशांपतेः ।
वारिमार्गे मुनीन्द्राश्च प्रलीनाः तपः साधने ॥
गवाक्षाकारो भद्रेषु कुर्यान्निर्गमभूषितः ।"

कर्ण की जंघा में आठ दिक्पाल पूर्वादि दिशा के प्रदक्षिण क्रम से रक्खें। नाट्येश (नटराज) पश्चिम भद्र में, अंधकेश्वर दक्षिण भद्र में, विकराल मुख वाली और भयंकर दांत वाली चंडिका देवी उत्तर दिशा के भद्र में रक्खें। प्रतिरथ के भद्र में दिक्पालों की देवियां बनावें। वारिमार्ग में तपः साधना में लीन ऐसे ऋषियों के रूप बनावें। भद्र के गवाक्ष बाहर निकलता हुआ शोभायमान बनावें।

चार प्रकार की जंघा—

"नागरी च तथा लाटी वैराटी द्राविडी तथा ॥
शुद्धा तु नागरी ख्याता परिकर्मविवर्जिता ।
स्त्रीयुग्मसंयुता लाटी वैराटी पत्रसङ्कुला ॥
मञ्जरी बहुला कार्या जङ्घा च द्राविडी सदा ।
नागरी मध्यदेशेषु लाटी लाटे प्रकीर्त्तिता ॥
द्राविडी दक्षिणे देशे वैराटी सर्वदेशजा ।"

नागरी, लाटी, वैराटी और द्राविडी ये चार प्रकार की जंघा हैं। उनमें नागरी जंघा बिना किसी प्रकार के रूप की और शुद्ध सादी है। स्त्री युगल के रूप वाली लाटी जंघा है। कमल पत्रों वाली वैराटी जंघा है। बहुत मञ्जरी (शृङ्गों) वाली द्राविडी जंघा है। मध्यप्रदेश

(१) अपराजित पृच्छा सूत्र १२७ श्लोक २४ में 'जिनरागे च शासनदेव्यः ।' अर्थात् जिनराग देव के देवालय में चण्डिका के स्थान पर उनकी शासन देवियों को रखना लीखा है।

में नागरी जंघा, लाटदेश में लाटी जंघा, दक्षिण देश में द्राविड़ी जंघा और सारे देश में वैराटी जंघा प्रसिद्ध है।

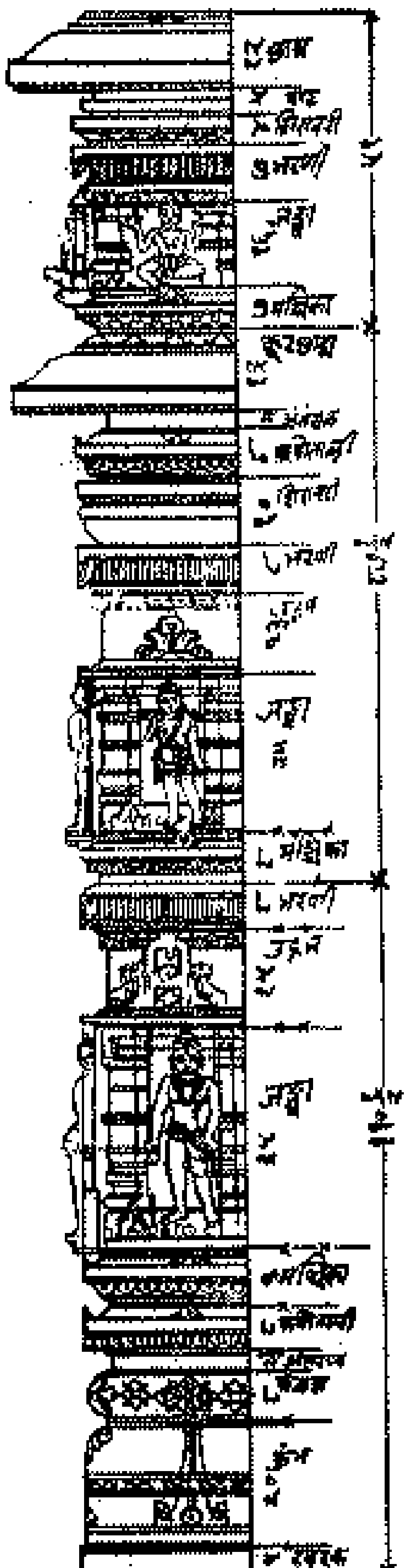
मेरुमण्डोवर भाग २४५

"उद्गमः पञ्चदशांशैः कपिग्रासैरलङ्कृतः ॥
भरणी वसुभागा तु शिरावटी पञ्चैव च।
तदूर्ध्वं पञ्चभिः पट्टं कपोतालिर्वसुस्मृता ॥
द्विसार्धमन्तःपत्रं च त्रिदशं कूटच्छाद्यकम्।
निर्गमं वसुभागे तु मेर्वादीनामतः शृणु ॥"

पंद्रह भाग का उद्गम बनावें, एवं उसमें बन्दरों के रूप बनावें। आठ भाग की भरणी, पांच भाग की शिरावटी, उसके ऊपर पांच भाग का पाट, आठ भाग का केवाल, ढाई भाग का अंतरपत्र और तेरह भाग का छज्जा का उदय रखना चाहिये। छज्जा का निर्गम आठ भाग रक्खें।

मेरु मंडोवर—

मेरुमण्डोवरे मञ्ची भरण्यूर्ध्वेऽष्टभागिका।
पञ्चविंशतिका जङ्घा उद्गमस्य त्रयोदश ॥२४॥
अष्टांशा भरणी शेषं पूर्ववत् कल्पयेत् सुधीः।
सप्तभागा भवेन्मञ्ची कूटच्छाद्यस्य मस्तके ॥२५॥
षोडशांशा पुनर्जङ्घा भरणी सप्तभागिका।
शिरावटी चतुर्भागा पट्टः स्यात् पञ्चभागिकः ॥२६॥
सूर्यांशैः कूटच्छाद्यं च सर्वकामफलप्रदम्।
कुम्भकस्य युगांशेन स्थावराणां प्रवेशकः ॥२७॥

इति मेरुमंडोवरः।

जिस मंडोवर में एकसे अधिक जंघा होवे, उसको मेरुमंडोवर कहते हैं। उसमें भरणी के ऊपर खुर, कुम्भ, कलश, अंतराल और केवाल, ये प्रथम के पांच थर नहीं बनाये जाते, किन्तु मञ्ची आदि सब थर बनाये जाते हैं। इसलिये प्रथम खुरा से लेकर भरणी

तक सब थर १४४ भाग के मान से बनाकर के पीछे उसके ऊपर मञ्ची आदि थर बनायें जाते हैं, उनका मान इस प्रकार है—

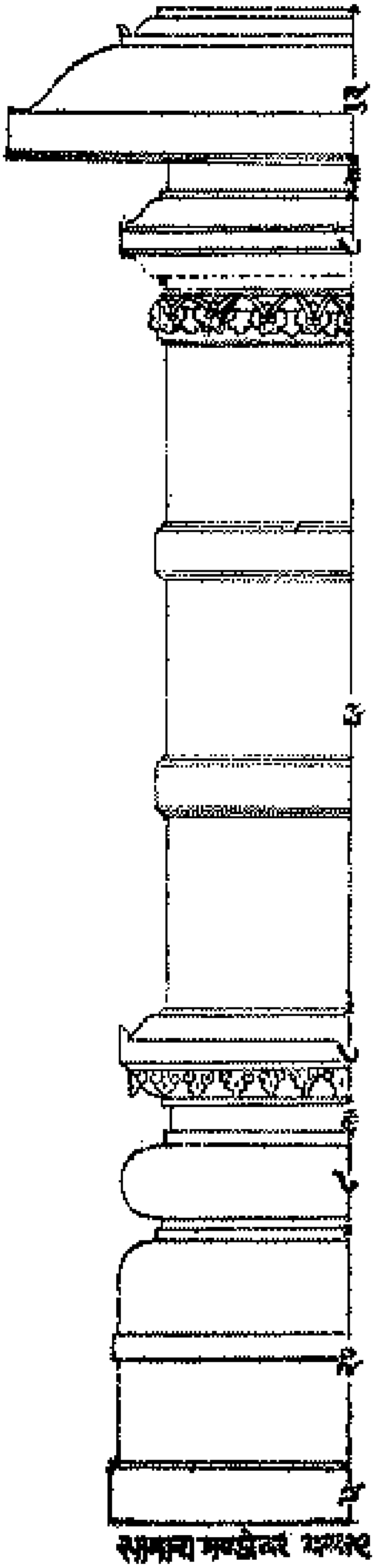

सामान्य मण्डोवर [illegible]

उपरोक्त १४४ भाग के मण्डोवर के खुरासे लेकर भरणी तक के सब थर बना करके उसके ऊपर मंची आठ भाग की, जंघा पचीस भाग की, उद्गम तेरह भाग का और भरणी आठ भाग की बनानी चाहिये। इसके ऊपर शिरावटी केवालि, अंतराल और छज्जा, ये चार थर १४४ भाग के मंडोवर के मान का बनावें। फिरसे इस छज्जा के ऊपर सात भाग की मंची, सोलह भाग की जंघा, सात भाग की भरणी, चार भाग की शिरावटी, पांच भाग का पाट और बारह भाग का कूटछाद्य बनावें। यह मेरुमंडोवर सब इच्छित फल देने वाला है। कुम्भा का एक चतुर्थांश भाग जितना सब थरों का निर्गम रक्खें ॥२४ से २७॥

क्षीरार्णव में कहा है कि—

"अस्योदये च कर्त्तव्यं प्रथमं षट्कच्छाद्यकम्।
यावत्समोदयः प्राज्ञ! तावन्मण्डोवरं कृतम्॥
तथाद्यच्छाद्यसस्थाने द्वे जङ्घे परिकीर्तिते।
"भवेयुर्द्वादशजङ्घा यावत्तु शतार्धोदये॥
षड्विधं कूटच्छाद्यं च द्विभूम्योरन्तरे मुने!।
भरण्यूर्ध्वे भवेन्माञ्ची छाद्योर्ध्वे न च मञ्चिका॥
पुनर्जङ्घा प्रदातव्या यावद् द्वादशसंख्यया।
किञ्चित् किञ्चिद् भवेन्न्यूनं कर्त्तव्यो भूमिकोच्छ्रयः॥
शतार्द्धोदये माने च महामेरुः प्रदापयेत्।" अध्याय १०४॥

जितना प्रासाद का उदय हो, उतना ही ऊंचा मंडोवर रक्खें। इस मंडोवर के उदय में छह छज्जे बनावें। प्रथम छज्जा दो जंघा वाला बनावें। इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद में बारह जंघा और छह छज्जा बनाया जाता हैं। दो दो भूमि के फासले पर एक २ छज्जा बनाना चाहिये। भरणी के ऊपर मांची रक्खें, किन्तु छज्जा के ऊपर मांची नहीं रखनी चाहिये। नीचे की भूमि से ऊपर की भूमि की ऊंचाई कम कम रखनी चाहिये। यह महामेरु मंडोवर पचास हाथ के प्रासाद के लिये बनाना चाहिये।

सामान्य मंडोवर—

शिरावट्यु्द्गमो मञ्ची जङ्घा रूपाणि वर्जयेत् ।
अल्पद्रव्ये महत्पुण्यं कथितं विश्वकर्मणा ॥२८॥

इति सामान्यमंडोवरः ।

शिरावटी, उद्गम, मंची और जंघा, इन थरों में जो जो रूप बनाये जाते हैं, इनसे द्रव्य का अधिक व्यय होता है। इसलिये ये थर बिना रूप का बनावें ताकि खर्च कम हो। विश्वकर्माजी के कथनानुसार इससे पुण्य भी महान् होता है। ॥२८॥

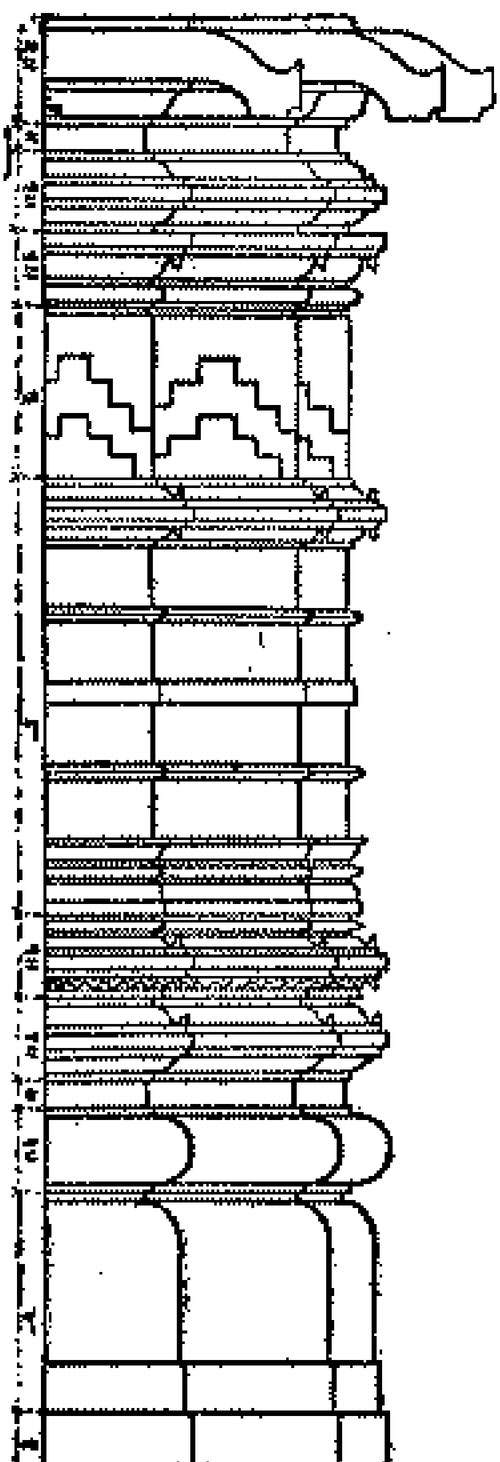

प्रकारान्तरे मंडोवर- भाग २७

२७ भाग का मंडोवर—

पीठतश्छाद्यपर्यन्तं सप्तविंशतिभाजिते ।
द्वादशानां खुरादीनां भागसंख्या क्रमेण तु ॥२९॥
स्यादेकवेदसार्धार्ध-सार्द्ध[1]सार्द्धाष्टभिस्त्रिभिः ।
सार्द्धसार्द्धार्धं भागैश्च सार्धद्वौ[1] द्व्यंशनिर्गमः॥ ३०॥

इति प्रकारान्तरे मण्डोवरः ।

पीठ के ऊपर से छज्जा के ऊपर तक मंडोवर के उदय का सत्ताईस (२७) भाग करें। उनमें खुरा आदि बारह थरों की भाग संख्या क्रमशः इस प्रकार है—एक भाग का खुरा, चार भाग का कुंभ, डेढ़ भाग का कलश, आधा भाग का अंतराल, डेढ़ भाग का केवाल, डेढ़ भाग की मांची, आठ भाग की जंघा, तीन भाग का उद्गम, डेढ़ भाग की भरणी, डेढ़ भाग का केवाल,[2] आधा भाग का अंतराल और ढाई भाग का छज्जा का उदय रक्खें, छज्जा का निर्गम दो भाग में करें। ॥२९॥३०॥

मंडोवर की मोटाई—

पादांशैरैष्टके पञ्च-षडंशैः शैलदारुजे ।
सान्धारे चाष्टभिर्भागै[3]र्दशांशैर्धातुरत्नजे ॥३१॥

---

(१) द्विसार्धैः ।

(२) भरणी के ऊपर कितनेक प्रासादों में शिरावटी है और कितनेक प्रासादों में केवाल देखने में आता है। (३) ऽष्टांशको भित्तिः ।

ईंटों के प्रासाद की दीवार प्रासाद के विस्तार के चौथा भाग जितनी, पाषाण के और लकड़ी के प्रासाद की दीवार पांचवें भाग अथवा छट्ठे भाग जितनी, सांधार प्रासाद की दीवार आठवें भाग, धातु और रत्न के प्रासाद की दीवार दसवें भाग जितनी मोटी बनावें ॥३१॥

अपराजित सूत्र १२६ में कहा है कि—

"मृदिष्टकाकर्मयुक्तां भित्ति पादां प्रकल्पयेत् ।
पञ्चमांशेऽथवा सा तु षष्ठांशे शैलजे भवेत् ॥
दारुजे सप्तमांशे च सान्धारे चाष्टमांशके ।
धातुजे रत्नजे भित्तिः प्रासादे दशमांशतः ॥"

मिट्टी और ईंट के प्रसाद की दीवार चौथे भाग, पाषाण के प्रासाद की दीवार पांचवें अथवा छट्ठे भाग, लकड़ी के प्रासाद की दीवार सातवें भाग, सान्धार जाति के प्रासाद की दीवार आठवें भाग, धातु और रत्न के प्रासाद की दीवार दसवें भाग जितनी मोटी बनावें।

अन्य प्रकार से मंडोवर की मोटाई—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशभागैर्विभाजिते ।
भित्तिर्द्विभागकर्त्तव्या षड्भागं गर्भमन्दिरम् ॥३२॥

समचोरस प्रासाद की भूमि के दस भाग करें। उसमें से दो २ भाग की दीवार की मोटाई रक्खें। बाकी छह भाग का गभारा बनावें ॥३२॥

शुभाशुभगर्भगृह—

मध्ये तुर्यास्त्रं भद्राढ्यं सुभद्रं प्रतिभद्रकम् ।
फालनीयं गर्भगृहं दोषदं गर्भमायतम् ॥३३॥

गर्भगृह चार कोने वाला समचोरस बनावें। उसमें भद्र, सुभद्र और प्रतिभद्र आदि फालना (खांचा) बताना शुभ है। परन्तु लंबचोरस गभारा बनाने पर दोष होता है ॥३३॥

अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ में कहा है कि—

"एकद्वित्रिकमात्राभि-र्गर्भगेहं यदायतम् ।
यमचुल्ली तदा नाम भर्तृगृहविनाशिका ॥"

यदि गर्भगृह एक, दो, तीन अंगुल भी सम्मुख लंबा हो तो यह यमचुल्ली नाम का गर्भगृह कहा जाता है। यह स्वामी के गृह का विनाश कारक है।

समचोरस शुभ गर्भगृह—

"दारुजे वलभीनां तु आयतं च न दूषयेत् ।
प्रशस्तं सर्वकृत्येषु चतुरस्रं शुभप्रदम् ।।" अप० सू० १२६

दारुजादि (लकड़ी के बने हुए) और वलभी (स्त्रीलिंग) जाति के प्रासाद में गर्भगृह लंबा हो तो दोष नहीं लगता है । बाकी समस्त जाति के प्रासादों में समचोरस गर्भगृह बनाना, सब कार्यों में प्रशंसनीय और शुभ है ।

स्तम्भ और मंडोवर का समन्वय—

कुम्भकेन समा कुम्भी स्तम्भप्रान्तेन तूद्गमः ।
भरण्या भरणीं शीर्षं कपोताल्या समं भवेत् ।।२४।।
पेटके[1] कूटच्छाद्यस्य कुर्यात् पट्टस्य पेटकम् ।

मंडोवर का कुम्भ और स्तंभ की कुम्भी, स्तंभ का मथाला और मंडोवर का उद्गम, स्तंभ की भरणी और मंडोवर की भरणी, मंडोवर की कपोताली और स्तंभ की शिरावटी, ये सब समसूत्र में रखने चाहिये और पाट के पेटा भाग तक छज्जा की नमन (छज्जा नमता) रखनी चाहिये ।

गर्भगृह के उदय का मान और गुम्बज—

सषडंशः सपादः स्यात् सार्धो गर्भस्य विस्तरात् ।।२५।।
वृहद् वालये पट्ट-पेटान्तं हि त्रिधोदयः ।
भजेदष्टभिरेकांशा कुम्भी स्तम्भोऽर्द्ध पञ्चभिः ।।२६।।
अर्द्धेन भरणी शीर्ष-मेकं पट्टस्तु सार्धकः ।
व्यासार्धेन करोटः स्याद् दर्दरी विषमा शुभा ।।२७।।

इति गर्भगृहोदयप्रमाणम् ।

गर्भगृह (गभारे) के विस्तार में विस्तार का षष्ठांश युक्त सवाया अथवा डेढा गर्भगृह का उदय रक्खें । यह गभारे के तल से पाट के पेटा भाग तक गर्भगृह के उदय का तीन प्रकार का मान हुआ । (अपराजित पृच्छा सू० १२८ श्लो० ५ में गभारे का उदय पौने दुगुणा तक रखने

(१) 'अधस्तात्'

को कहा है) जो उदयमान आया हो, उसका आठ भाग करें, उनमें से एक भाग की कुम्भी, साढ़े पांच भाग का स्तंभ, आधे भाग की भरणी और एक भाग की शिरावटी बनावें। इसके ऊपर डेढ़ भाग का केवाल (पाट) रक्खें। गर्भगृह के विस्तार से आधा करोट (गुम्बज) का उदय रखना चाहिये, उसमें दर्दरी का थर विषम संख्या में रक्खें ॥३५ से ३७॥

उदुम्बर (देहली) की ऊँचाई—

मूलकर्णस्य सूत्रेण कुम्भेनोदुम्बरः समः ।
तदधः पञ्चरत्नानि स्थापयेच्छिल्पिपूजया ॥३८॥

प्रासाद के कोने के समसूत्र में उदुम्बर (देहली) बनावें। यह कुम्भा के उदय के बराबर ऊंचाई में रक्खें। इसकी स्थापना करते समय नीचे पंचरत्न रक्खें और शिल्पियों का सम्मान करें ॥३८॥

उदुम्बर की रचना—

द्वारव्यासत्रिभागेन मध्ये मन्दारको भवेत् ।
वृत्तं मन्दारकं कुर्याद् मृणालं पद्मसंयुतम् ॥३९॥
जाड्यकुम्भः कणाली च कीर्त्तिवक्त्रद्वयं तथा ।
उदुम्बरस्य पार्श्वे च शाखायास्तलरूपकम् ॥४०॥

द्वार के विस्तार का अर्थात् देहली का तीन भाग करें। उनमें से एक भाग का मध्य में मंदारक बनावें। यह अर्धचंद्र के आकार वाला गोल और पद्मपत्र युक्त बनाना चाहिये। उदुम्बर की ऊंचाई के अर्धभाग में जाड्यकुम्भ और कणी, ये दो थर वाली कणपीठ बनावें। मंदारक के दोनों तरफ एक २ भाग का कीर्तिमुख (ग्रासमुख) बनावें और उसके बगल में शाखा के तलका रूपक बनावें ॥३९-४०॥

कुंभा से हीन उदुम्बर और तल—

कुम्भस्यार्द्धे त्रिभागे वा पादे हीन उदुम्बरः ।
तदर्धे कर्णकं मध्ये पीठान्ते बाह्यभूमिका ॥४१॥

इति उदुम्बर ।

उदुंबर का उदय कुम्भ के उदय के बराबर रखना चाहिये। परन्तु कम करना चाहे तो कुम्भ के उदय का आधा एक तृतीयांश अथवा चौथा भाग जितना कम कर सकते है। उदय के आधे भाग तक कणपीठ करना और गर्भगृह का तल रखना चाहिये और बाहर के मंडपों के तल पीठ के उदयान्त बराबर रक्खे ॥४१॥

अपराजित पृच्छा सूत्र १२९ में कहा है कि—

"उदुम्बरं तथा वक्ष्ये कुम्भिकान्तं तदुच्छ्रयम् ।
तस्यार्धेन त्रिभागेन, पादोनरहितं तथा ॥
उक्तं चतुर्विधं शस्तं कुर्याच्चैवमुदुम्बरम् ।
मध्युत्तमाश्च चत्वारो न्यूना कुर्यात्तथाधिका ॥
खुरकोर्ध्वेऽर्द्धचन्द्रः स्यात् तदूर्ध्वं स्यादुदुम्बरः ।
उदुम्बरार्द्धे त्र्यंशे वा पादे वा गर्भभूमिका ॥
मण्डपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका ॥"

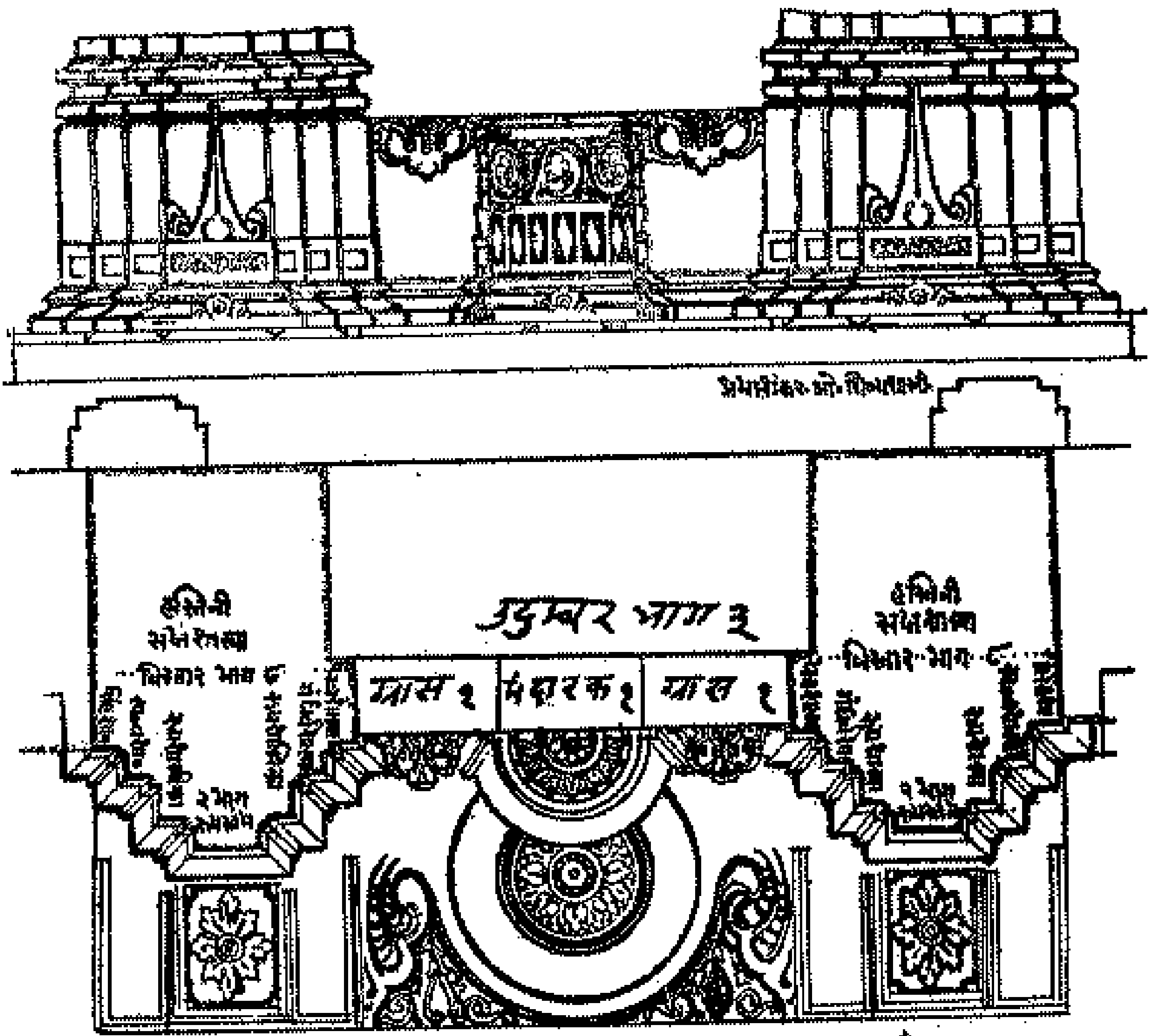

मंदिर के द्वार की देहली का उदय आठ तल भाग तथा अर्द्ध चंद्र और गगारक.

अब मैं उदुम्बर (देहली) का स्वरूप कहता हूं। यह स्तंभों की कुम्भियों की ऊंचाई के बराबर ऊंचाई का रक्खें। यदि किसी कारण वश नीचा करने की आवश्यकता हो तो कुम्भी के अर्धभाग, तीसरा भाग अथवा चौथा भाग जितना नीचा कर सकते हैं। ऐसे चार प्रकार के उदुम्बर का उदय प्रशस्त माना है। इससे हीन अथवा अधिक उदय का बनावें तो दूषित होता है * खुरधर के उदय बराबर अर्द्ध चन्द्रका उदय रक्खें, और इसके ऊपर उदुम्बर रक्खें। गर्भगृह के भूमितलका उदय उदुम्बर के आधे, तीसरे अथवा चौथे भाग में रक्खें। बाहर के मंडपों का भूमितल पीठ के उदयान्त तक रक्खें और रंगमंडप का भूमितल पीठ के नीचे के अंत्य भाग में रक्खें।

क्षीरार्णव में भी कहा है कि—

"उदुम्बरे क्षते[1] कुम्भी स्तम्भकं चापूर्वकम्।
सान्धारे च निरन्धारे कुम्भिकान्समुदुम्बरम्॥" अध्याय १०६

यदि किसी कारण वश उदुम्बर का उदय कम किया जाय तो भी कुम्भी और स्तंभ का मान पहले जितना ही रखना चाहिये, अर्थात् स्तम्भ की कुम्भी कम नहीं करनी चाहिये ऐसा विशेष नियम है। बाकी सांधार और निरंधार प्रासादों में कुम्भी के उदय बराबर उदुम्बर का उदय रखना चाहिये, ऐसा सामान्य नियम है।

अर्द्धचन्द्र (शंखावर्त्त)—

खुरकेन समं कुर्या-दर्धं चन्द्रस्य चोच्छ्रितिः।
द्वारव्याससमं दैर्घ्यं निर्गमं स्यात् तदर्धतः॥४२॥
द्विभागमर्धचन्द्रं च भागेन द्वौ गगारकौ।
शङ्खपत्रसमायुक्तं पद्माकारैरलङ्कृतम्॥४३॥

इति अर्द्धचन्द्रः।

* कितने ही आधुनिक शिल्पियों की मान्यता है कि—"उदुम्बर (देहली) कुम्भा से नीचा उतारने की आवश्यकता हो तब उसके बराबर स्तंभ की कुम्भियां भी नीचो उतारनी चाहिये।" उनकी यह मान्यता प्रामाणिक मालूम नहीं होती, क्योंकि क्षीरार्णव अ० १०६ में स्पष्ट लिखा है कि—'उदुम्बरे क्षते (हृते) कुम्भी स्तम्भं तु पूर्ववत् भवेत्।' कभी उदुम्बर उदय में कम करने की आवश्यकता हो तब स्तम्भ और उनकी कुम्भियां प्रथम के मान के अनुसार रखनी चाहिये। एवं अपराजित पृच्छा सूत्र १२६ में तो कुम्भियों से ही उदुम्बर नीचा उतारने को कहा है, तो कुम्भियां नीचे कैसे की जाय? इससे साफ मालूम होता है कि जब उदुम्बर नीचा करने की आवश्यकता हो, तब कुम्भियां नीचे नहीं करनी चाहिये, किन्तु कुम्भा के उदय बराबर ऊंचाई में रखनी चाहिये। (१) 'हृते'

उदुम्बर के आगे जो अर्द्धचन्द्र के जैसी आकृति की जाती है, उसका उदय खुर थर के उदय के बराबर रक्खें। द्वार के विस्तार के बराबर अर्द्धचन्द्र लंबा बनावें और लम्बाई से आधा निर्गम रक्खें। लम्बाई के तीन भाग करके उनमें से दो भाग का अर्द्धचंद्र और इसके दोनों तरफ आधे २ भाग का दो गगारक बनावें। अर्द्धचन्द्र और गगारक के बीच में पत्तेवाली बेलयुक्त शंख और पद्मपत्र जैसी आकृति से सुशोभित बनावें ॥४२-४३॥

उत्तरंग—

"उदुम्बरसपादेन उत्तरङ्गं विनिर्दिशेत् ।
तदुच्छ्रयं विभजेत भागा अर्धैकविंशतिः ॥
पत्रशाखा त्रिशाखा च द्विसार्धा तु कारयेत् ।
मालाधरं च त्रिभागं कर्त्तव्यं वामदक्षिणे ॥
ऊर्ध्वे छाद्यकः पादोनः पादोना फालना तथा ।
रथिका सप्तभागाश्च भागैकं कण्ठं भवेत् ॥
षड्भागमुद्गमेधं कार्य-मुद्गमं च प्रशस्यते ।
ईदृशं कारयेत् प्राज्ञः सर्वयज्ञफलं भवेत् ॥" वास्तुविद्या अ० ६

द्वार के उदुम्बर के उदय से उत्तरंग का उदय सवाया रक्खें। जो उदय आवे उसके इक्कीस भाग करें। उनमें से ढाई भाग की पत्रशाखा और त्रिशाखा बनावें। उसके ऊपर तीन भाग का मालाधर, पौन भाग की छज्जी, पौन भाग का फालना, सात भाग की रथिका (गवाक्ष), एक भाग का कंठ और छह भाग का उद्गम बनावें। इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष उत्तरंग बनावेंगे तो सब यज्ञों के बराबर फलदायक होता है।

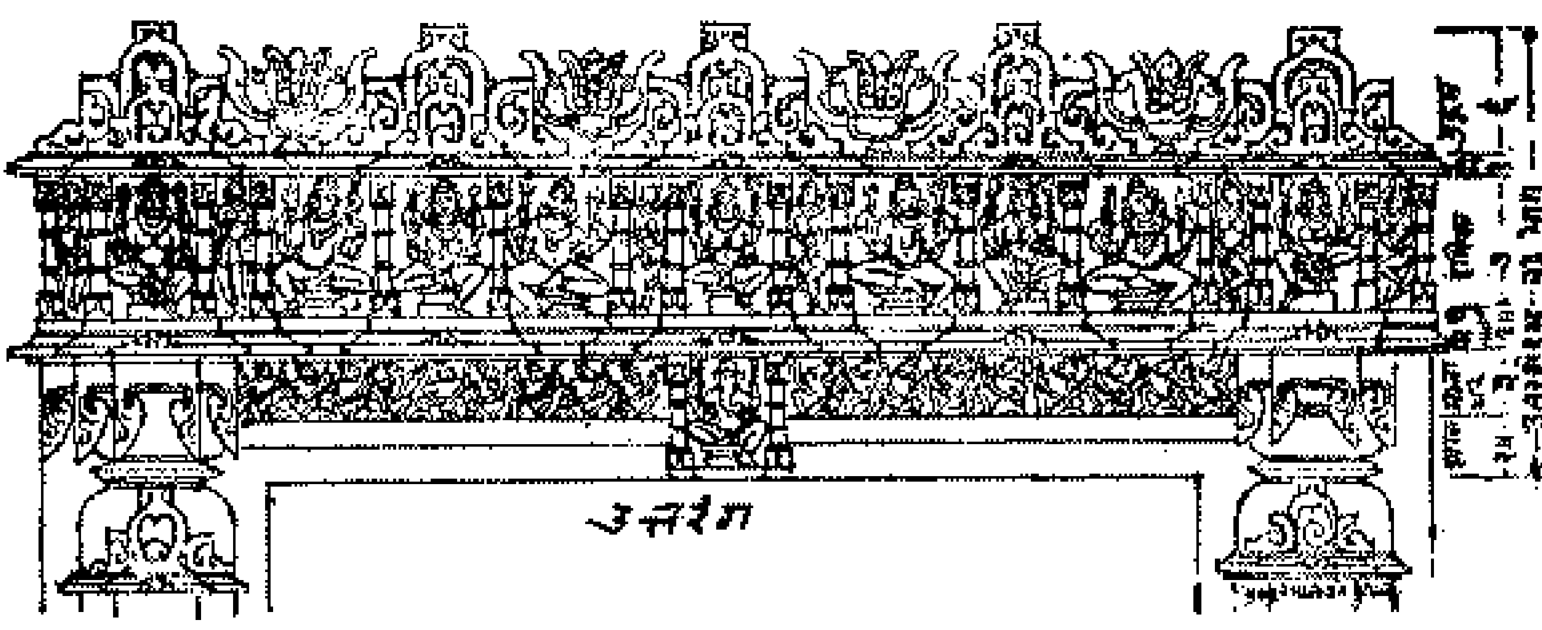

नागरप्रासाद का द्वारमान—

एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं स्यात् षोडशाङ्गुलम् ।
षोडशाङ्गुलिका वृद्धि-र्यावद्धस्तचतुष्टयम् ॥४४॥
अष्टहस्तान्तकं यावद् दीर्घे वृद्धिर्गुणाङ्गुला ।
द्वयङ्गुला प्रतिहस्तं च यावद्धस्तशतार्द्धकम् ॥४५॥
यानवाहनपल्यङ्कं द्वारं प्रासादसद्मनाम् ।
दैर्घ्यार्द्धेन पृथुत्वं स्याच्छोभनं तत्कलाधिकम् ॥४६॥

इति नागरप्रासादद्वारमानम् ।

नागर जाति के प्रासाद के द्वार का उदय एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के द्वार का उदय सोलह अंगुल रखना चाहिये । पीछे चार हाथ तक सोलह २ अंगुल, पांच से आठ हाथ तक तीन २ अंगुल और नौ से पचास हाथ तक प्रत्येक हाथ दो २ अंगुल बढ़ा करके द्वार का उदय रखना चाहिये । इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय १६० अंगुल[1] होता है । पालखी, वाहन, शय्या और पलंग तथा प्रासाद और घर का द्वार, ये सब विस्तार में लंबाई से आधा रखना चाहिये । उसमें भी लंबाई का सोलहवां भाग विस्तार में बढ़ावे तो अधिक शोभायमान होता है ॥४४ से ४६॥

क्षीरार्णवमें कहा है कि—

"एकहस्ते तु प्रासादे द्वारं च षोडशाङ्गुलम् ।
इयं वृद्धिः प्रकर्त्तव्या यावच्च चतुर्हस्तकम् ॥
वेदाङ्गुला भवेद् वृद्धि-र्यावच्च दशहस्तकम् ।
हस्तविंशतिमाने च हस्ते हस्ते त्रयाङ्गुला ॥
द्वयाङ्गुला भवेद् वृद्धिः प्रासादे त्रिंशद्धस्तके ।
अङ्गुलैका ततो वृद्धि-र्यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥
नागराख्यमिदं द्वार-मुक्तं क्षीरार्णवे मुने ! ।
दशमांशे यदा हीनं द्वारं स्वर्गे मनोहरम् ॥
अधिकं दशमांशेन प्रासादे पर्वताश्रये ।
तावच्छोभान्तरे ज्ञातु-मर्हद् विमुनीश्वर ! ॥

(१) समरांगण सूत्रधार अध्याय ४५ श्लोक १२६ में चार से अधिक मान के प्रासादों में तीन तीन अंगुल बढ़ाना लीखा है । जिसे पचास हाथ के प्रासाद का द्वारमान २०२ अंगुल का होता है ।

शिवे द्वारं भवेज्ज्येष्ठं कनिष्ठं च जनालये ।
मध्यमं सर्वदेवानां सर्वकल्याणकारकम् ॥
उत्तममुदयार्धेन पादोनं मध्यमानकम् ।
तस्य हीनं कनिष्ठं च विस्तारे द्वारमेव च ॥
एवं ज्ञानं यदा ज्ञात्वा यदा द्वारं प्रतिष्ठितम् ।
नागरं सर्वदेवानां सर्वदेवेषु दुर्लभम् ॥"

इति विश्वकर्मकृते क्षीरार्णवे नारदपृच्छिते शताधे पञ्चमोऽध्यायः ।

एक से चार हाथ तक प्रत्येक हाथ सोलह २ अंगुल को, पांच से दश हाथ तक चार २ अंगुल की, ग्यारह से बीस हाथ तक तीन २ अंगुल की, इक्कीस से तीस हाथ तक दो २ अंगुल की और इकतीस से पचास हाथ तक एक अंगुल की वृद्धि करके द्वार बनाना चाहिये। हे मुनि ! यह क्षीरार्णव में नागर जाति के द्वार का मान कहा। उसमे से दसवां भाग कम करें तो स्वर्ग के और अधिक करें तो पर्वत के आश्रित प्रासाद के द्वारका मान होता है। शिवालय में ज्येष्ठ द्वार, मनुष्यालय में कनिष्ठ द्वार और सब देवों के प्रासादों में मध्यम द्वार बनाना चाहिये। यह सब कल्याण करने वाला है। उदय से आधा विस्तार रक्खें तो यह उत्तम मान का द्वार माना जाता है। इसमें उत्तम मान के विस्तार का चतुर्थांश कम रक्खें तो मध्यम मान का और इसमें भी मध्यम मान के विस्तार का चतुर्थांश कम रक्खें तो कनिष्ठ मान का द्वार माना जाता है। ऐसा समझ करके ही सब देवों के लिये यह नागर जाति का द्वार बनाना चाहिये।

भूमिजादिप्रासादका द्वारमान—

एकहस्ते सुरागारे द्वारं सूर्याङ्गुलोदयम् ।
सूर्याङ्गुला प्रतिकरं वृद्धिः पञ्चकरावधि ॥४७॥
पञ्चाङ्गुला च सप्तान्तं नवान्तं सा युगाङ्गुला ।
द्व्यङ्गुला तु शतार्द्धान्तं वृद्धिः कार्या करं प्रति ॥४८॥

इति भूमिजप्रासादद्वारमानम् ।

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के द्वार का उदय बारह अंगुल, पीछे पांच हाथ तक प्रत्येक हाथ बारह २ अंगुल, छह और सात हाथ तक पांच २ अंगुल आठ और नव हाथ तक चार २ अंगुल, दस से पचास हाथ तक के प्रासाद के द्वार का उदय दो २ अंगुल बढ़ा करके रक्खें। (उदय से आधा विस्तार रखना चाहिये। विस्तार में उदय का सोलहवां भाग बढ़ाने से अधिक शोभायमान होता है) ॥४७-४८॥

द्राविडप्रासाद का द्वारमान—

प्रासादे एकहस्ते तु द्वारं कुर्याद् दशाङ्गुलम् ।
रसहस्तान्तकं यावत् तावती वृद्धिरिष्यते ॥४९॥
पञ्चाङ्गुला दशान्तं च द्व्यङ्गुला च शताद्ध कम् ।
पृथुत्वं च तदर्धेन शुभं स्यात्तु कलाधिकम् ॥५०॥

इति द्राविडद्वारमानम् ।

एक हाथ के प्रासाद के द्वार का उदय दस अंगुल, पीछे छह हाथ तक प्रत्येक हाथ दस २ अंगुल, सात से दस हाथ तक पांच २ अंगुल और ग्यारह से पचास हाथ तक के प्रासाद के द्वार का उदय प्रत्येक हाथ दो दो अंगुल बड़ा करके रक्खें। उदय से आधा विस्तार रक्खें। विस्तार में उदय का सोलहवां भाग बढ़ावे तो अधिक शोभायमान होता है ॥४९-५०॥

अन्य जाति के प्रासादों का द्वारमान—

विमाने भूमिजं मानं वैराटेषु तथैव च ।
मिश्रके लतिने चैव प्रशस्तं नागरोद्भवम् ॥५१॥
विमाननागरच्छन्दे कुर्याद् विमानपुष्पके ।
सिंहावलोकने द्वारं नागरं शोभनं मतम् ॥५२॥
वलभ्यां भूमिजं मानं फांसाकारेषु द्राविडम् ।
धातुजे रत्नजे चैव दारुजे च रथारुहे ॥५३॥

इति द्वारमानम् ।

विमान और वैराट जाति के प्रासाद का द्वार भूमिज जाति के मान का, मिश्र और लतिन जाति के प्रासाद का द्वार नागर जाति के मान का, विमाननागर, विमानपुष्पक और सिंहावलोकन जाति के प्रासाद का द्वारमान नागर जाति के मान का, वलभी प्रासाद का द्वारमान भूमिज जाति के मान का, फांसनाकार, धातु, रत्न, दारुज और रथारुह जाति के प्रासाद का द्वार द्राविड जाति के मान का रखना चाहिये ॥५१-५३॥

द्वारशाखा—

नवशाखं महेशस्य देवानां सप्तशाखिकम् ।
पञ्चशाखं सार्वभौमे त्रिशाखं मण्डलेश्वरे ॥५४॥

एकशाखं भवेद् द्वारं शूद्रे वैश्ये द्विजे सदा ।
समशाखं च धूमाये श्वाने रासभवायसे[1] ॥५५॥

महादेव के प्रासाद का द्वार नवशाखा वाला, दूसरे देवों के प्रासाद का द्वार सात शाखा वाला, चक्रवर्ती राजाओं के प्रासाद का द्वार पांच शाखावाला, सामान्य राजाओं के प्रासाद का द्वार तीन शाखावाला, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र आदि के गृहों के द्वार एक शाखावाला बनावें । दो, चार, छह और आठ, ये सम शाखावाले द्वार धूम, श्वान, खर और ध्वांक्ष आय वाले घरों में बनानें चाहियें ॥५४-५५॥

शाखा के आय—

"नवशाखे ध्वजश्चैको वृषभः पञ्चशाखिके ।
त्रिशाखे च तथा सिंहः समशाखे गजः स्मृतः ॥" अप० सू० १२१

नवशाख में ध्वज आय, पंचशाख में वृषआय, त्रिशाख में सिंह आय और समशाख में गज आय देनी चाहिये ।

प्रासाद के अंग तुल्य शाखा—

त्रिपञ्चसप्तनन्दाङ्गे शाखाः स्युरङ्गतुल्यकाः ।
हीनशाखं न कर्तव्य-मधिकाढ्यं सुखावहम् ॥५६॥

प्रासाद के भद्र आदि तीन, पांच, सात अथवा नव अंग हैं । उनमें से जितने अंग का प्रासाद हो, उतनी शाखायें बनानी चाहिये । अंग से कम शाखा नहीं बनाना चाहिये, लेकिन यदि अधिक बनावें तो वह सुखदायक है ।

शाखा से द्वारका नाम और परिचय—

"पद्मिनी नवशाखं च सप्तशाखं तु हस्तिनी ।
नन्दिनी पञ्चशाखं च त्रिविधं चोत्तमं भवेत् ॥
मुकुली मालिनी ज्येष्ठा गान्धारी सुभगा तथा ।
मध्यमेति द्विधा प्रोक्ता कनिष्ठा सुप्रभा स्मृता ॥
मुकुली चाष्टशाखं च षट्शाखं च मालिनी ।

(१) श्वाने ध्वांक्षे च रासभे ।

गान्धारी च चतुः शाखं त्रिशाखं सुभगा स्मृता ॥
सुप्रभा तु द्विशाखं चैकशाखं स्मरकीर्त्तितम् ॥" अप० सू० १३१

नवशाखा वाला द्वारका नाम पद्मिनी, सात शाखा वाला द्वारका नाम हस्तिनी और पंचशाखा वाला द्वारका नाम नन्दिनी है। ये तीनों द्वार उत्तम हैं। मुकुली और मालिनी ये

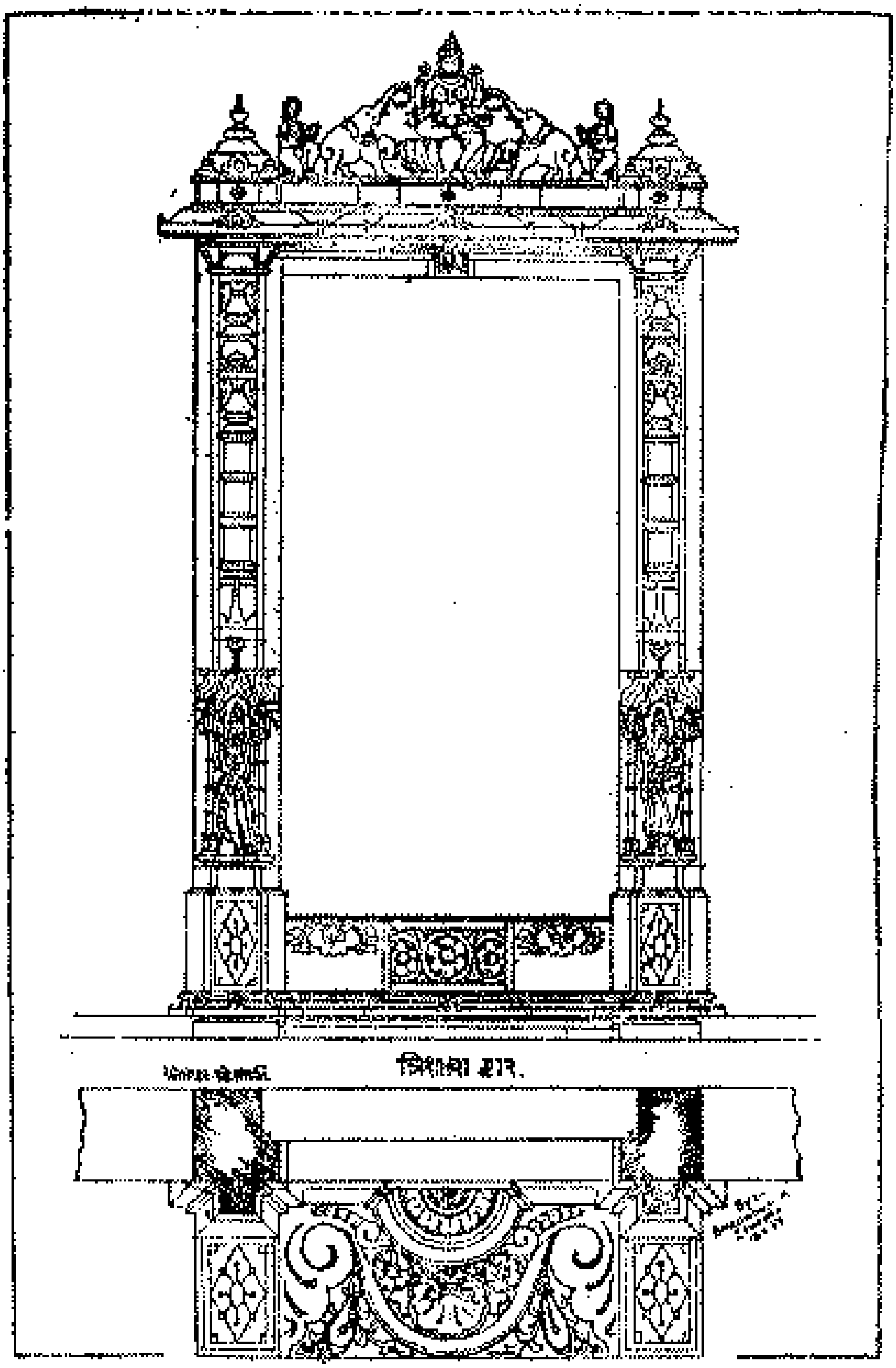

त्रिशाखा द्वार.

दोनों द्वार ज्येष्ठ हैं। गांधारी और सुभगा ये दोनों द्वार मध्यम हैं और सुप्रभा द्वार कनिष्ठ है। आठ शाखावाला द्वार मुकुली, छह शाखावाला मालिनी, चार शाखावाला गांधारी, तीन शाखावाला सुभगा, दो शाखावाला सुप्रभा और एक शाखावाला स्मरकीर्ति नाम का द्वार है।

न्यूनाधिक शाखामान—

अङ्गुलं सार्धमर्द्धं वा कुर्याद्धीनं तथाधिकम्।
आयदोषविशुद्ध्यर्थं [1] ह्रस्ववृद्धी न दूषिते ॥५७॥

द्वार शाखा के मान में शुभ आय न आती हो तो एक, डेढ़ अथवा आधा अंगुल न्यूनाधिक करके श्रेष्ठ आय लानी चाहिये। आय दोष की शुद्धि के लिये शास्त्रीय मान में इतना न्यूनाधिक परिवर्तन किया जाय तो दोष नहीं है ॥५७॥

त्रिशाखा—

चतुर्भागाङ्कितं कुर्याच्छाखाविस्तारमानकम्।
मध्ये द्विभागिकं कुर्यात् स्तम्भं पुरुषसञ्ज्ञकम् ॥५८॥
स्त्रीसञ्ज्ञका भवेच्छाखा पार्श्वतो भागभागिका।
निर्गमे चैकभागेन रूपस्तम्भः प्रशस्यते ॥५९॥

शाखा के विस्तार का चार भाग करें। उनमें से दो भाग का रूप स्तंभ बनावें। यह स्तंभ पुरुष संज्ञक है। इसके दोनों तरफ एक २ भाग की शाखा रक्खें। यह शाखा स्त्री संज्ञक है। रूप स्तंभ का निर्गम एक भाग का रखना श्रेष्ठ है ॥५९॥

शाखा स्तंभ का निर्गम—

एकांशं सार्धभागं च पादोनद्वयमेव च।
द्विभागं निर्गमे कुर्यात् स्तम्भं द्रव्यानुसारतः ॥६०॥

द्रव्य की अनुकूलता के अनुसार शाखा के स्तंभ का निर्गम एक, डेढ़, पौना दो अथवा दो भाग तक रख सकते हैं ॥६०॥

शाखोदर का विस्तार और प्रवेश—

पेटके विस्तरं कार्यं प्रवेशस्तु युगांशकः।
कोणिका स्तम्भमध्ये तु भूषणार्थं हि पार्श्वयोः ॥६१॥

(१) 'ह्रासो वृद्धिर्न दुष्यति।'

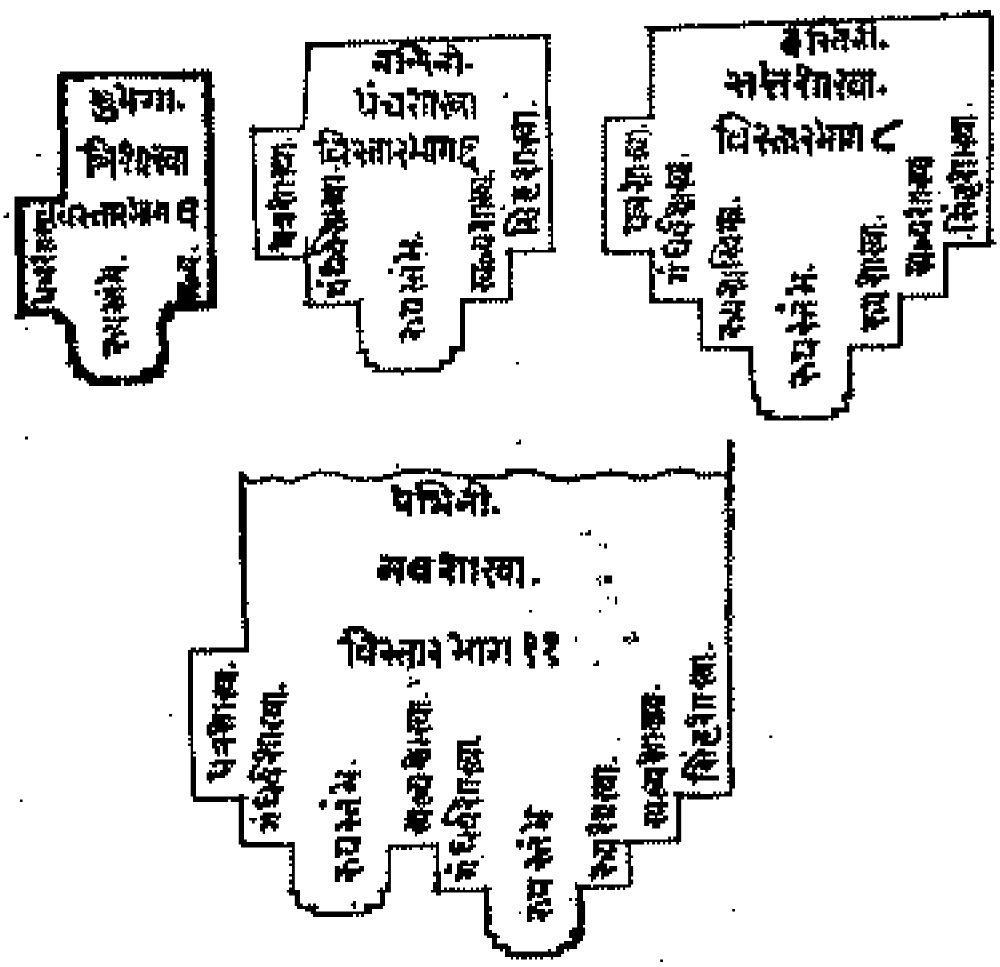

शाखा के विस्तार का चौथा भाग शाखा का प्रवेश (निर्गम) रक्खें। रूपस्तंभ के दोनों तरफ शोभा के लिये एक २ कोणिका बनावें, इसमें चंपा के फूलों की अथवा जलबट की आकृति करें ॥६१॥

सूत्रधार राजसिंह कृत वास्तुराज में कहा है कि—

"सर्वेषां पेटके व्यासः प्रवेशस्तु युगांशकः ।
सार्धवेदांशतो वापि पञ्चांशोऽथवा मतः ॥" अध्याय ६

सब शाखाओं का प्रवेश शाखा के विस्तार के चौथे भाग, साढे चार भाग अथवा पांचवें भाग तक रक्खें। अपराजित पृच्छा सूत्र १२२ श्लो० २४ वें में भी यही लिखा है।

शाखा के द्वारपाल का नाम—

द्वारदैर्घ्ये चतुर्थांशे द्वारपालौ विधियते ।
स्तम्भं शाखादिकं शेषं त्रिशाखा च विभाजयेत् ॥६२॥

इति त्रिशाखमानम् ।

द्वार के उदय का चार भाग करके एक भाग के उदय में द्वारपाल बनावें और बाकी तीन भाग के उदय में स्तंभ और शाखा आदि बनावें ॥६२॥

शाखा के रूप—

"कालिन्दी वामशाखायां दक्षिणे चैव जाह्नवी ।
गङ्गार्कतनयायुग्म-मुभयोर्वामदक्षिणे ॥
गन्धर्वा निर्गमे कार्या एकभागा विचक्षणैः ।
तत्सूत्रे खल्वशाखा च सिंहशाखा च भागिका ॥
नन्दी च वामशाखायां कालो दक्षलताश्रितः ।
यक्षाः स्युस्तशाखायां निधिहस्ताः शुभोदयाः ॥" अप० सू० १३२

बांयी द्वार शाखा के द्वारपाल की बांयी और यमुना और दाहिनी ओर गंगा, तथा दाहिनी द्वार शाखा के द्वारपाल की बांयी ओर गंगा और दाहिनी ओर यमुना देवी का रूप बनाना चाहिये। गंधर्व शाखा के समसूत्र में खल्वशाखा रक्खें, इन दोनों का निर्गम भी एक भाग रक्खें। सिंहशाखा का निर्गम भी एक भाग रक्खें। हाथ में निधि को धारण किये हुए बांयी शाखा में नंदी और दाहिनी शाखा में काल नाम के यक्षों के रूप बनावें।

पञ्चशाखा—

पत्रशाखा च गन्धर्वा रूपस्तम्भस्तृतीयकः ।
चतुर्थी खल्वशाखा च सिंहशाखा च पञ्चमी ॥६३॥

इति पञ्चशाखाः ।

पहली पत्रशाखा, दूसरी गान्धर्वशाखा, तीसरा रूपस्तंभ, चौथी खल्वशाखा और पांचवीं सिंहशाखा है।

पञ्चशाखा का मान—

"शाखाविस्तारमानं च षड्भिर्भागैर्विभाजयेत् ।
एकभागा भवेच्छाखा रूपस्तम्भो द्विभागिकः ॥
निर्गमश्चैकभागेन रूपस्तम्भः प्रशस्यते ।
कोणिका स्तम्भमध्ये च उभयोर्वामदक्षिणे ॥
गन्धर्वा निर्गमे कार्या एकभागा विचक्षणैः ।
तत्सूत्रे खल्वशाखा च सिंहशाखा च भागिका ॥
सपादः सार्धभागो वा रूपस्तम्भः प्रशस्यते ।
उत्सेधस्याष्टमांशेन शस्तं शाखोदरं मतम् ॥" अप० सू० १३२

पंचशाखा के विस्तार का छह भाग करें। उनमें से एक २ भाग की चार शाखा और दो भाग का रूपस्तम्भ बनावें। रूपस्तम्भ का निर्गम एक भाग रक्खें, इसके दोनों तरफ एक २

कोणी बनावें। गान्धर्व शाखा का निर्गम एक भाग रक्खें। उसके समसूत्र में खल्वशाखा और सिंहशाखा एक २ भाग निकलती रक्खें। स्तंभ का निर्गम सवा अथवा डेढ़ भाग का भी रख सकते हैं। द्वार के उदय का अष्टमांश शाखा के पेटाभाग का विस्तार रक्खें।

सप्तशाखा के नाम—

> प्रथमा पत्रशाखा च गन्धर्वा रूपशाखिका।
> चतुर्थी स्तम्भशाखा च रूपशाखा च पञ्चमी ॥६४॥
> षष्ठी तु खल्वशाखा च सिंहशाखा च सप्तमी।
> स्तम्भशाखा भवेन्मध्ये रूपशाखाग्रतः ॥६५॥
>
> इति सप्तशाखाः।

प्रथमा पत्रशाखा, दूसरी गान्धर्वशाखा, तीसरी रूपशाखा, चौथी स्तंभशाखा, पांचवीं रूपशाखा, छट्ठी खल्वशाखा और सातवीं सिंहशाखा है। मध्य में स्तंभशाखा रक्खें। यह रूपशाखा से आगे निकलती हुयी रक्खें ॥६४-६५॥

सप्तशाखा का मान—

> "शाखाविस्तारमानं तु वसुभागविभाजितम्।
> भागभागाश्च शाखाः स्यु-र्मध्यस्तम्भो द्विभागिकः॥
> कोणिका भागपादेन विस्तारे निर्गमे तथा।
> निर्गमः सार्धभागेन रूपस्तम्भः प्रशस्यते॥
> गन्धर्वा सिंहशाखा च निर्गमो भागमेव च।
> निर्गमश्च तदर्धेन शेषाः शाखाः प्रशस्यते॥" अप० सू० १३२

सप्तशाखा के विस्तार का आठ भाग कर उनमें से प्रत्येक शाखा का विस्तार एक २ भाग और मध्य में स्तंभ का विस्तार दो भाग रक्खें। स्तंभ में दोनों तरफ विस्तार में और निर्गम में पाव २ भाग की कोणिका बनावें। डेढ़ भाग निकलता रूपस्तंभ रखना अच्छा है। गंधर्व और सिंहशाखा का निर्गम एक २ भाग और बाकी शाखाओं का निर्गम आधा २ भाग रखना अच्छा है।

नवशाखा के नाम—

> पत्रगान्धर्वसञ्ज्ञा च रूपस्तम्भस्तृतीयकः।
> चतुर्थी खल्वशाखा च गन्धर्वा त्वथ पञ्चमी ॥६६॥

रूपस्तम्भस्तथा षष्ठी रूपशाखा ततः परम् ।
खल्वशाखा च सिंहाख्या मूलकर्णेन सम्मिता ॥६७॥

इति नवशाखाः ।

प्रथमा पत्रशाखा, दूसरी गांधर्वशाखा, तीसरी स्तंभशाखा, चौथी खल्वशाखा, पांचवीं गांधर्वशाखा, छठा रूपस्तंभ, सातवीं रूपशाखा, आठवीं खल्वशाखा और नववीं सिंहशाखा है। ये नवशाखा का विस्तार प्रासाद के कोने तक किया जाता है ॥६६-६७॥

नवशाखा का मान—

"शाखाविस्तारमानं तु रुद्रभागविभाजितम् ।
द्विभागः स्तम्भ इत्युक्त उभयोः कोशिकाद्वयम् ॥
निर्गमः सार्धभागेन पादोनद्वयमेव च ।
रूपस्तंभद्वयं कार्यं गन्धर्वाद्वयमेव च ॥" अप० सूत्र १३२

नवशाखा के विस्तार का ग्यारह भाग करके, उनमें से दोनों स्तंभ दो २ भाग रखना चाहिये। उसके दोनों तरफ पाव २ भाग की कोशिकायें बनावें। स्तंभका निर्गम डेढ़ा अथवा पौने दुगुना रखें। इन नवशाखाओं में दो स्तंभ और दो गांधर्व शाखा हैं। दोनों स्तंभ का विस्तार दो २ भाग और प्रत्येक शाखा का विस्तार एक २ भाग रखना चाहिये।

उत्तरंग के देव—

यस्य देवस्य या मूर्तिः सैव कार्योत्तरङ्गके ।
शाखायां च परिवारो गणेशश्चोत्तरङ्गके ॥६८॥

इति श्री सूत्रधारमंडनविरचिते वास्तुशास्त्रे प्रासादमण्डने मिट्ट-
पीठमण्डोवरगर्भगृहोदुम्बरद्वारप्रमाणनामस्तृतीयोऽध्यायः ।

प्रासाद के गर्भगृह में जिस देव की मूर्त्ति प्रतिष्ठित हो, उस देव की मूर्त्ति द्वार के उत्तरंग में रखनी चाहिये। तथा शाखाओं में उस देव के परिवार का रूप बनाना चाहिये। उत्तरंग में गणेश को भी स्थापित कर सकते हैं ॥६८॥

इति श्री पंडित भगवानदास जैन का अनुवादित प्रासादमंडन के
तीसरे अध्याय की सुबोधिनी नाम्नी भाषाटीका समाप्त ॥३॥

अथ प्रासादमण्डने चतुर्थोऽध्यायः

द्वारमान से मूर्ति और पद्मासन का मान—

द्वारोच्छ्रायोऽष्टनवधा भागमेकं परित्यजेत् ।
शेषे त्र्यंशे द्विभागार्चा त्र्यंशोना द्वारतोऽथवा ॥१॥

द्वार के उदय का आठ अथवा नव भाग करें। उनमें से ऊपर का एक भाग छोड़ दें, बाकी जो सात अथवा आठ भाग रहें, उनके तीन भाग करें। उनमें से दो भाग की मूर्ति और एक भाग ऊंचाई में पद्मासन (पीठिका) बनावें अथवा दरवाजे का तीन भाग करके उसमें से दो भाग की मूर्ति बनावें ॥१॥

द्वारदैर्घ्ये तु द्वात्रिंशे तिथिशाक्रकलांशकैः ।
ऊर्ध्वार्चा आसनस्था तु मनुविश्वार्कभागतः ॥२॥

द्वार के उदय का बत्तीस भाग करें। उनमें से पंद्रह, चौदह अथवा सोलह भाग के मान की खड़ी मूर्ति बनावें। बैठी मूर्ति चौदह, तेरह अथवा बारह भाग की बनावें ॥२॥

क्षीरार्णव अ० ११० में लीखा है कि—

"द्वारं चाष्टविभक्तं च त्रिधा भक्तं च सप्तभिः ।
पीठमानं भागमेकं शेषं च प्रतिमा मुने ! ॥
सप्तभागं भवेद् द्वारं षड्भागं च त्रिधाकृतम् ।
द्विभागं प्रतिमामानं शेषं पीठं हि चोच्यते ॥
द्वारं षड्भागिकं कुर्यात् त्रिधा पञ्च प्रकल्पयेत् ।
पीठश्चैकेन भागेन द्विभागं प्रतिमा भवेत् ॥
एवमूर्ध्वप्रतिमा च अर्द्धं शयनासनं भवेत् ।
पीठमानं च नान्यत्र शेषस्थाने च निष्कलम् ॥
जलशय्याप्रमाणेन द्वारविस्तारसाधितम् ।
अन्यथा च यदा अर्चा विस्तरं नैव लङ्घयेत् ॥"

द्वार की ऊंचाई का आठ भाग करके ऊपर का एक भाग छोड़ दें, बाकी के सात भाग का तीन भाग करें, उनमें से दो भाग की प्रतिमा और एक भाग की पीठ (पद्मासन) बनावें।

अथवा द्वार की ऊंचाई का सात भाग करके ऊपर का एक भाग छोड़ दें, बाकी छह भाग के तीन भाग करें, उनमें से दो भाग की प्रतिमा और एक भाग का पबासन बनावें। द्वार की ऊंचाई का छह भाग करके ऊपर का एक भाग छोड़ दें, बाकी के पांच भाग का तीन भाग करें, उनमें से दो भाग की प्रतिमा और एक भाग का पबासन बनावें। यह खड़ी प्रतिमा का मान है। शयनासन प्रतिमा के पीठ का मान द्वारोदय के अर्द्ध मान का बनावें और बाकी प्रतिमा का मान जानें। जलशय्या वाली प्रतिमा के मानानुसार द्वार का विस्तार रक्खें। अर्थात् जलशय्या-वाली प्रतिमा द्वार के विस्तार से अधिक मान की नहीं बनानी चाहिये।

गर्भगृह का मान—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।
[२]द्विद्विभागेन द्वौ भित्ती षड्भागं गर्भमन्दिरम् ॥३॥

प्रासाद की समचोरस भूमि के दस भाग करें। उनमें से दो दो भाग की दोनों तरफ की दीवार और बाकी छह भाग का गर्भगृह बनावें ॥३॥

गर्भगृह के मान से मूर्तिका मान—

तृतीयांशेन गर्भस्य प्रासादे प्रतिमोत्तमा ।
मध्यमा स्वदशांशोना पञ्चांशोना कनीयसी ॥४॥

गर्भगृह के विस्तार के तीसरे भाग की प्रतिमा बनाना उत्तम है। प्रतिमा का दसवां भाग प्रतिमा के मान में से घटादें तो मध्यम मान की और पांचवां भाग घटादें तो कनिष्ठ मान की प्रतिमा माना जाता है ॥४॥

देवों का दृष्टिस्थान—

आयभागैर्भजेद् द्वार-मष्टममूर्ध्वतस्त्यजेत् ।
सप्तमसप्तमे दृष्टि-र्वृषे सिंहे ध्वजे शुभा ॥५॥

देहली के ऊपर से लेकर उत्तरंग के नीचे भाग तक के द्वार के बीच में आठ भाग करें। उनमें से ऊपर का आठवां भाग छोड़कर उसके नीचे का सातवां भाग का आठ भाग करें।

(२) 'भित्तिद्विभागा कर्त्तव्या।'

* कितने ही शिल्पी सातवां और आठवां भाग के मध्य में आंख की कीकी रहे, इस प्रकार प्रतिमा की दृष्टि रखते हैं, इससे आय का मेल नहीं मिलता, जिसे उनकी मान्यता प्रमाणिक मालूम नहीं होती।

उनमें से भी ऊपर का एक भाग छोड़कर के उसके नीचे का सातवां भाग गज आय है, उसमें सब देवों की दृष्टि रखनी चाहिये। अर्थात् द्वार के मध्य उदय का चौंसठ भाग करके उनमें से पचपनवें भाग में दृष्टि रखें। अथवा आठ भाग वाले सातवें भाग के वृष, सिंह और ध्वज आय में भी दृष्टि रखना शुभ माना है ॥५॥

विशेष देवों का दृष्टिस्थान—

षष्ठभागस्य पञ्चांशे लक्ष्मीनारायणादिदृक् ।
शयनार्चेशलिङ्गानि द्वाराद्धे न व्यतिक्रमेत् ॥६॥

द्वार के आठ भागों में जो छठा भाग है, उसके आठ भाग करके पांचवें भाग में लक्ष्मीनारायण की दृष्टि रक्खें। शयनासन वाले देव और शिवलिङ्ग की दृष्टि द्वार के अर्धभाग में रक्खें, किन्तु द्वारार्ध का उल्लंघन करके दृष्टि नहीं रक्खें ॥६॥

देवों का पदस्थान—

पट्टाधो यक्षभूताद्याः पट्टाग्रे सर्वदेवताः ।
तदग्रे वैष्णवं ब्रह्मा मध्ये लिङ्गं शिवस्य च ॥७॥

इति प्रतिमाप्रमाणदृष्टिपदस्थानम् ।

गर्भगृह के स्तंभ के ऊपर जो पाट रखा जाता है, उसके नीचे यक्ष, भूत और नाग आदि को स्थापित करें। तथा दूसरे सब देव पाट के आगे स्थापित करें। उसके आगे वैष्णव और ब्रह्मा को और गर्भगृह के मध्य (ब्रह्मभाग) में शिवलिंग को स्थापित करें ॥७॥

वत्थुसार पयरण ३ के मत से पदस्थान—

"गब्भगिहड्ढपणंसा जक्खा पढमंसि देवया बीए ।
जिणकिण्हरवी तइए बंभु चउत्थे सिवं पणगे ॥"

गर्भगृह के बराबर दो भाग करें, उनमें से दीवार के तरफ के भाग के पांच भाग करें, उनमें दीवार वाले प्रथम भाग में यक्षको, दूसरे भाग में देवियों को, तीसरे भाग में जिनदेव, कृष्ण (विष्णु) और सूर्य को, चौथे भाग में ब्रह्मा को और पांचवें भाग में (गर्भगृह के मध्य भाग में) शिवलिङ्ग को स्थापित करें।

समरांगण सूत्रधार अ० ७० के मत से पदस्थान—

"भवते प्रासादगर्भार्द्धं दशधा पृष्ठभागतः ।
पिशाचरक्षोदनुजाः स्थाप्या गन्धर्वगुह्यकाः ॥
आदित्यचण्डिकाविष्णु-ब्रह्मेशानाः पद क्रमात् ॥"

गर्भगृह के बराबर दो भाग करके दीवार की तरफ के अर्धभाग के दस भाग करें, उनमें से दीवार से प्रथम भाग में पिशाच, दूसरे में राक्षस, तीसरे में दैत्य, चौथे में गंधर्व, पांचवें में यक्ष, छठे में सूर्य, सातवें में चंडिका, आठवें में विष्णु, नवें में ब्रह्मा और दसवें में शिव को स्थापित करें।

अग्निपुराण अ० ६७ के मत से पदस्थान—

"षड्भिर्विभाजिते गर्भे त्यक्त्वा भागं च पृष्ठतः ।
स्थापनं पञ्चमांशे च यदि वा वसुभाजिते ॥
स्थापनं सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहम् ॥"

गर्भगृह का छह भाग करें, उनमें से दीवार के पासका एक भाग छोड़ दें, उसके आगे के पांचवें भाग में सब देवों को स्थापित करें। अथवा गर्भगृह के आठ भाग करके दीवार के पासका एक भाग छोड़ दें, उसके आगे सातवें भाग में सब देवों को स्थापित करना सुखकारक है। *

प्रहार थर—

छाद्यस्योर्ध्वे प्रहारः स्याच्छृङ्गे शृङ्गे तथैव च ।
प्रासादशृङ्गशृङ्गेषु अधोभागे तु छाद्यकम् ॥८॥

छज्जा के ऊपर प्रहार का थर बनावें। प्रत्येक शृङ्ग के नीचे प्रहार का थर बनाना चाहिये। उसके नीचे छाद्य (छज्जा) बनावें ॥८॥

छाद्यके थरमान—

छाद्यं भागद्वयं सार्धं सार्धभागं च पालवम् ।
मुण्डलीकं भागमेकं भागेन तिलकस्तथा ॥९॥ A

छज्जा का उदय दो भाग अथवा डेढ़ (ढाई ?) भाग, पालव डेढ़ भाग, मुंडलिक एक भाग और तिलक एक भाग रखना चाहिये ॥९॥

शृंगक्रम—

मूलकर्णे रथादौ च एकद्वित्रिक्रमान् न्यसेत् ।
निरन्धारे मूलभित्तौ सान्धारे भ्रमभित्तिषु ॥१०॥

---

*विशेष माहिती के लिये स्वयं द्वारा अनुवादित 'देवतामूर्ति प्रकरण' और 'रूपमण्डन' देखना चाहिये।
A यह श्लोक बहुतसी प्रतों में नहीं है।

मूलकर्ण (कोना), रथ, उपरथ आदि प्रासाद के अंग हैं, उनके ऊपर एक, दो अथवा तीन शृङ्ग अनुक्रम से चढावें। निरंधार (प्रकाश वाला) प्रासाद की मुख्य दीवार पर और सांधार (परिक्रमा वाला) प्रासाद हो तो परिक्रमा की दीवार पर शृङ्गों का क्रम रक्खें ॥१०॥

उरःशृंग का क्रम——

उरुशृङ्गाणि भद्रेषु-रेकादिनवसंख्यया ।
त्रयोदशोर्ध्वे सप्तांशो लुप्तानि चोरुशृङ्गकैः ॥११॥

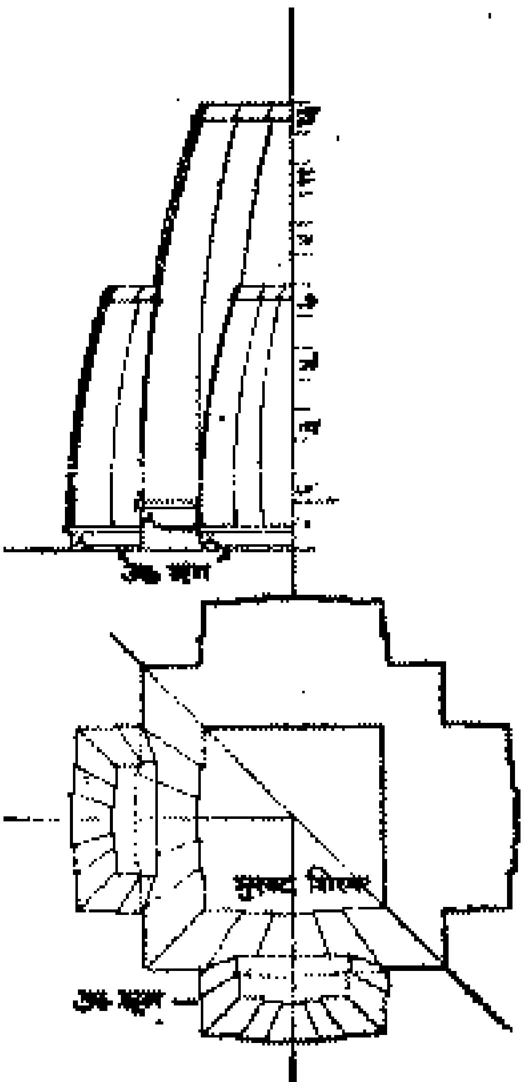

उरुशृंगकी रचना

प्रासाद के भद्र के ऊपर एक से नव तक उरःशृङ्ग चढ़ाये जाते हैं। शिखर के उदय का तेरह भाग करके उनमें से सात भाग के माप का उरःशृङ्ग बनावें। दूसरा उरःशृङ्ग प्रथम के उरःशृङ्ग का तेरह भाग करके उनमें से सात भाग का बनावें। इस प्रकार ऊपर के उरःशृङ्ग का तेरह भाग करके सात भाग के उदय में नीचे का उरःशृङ्ग रक्खें ॥११॥

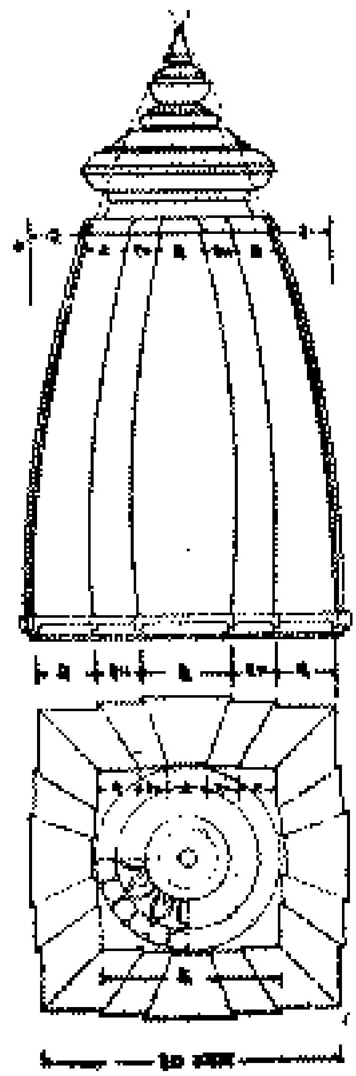

शिखरका निर्माण

शिखर निर्माण——

रेखामूले च दिग्भागं कुर्यादग्रे षडंशकम् ।
षड्बाह्ये दोषदं प्रोक्तं पञ्चमध्ये न शोभनम् ॥१२॥

शिखर के नीचे के दोनों कोने के विस्तार का दस भाग करें। उनमें से शिखर के ऊपर के स्कंध का विस्तार छह भाग रखें। इस स्कंध का विस्तार छह भाग से अधिक रक्खें तो

शिखर दोष कारक होता है और पांच भाग से कम रक्खें तो शिखर शोभायमान नहीं होता ॥१२॥

ज्ञानरत्नकोष में लीखा है कि—

"चतुरस्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रतिभाजिते ।
द्वौ द्वौ भागौ तु कर्त्तव्यौ कोणे कोणे न संशयः ॥
भद्रं भागत्रयं कार्यं सार्धभागं तु चानुगम् ।
व्यासमानं सपादं च उच्छ्रयेण तु कारयेत् ॥
स्कन्धं षड्भागिकं कार्यं तस्योर्ध्वं नवधा भवेत् ।
चतुर्भागायतं कोणं त्रिभिर्भागैस्तु चानुगम् ॥
भद्रपूर्णं तु द्विभिर्भागै-स्ततस्तु साधयेत् कलाम् ॥"

प्रासाद के समचोरस क्षेत्र का दस भाग करें। उनमें से दो दो भाग के दो कोण, तीन भाग का भद्र और डेढ़ २ भाग के दो प्रतिकर्ण बनावें। शिखर विस्तार से ऊंचाई में सवाया रक्खें और उसका स्कंध छह भाग विस्तार में रक्खें। इसका नव भाग करके चार भाग के दोनों कोण, तीन भाग के दोनों प्रतिकर्ण और पूरा भद्र दो भाग का रक्खें। पीछे रेखा बनावें।

कलारेखा की साधना—

"आदिकोणं द्विधा कृत्य
प्रथमं वेदभाजितम् ॥
द्वितीयं तु त्रिभिर्भागै-रेवं
सप्तकला भवेत् ।
उदयं द्व्यष्टभिर्भागैः कृत्वा
रेखां समालिखेत् ॥
ऊर्ध्वतिर्यग् भागानां भागे
भागे तु लाञ्छयेत् ।
एवं तु सिध्यते रेखा भद्रे
कोणे तथानुगे ॥"

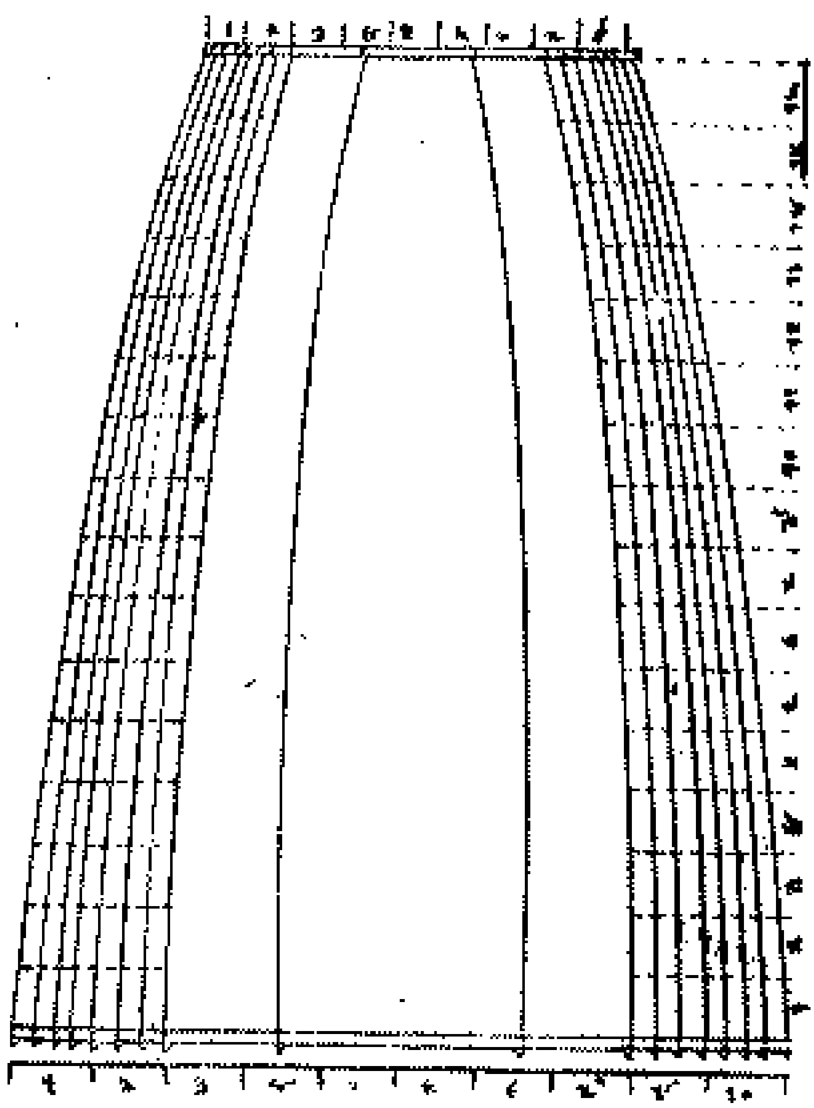

२५६ रेखा का नकशा

एक तरफ के कोण का दो भाग करें। उनमें से प्रथम भाग का चार और दूसरे भाग का

तीन भाग करने से सात कला रेखा होती हैं। इसी तरह दूसरी तरफ के कोण की भी सात कला रेखा होती हैं। ऐसी कुल चौदह कला रेखाओं में दोनों प्रतिकर्ण की दो कला रेखा मिलाने से सोलह कला रेखा होती हैं। इसके उदय में सोलह २ भाग करने से दोसौ छप्पन कला रेखायें होती हैं।

उदयभेदोद्भवरेखा—

सपादं शिखरं कार्यं सकर्णं शिखरोदयम्।
सपादकर्णयोर्मध्ये रेखाः स्युः पञ्चविंशतिः ॥१३॥

मूलरेखा के विस्तार से शिखर का उदय सवाया करें। सवाया शिखर में दोनों कोने के मध्य में पचीस रेखायें हैं ॥१३॥

सपादकर्णयोर्मध्ये[1] उदये पञ्चविंशतिः।
प्रोक्ता रेखाः कलाभेदै-र्नमने पञ्चविंशतिः ॥१४॥

सवाया उदय वाले शिखर के दोनों कोने के मध्य में पचीस रेखा उदय में होती हैं। कला के भेद से ये शिखर के नमन में पचीस रेखायें हैं ॥१४॥

कलाभेदोद्भव रेखा—

पञ्चादिनन्दयुग्मान्तं खण्डानि तेष्वनुक्रमात्।
अंशवृद्ध्या कलाः कार्या दैर्घ्ये स्कन्धे च तत्समाः ॥१५॥

शिखर के उदय का पांच से लेकर उनतीस खंड करें। उन खंडों में अनुक्रम से एक २ कला उदय में बढ़ावें। जैसे-प्रथम पांच खंडों में एक से पांच कला, छट्ठे में छह और सातवें में सात, इस प्रकार उनतीसवें खंड में उनतीस कला हैं। उदय में जितनी कला होवे, उतनी कला संख्या स्कंध में भी बनाना चाहिये ॥१५॥

अष्टाद्यष्टषष्ट्यन्तं चतुर्वृद्ध्या च षोडश।
दैर्घ्यतुल्याः कलाः स्कन्धे एकहीनांशोऽशोभनम् ॥१६॥

प्रथम समचार की त्रिकखंडों में आठ २ कला रेखा हैं। पीछे आगे के प्रत्येक खंड में चार २ कला बढ़ाने से अठारहवें खंड में अड़सठ कला रेखा होती हैं। उदय में जितनी कला रेखा हो, उतनी स्कंध में भी बनावें। एक भी कम रक्खें तो शोभायमान नहीं लगता ॥१६॥

(१) पुनरुक्ति मालूम होता है।

रेखाचक्र—

ऊर्ध्वा अष्टादशांशाः स्यु-स्तिर्यक्षोडश एव च ।
चक्रेऽस्मिंश्च भवन्त्येव रेखाणां षट्शतद्वयम् ॥१७॥

शिखर के उदय में अठारह और तिरछी सोलह रेखा होती हैं, ऐसा चक्र बनाने से दोसौ छप्पन रेखायें होती हैं, उपर 'कला रेखा की साधना' पढ़ें ॥१७॥

प्रथम समचार की त्रिखंडा कलारेखा—

त्रिखण्डात् खण्डवृद्धिश्च यावदष्टादशैव हि ।
एकैकांशे कलाष्टौ च समचारस्तु षोडश ॥१८॥

त्रिखंड से लेकर एक २ खंड बढ़ाते हुए अठारह खंड तक बढ़ावें । प्रथम प्रत्येक त्रिखंड में समचार की आठ २ कला रेखायें हैं । ऐसे सोलह चार हैं ॥१८॥

दूसरा सपादचार की त्रिखंडा कलारेखा—

द्वितीयप्रथमे खण्डे कलाष्टौ द्वितीये नव ।
तृतीये दशखण्डेषु शेषेषूर्ध्वेष्वयं क्रमः ॥१६॥

दूसरा सपादचार हो तो प्रथम खंड में आठ, दूसरे खंड में नव और तीसरे खंड में दस कला रेखा बनावें । इस प्रकार बाकी के चारों में भी इसी क्रम रेखा बनावें ॥१६॥

तीसरा सार्द्धचार की त्रिखंडा कलारेखा—

अष्टदिक्सूर्यभागैश्च त्रिखण्डा तृतीया भवेत् ।
अनेन क्रमयोगेन कोष्ठानङ्कैः प्रपूरयेत् ॥२०॥

तीसरा सार्धचार हो तो प्रथम खंड में आठ, दूसरे खंड में दस और तीसरे खंड में बारह कलारेखा बनावें । इस क्रम से दूसरे चारों के कोठे को अंकों से पूर्ण करें ॥२०॥

सोलह प्रकार के चार—

'समः सपादः सार्द्धश्च पादोनो द्विगुणस्तथा ।
द्विगुणश्च सपादो द्वौ सार्धः पादोनकस्त्रयः ॥'

---

* श्लोक १८ से २० तक का खुलासा चार आशय समझने के लिये देखो चार के भेदों से त्रिखंडा की रेखा और कला जानने का यंत्र ।

त्रिखंडा की रेखा और कला—

नम्बर	भार के नाम	रेखा का नाम	प्रथम खंडकी कला	द्वितीय खंडकी कला	तृतीय खंडकी कला	कला की कुल संख्या
१	समभार ८×१=८	शशिनी	८	८	८	२४
२	सपादभार ८×१।=१०	शीतला	८	९	१०	२७
३	सार्धभार ८×१॥=१२	सौम्या	८	१०	१२	३०
४	पादोनद्वयभार ८×१।॥=१४	शान्ता	८	११	१४	३३
५	द्विगुणभार ८×२=१६	मनोरमा	८	१२	१६	३६
६	सपाद द्विगुणभार ८×२।=१८	शुभा	८	१३	१८	३९
७	सार्धद्विगुणभार ८×२॥=२०	सांगिका	८	१४	२०	४२
८	पादोनत्रयभार ८×२।॥=२२	वीरा	८	१५	२२	४५
९	त्रिगुणभार ८×३=२४	कुमुदा	८	१६	२४	४८
१०	सपाद त्रिगुणभार ८×३।=२६	पद्मशेखरा	८	१७	२६	५१
११	सार्द्ध त्रिगुणभार ८×३॥=२८	ललिता	८	१८	२८	५४
१२	पादोन चतुष्क ८×३।॥=३०	लीलावती	८	१९	३०	५७
१३	चतुर्गुणभार ८×४=३२	त्रिदशा	८	२०	३२	६०
१४	सपाद चतुष्कभार ८×४।=३४	पूर्णमण्डला	८	२१	३४	६३
१५	सार्धचतुष्कभार ८×४॥=३६	पूर्णभद्रा	८	२२	३६	६६
१६	पादोन पंचकभार ८×४।॥=३८	महाक्षी	८	२३	३८	६९

इस प्रकार चतुःखंडादिकी कला रेखाएं चार के भेदों से समझना चाहिये।

त्रिगुणोऽथ सपादोऽसौ सार्धः पादोनवेदकः ।
चतुर्गुणः सपादोऽसौ सार्धः पादोनपञ्चकः ॥
इति षोडशधा चारं त्रिखण्डाद्यासु लक्षयेत् ॥" अप० सू० १३६

त्रिखंडादि खंडों में सोलह कलाचारों के भेदों से सोलह २ रेखायें उत्पन्न होती हैं। ये सोलह कलाचार इस प्रकार हैं—प्रथम सम (बराबर) चार, दूसरा सपाद (सवाया) चार, तीसरा सार्द्ध (डेढ़ा) चार, चौथा पौने दो गुणा, पांचवां दो गुणा, छट्ठा सवा दो गुणा, सातवां ढाईगुणा, आठवां पौने तीनगुणा, नवां तीनगुणा, दसवां सवा तीनगुणा, ग्यारहवां साढ़े तीनगुणा, बारहवां पौने चार गुणा, तेरहवां चार गुणा, चौदहवां सवा चार गुणा, पंद्रहवां साढे चार गुणा, और सोलहवां पौने पांच गुणा है।

रेखासंख्या—

रेखाणां जायते संख्या षट्पञ्चाशच्छतद्वयम् ।
दैर्घ्ये भवन्ति यावन्त्यः कलाः स्कन्धेऽपि तत्समाः ॥२१॥

इति रेखानिर्णयः ।

सोलह प्रकार के कलाचारों के भेदों से प्रत्येक त्रिखंडादि में सोलह २ रेखायें उत्पन्न होती हैं। इसलिये रेखाओं की कुल संख्या दोसौ छप्पन होती है। शिखर के उदय में जितनी कलारेखा उत्पन्न हो, उतनी स्कंध में भी बनानी चाहिये ॥२१॥

मंडोवर और शिखर का उदयमान—

विंशद्भिर्विभजेद् भागैः शिलातः कलशान्तकम् ।
मण्डोवरोऽष्टसार्धाष्ट-नवांशैः शिखरं[1] परम् ॥२२॥

खरशिला से लेकर कलश के अंत भाग तक के उदय के बीस भाग करें। उनमें से आठ, साढ़े आठ अथवा नव भाग का मंडोवर का उदय रक्खें, इसी क्रम से ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ मान के मंडोवर का उदय होता है। ऐसा अप० सू० १३८ में भी कहा है। बाकी जो भाग रहे, उतने उदय का शिखर बनावें ॥२२॥

शिखर विधान—

रेखामूलस्य विस्तारात्[2] पञ्चकोणं समालिखेत् ।
चतुर्गुणेन सूत्रेण सपादः शिखरोदयः ॥२३॥

(१) 'शिखरोदयम्'। (२) 'विस्तारे'।

मूलरेखा के विस्तार से चार गुणा सूत्र से दोनों कोने के मूल बिंदु से दो गोल बनावें। जिसके दोनों गोल के स्पर्श से कमल की पंखुड़ी जैसी आकृति वाला पद्मकोश बन जाता है। उसमें दोनों कोने के रेखा विस्तार से सवाया शिखर का उदय रक्खें ।।२३।।*

ग्रीवा, आमलसार और कलशका मान—

स्कन्धकोशान्तरे सप्त-भक्ते ग्रीवा तु भागतः ।
सार्धं आमलसारस्य पद्मच्छत्रं[3] तु सार्धकम् ।।२४।।
त्रिभाग उच्चकलशो द्विभागस्तस्य विस्तरः ।
प्रासादस्याष्टमांशेन पृथुत्वं कलशाण्डकम् ।।२५।।

ऊपर के लिखे अनुसार सवाया शिखर का उदय करने के बाद जो पद्मकोश का उदय बाकी रहता है, उसमें ग्रीवा, आमलसार और कलश बनावें। जैसे—शिखर के स्कंध से लेकर पद्मकोश के अन्त्य बिन्दु तक के उदय का सात भाग करें। उनमें से एक भाग को ग्रीवा, डेढ़ भाग का आमलसार, डेढ़ भाग का पद्मच्छत्र (चंद्रिका) और तीन भाग का कलश बनावें। द्विभाग के विस्तार वाले कलश का बीजोरा बनावें। कलश के अंडा का विस्तार प्रासाद के आठवें भाग का रक्खें ।।२४-२५।।

शुकनासका उदय—

छाद्यतः स्कन्धपर्यन्त-मेकविंशतिभाजिते ।
अङ्कदिग्रुद्रसूर्यांशे-विश्वांशैस्तस्य चोच्छ्रितिः ।।२६।।

छज्जा से लेकर शिखर के स्कंध तक के उदय का इक्कीस भाग करें। इनमें से नव, दस, ग्यारह, बारह अथवा तेरह भाग तक शुकनास का उदय रक्खें ।।२६।।

सिंहस्थान—

शुकनासस्य संस्थाने छाद्यो पञ्चधा मतम् ।
एकत्रिपञ्चसप्ताङ्क-सिंहस्थानानि कल्पयेत् ।।२७।।

---

(३) 'पद्म' ।

* शिल्पियों की मान्यता है कि—मूलकर्ण (पायचा) से शिखर का उदय सवाया करना हो तो पायचे के विस्तार से चार गुना सूत्र से, डेढ़ा करना हो तो पांच गुना सूत्र से, पौने दुगुना करना हो तो पौने सात गुना सूत्र से और १ १/३ उदय करना हो तो साढ़े चार गुना सूत्र से मूलकर्ण के दोनों बिन्दु से दो गोल बनाने से कमल के पखुड़ी जैसा आकार बन जाता है। इसमें अपने इष्ट मान के उदय में शिखर का स्कंध और बाकी रहे उदय में आमलसार और कलश आदि बनावें ।

छज्जा के ऊपर शुकनास का उदय पांच प्रकार का माना है। उनमें से शुकनास के उदय का जो मान आया हो उसका नव भाग करें। इनमें से एक, तीन, पांच, सात अथवा नव, इन पांच भागों में से किसी भी भाग में सिंह स्थान की कल्पना कर सकते हैं। अर्थात् उस स्थान पर सिंह रखा जाता है ।।२७।।

***कपिली (कोली) का स्थान—**

द्वारस्य दक्षिणे वामे कपिली षड्विधा मता ।
तदूर्ध्वे शुकनासा स्यात् सैव प्रासादनासिका ।।२८।।

गर्भगृह के द्वार के ऊपर दाहिनी और बांयी ओर छह प्रकार से कोली बनावें। उसकी ऊंचाई में शुकनास बनावें, यह प्रासाद की नासिका है ।।२८।।

कपिली का मान—

प्रासादो दशभागश्च द्वित्रिवेदांशसम्मिताः ।
प्रासादार्धेन पादेन त्रिभागेनाथ निर्मिता ।।२९।।

प्रासाद के विस्तार का दस भाग करें, उनमें से दो, तीन अथवा चार भाग की, तथा प्रासाद के मान से आधे, चौथे अथवा तीसरे भाग के मान की, ऐसे छह प्रकार के मान से कपिली (कोली) बनाने का विधान है ।।२९।।

छह प्रकार की कपिली—

"अञ्चिता कुञ्चिता शस्या त्रिधोदितक्रमागताः ।
मध्यस्था भ्रमा सभ्रमा षट्कोल्यः परिकीर्तिताः ।।
प्रासादे दशधा भक्ते भूमिसीमा विचक्षण ! ।
अञ्चिता च द्विभागा स्यात् त्रिभागा कुञ्चिता तथा ।।
शस्या चैवं चतुर्भागा त्रिधा चोक्तक्रमागताः ।
... . ।।
प्रासादपादमध्यस्था भ्रमा सत्रिभागतः ।
अर्द्धे तु सभ्रमा कार्या प्रासादस्य प्रमाणतः ।।" अप० सू० १२८

* गर्भगृह के द्वार के मंडप को कोली मंडप कहते हैं। उसके छज्जा के ऊपर शुकनास के दोनों तरफ शिखर के आकार का मंडप किया जाता है, उसको आधुनिक शिल्पीयों प्रासादपुत्र कहते हैं। उसका नाम कपिली अथवा कोली है।

अंचिता, कुञ्चिता, शस्या, मध्यस्था, भ्रमा और सभ्रमा ये छह प्रकार के कोली के नाम हैं। प्रासाद के विस्तार का दस भाग करके, उनमें से दो भाग की कोली बनावें, उसका नाम अंचिता, तीन भाग वाली कोली का नाम कुञ्चिता और चार भाग वाली कोली का नाम शस्या है। तथा प्रासाद के विस्तार मान के चौथे भाग की कोली बनावें, उसका नाम मध्यस्था, तीसरे भाग वाली कोली का नाम भ्रमा और आधे भाग वाली कोली का नाम सभ्रमा है।

प्रासाद के अंडक और आभूषण—

> शृङ्गोरुशृङ्गप्रत्यङ्गं गणयेदण्डकानि(१) च।
> तवङ्गं तिलकं कर्णं कुर्यात् प्रासादभूषणम् ॥३०॥

शिखर, उरुशृङ्ग, प्रत्यंग और शृङ्ग, ये प्रासाद के अंडक माने जाते हैं, ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं। तथा तवग, तिलक और सिंहकर्ण ये प्रासाद के आभूषण माने जाते हैं ॥३०॥

शिखर के नमन का विभाग—

> दशांशे शिखरे मूले अग्रेतननवांशके।
> सार्द्धांशकौ रथौ कर्णौ द्वौ शेषं भद्रमिष्यते ॥३१॥

शिखर के मूल में दस भाग और ऊपर स्कंध के नव भाग करें, उनमें से डेढ़ २ भाग के दो प्रतिरथ और दो दो भाग के दोनों कोने बनावें। बाकी जो तीन भाग नीचे और दो भाग ऊपर बचे हैं, उस मानका भद्र बनावें ॥३१॥

आमलसार का मान—

> रथयोरुभयोर्मध्ये वृत्तमामलसारकम्।
> उच्छ्रयो विस्तरार्धेन चतुर्भागैर्विभाजयेत् ॥३२॥
> ग्रीवा चामलसारश्च पादोना च सपादकः।
> चन्द्रिका भागमानेन भागेनामलसारिका ॥३३॥

दोनों प्रतिरथ के मध्य विस्तार के मान का गोल आमलसार बनाना चाहिये। इसकी ऊंचाई विस्तार से आधी रक्खें। ऊंचाई का चार भाग करें। उनमें से पौने भाग की ग्रीवा (गला), सवा भाग का आमलसार, एक भाग की चन्द्रिका और एक भाग की आमलसारिका बनावें ॥३२-३३॥

(१) 'अण्डकान् गणयेत् सुधीः'।

प्रकारान्तर से आमलसार का मान---

"स्कन्धः षड्भागको ज्ञेयः सप्तांशामलसारकः ।
क्षेत्रमष्टविंशत्यंशैरुच्छ्रये [illegible] ॥
ग्रीवा भागत्रयं कार्या अण्डकः पञ्चभागकः ।
त्रिभागा चन्द्रिका चैव तथैवामलसारिका ॥
निर्गमे षट्सार्धभागो भवेदामलसारिका ।
चन्द्रिका द्विसार्धभागा अण्डकः पञ्च एव च ॥" ज्ञान प्र० दी० अ० ६

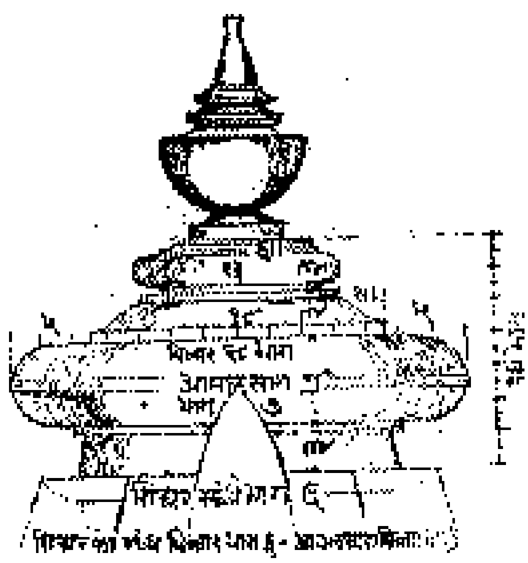

क्षीरार्णवमते आमलसारक मान

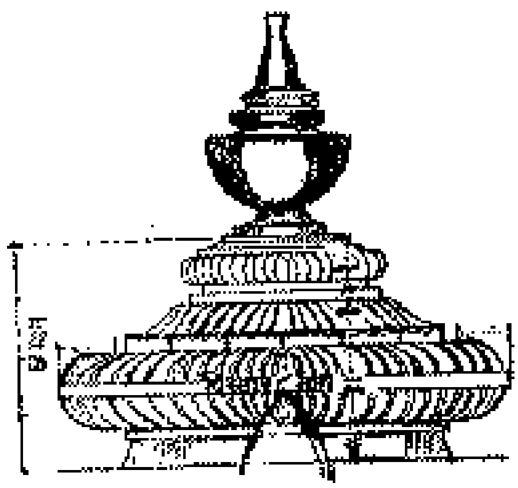

स्वमते आमलसारका मान

स्कंध का विस्तार छह भाग और आमलसार का विस्तार सात भाग रक्खें। आमलसार के विस्तार का अठाईस भाग और ऊंचाई का चौदह भाग करें। उदय में तीन भाग का गला, पांच भाग का अंडक, तीन भाग की चन्द्रिका और तीन भाग की आमलसारिका रक्खें। आमलसार के मध्य गर्भ से विस्तार में साढे छह भाग निकलती आमलसारिका, इससे ढाई भाग निकलती चंद्रिका और इससे पांच भाग निकलता अंडक (आमलसार) रखना चाहिये।

आमलसारके नीचे शिखरके कोणरूप--

"शिवे तु चेश्वरं रूपं ध्यानमग्नं विचक्षण ! ।
शिखरकर्णे दातव्यं जिने कुर्याज्जिनेश्वरः ॥" क्षीरार्णवे।

शिखर के आमलसार के नीचे और स्कंध के कोने के ऊपर शिवालय हो तो ध्यान में मग्न ऐसे शिव के रूप तथा जिनालय हो तो जिनदेव के रूप रखे जाते हैं।

सुवर्णपुरुष (प्रासाद पुरुष) का स्थापनक्रम—

घृतपात्रं न्यसेन्मध्ये ताम्रतारं सुवर्णजम् ।
सौवर्णपुरुषं तत्र तुलीपर्यङ्कशायिनम् ॥३४॥

आमलसार के गर्भ में घी से भरा हुआ सोना, चांदी अथवा तांबे का कलश सुवर्णपुरुष के पास रखना चाहिये।* तथा चांदी अथवा चंदन का पलंग रक्खें, उसके ऊपर रेशम की शय्या बिछा करके, उस पर सुवर्णपुरुष को शयन करावें। यह विधि शुभ दिन में वास्तु पूजन करके करनी चाहिये। क्योंकि यह प्रासाद का मर्मस्थान (जीवस्थान) है ॥३४॥

सुवर्ण पुरुष का मान और उसकी रचना—

प्रमाणं पुरुषस्यार्धा-ङ्गुलं कुर्यात् करं प्रति ।
त्रिपताकं करे वामे हृदिस्थं दक्षिणाम्बुजम्[1] ॥३५॥

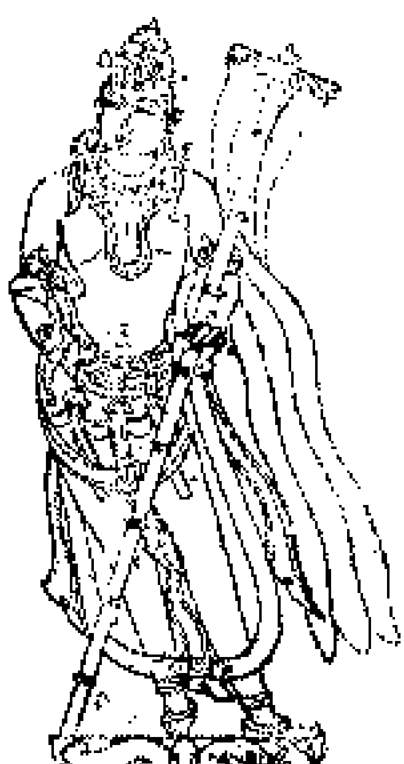
कनक पुरुष

प्रासाद पुरुष का प्रमाण प्रासाद के विस्तार के अनुसार प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके बनावें। अर्थात् एक हाथ के प्रासाद में आधा अंगुल, दो हाथ के प्रासाद में एक अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में डेढ़ अंगुल और चार हाथ के प्रासाद में दो अंगुल, इस प्रकार प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके बनावें। इस सुवर्णपुरुष के बांये हाथ में ध्वजा रखकर के वह छाती पर और दाहिना हाथ कमलयुक्त रक्खें ॥३५॥

अपराजितपृच्छासूत्र १५३ में कहा है कि—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य प्रवेशनम् ।
न्यसेद् देवालयेऽवेवं जीवस्थानफलं भवेत् ॥
छादनोपप्रवेशेषु शृङ्गमध्येऽथवोपरि ।
शुकनासावसानेषु वेद्यूर्ध्वे भूमिकान्तरे ॥
मध्यगर्भे विधातव्यो हृदयवर्णको विधिः ।
हंसतुलीं ततो कुर्यात् ताम्रपर्यङ्कसंस्थिताम् ॥

---

* कुछ शिल्पियों का मत है कि—घीसे भरा हुआ सोना, चांदी अथवा तांबा के कलश में सुवर्ण पुरुष को रखकर के, वह कलश पलंग पर रखें।

(१) 'दक्षिणं करम्'।

शयनं चापि निर्दिष्टं पद्मं वै दक्षिणे करे ।
ध्वजाकं करे वामे कारयेद्धृदि संस्थितम् ॥"

यह सुवर्णपुरुष देवालय का जीवस्थान है, इसलिये उसको देवालय में स्थापना करने का स्थान कहता हूँ—यह ध्वजा के प्रवेश में, शिखर के मध्य भाग में अथवा उसके ऊपर, शुकनास के अन्तिम स्थान में, वेदी के ऊपर और दो माल के मध्य गर्भ में स्थापन करना चाहिये। यह हृदयवर्णक (जीव) विधि है। इसको तांबे के पलंग के ऊपर रेशम की शय्या बिछा कर, उसके ऊपर शयन कराना चाहिये। उसके दाहिने हाथ में कमल और बांये हाथ में ध्वजा रखकर यह हाथ छाती के ऊपर रखना चाहिये।

प्रमाणं तस्य वक्ष्यामि प्रासादादौ समस्तके ।
यावच्छतार्धं हस्तादेः कल्पयेच्च यथाक्रमम् ॥
वृद्धिरर्धाङ्गुलाद्धस्ते यावन्मेरुं प्रकल्पयेत् ।
एवंविधं प्रकर्त्तव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥
हेमजं तारजं चापि ताम्रजं चापि भागशः ।
कलशे चाम्बुपूर्णे तु सौवर्णं पुरुषं न्यसेत् ॥
पर्यङ्कस्य चतुःपत्सु कुम्भाश्चत्वार एव च ।
हिरण्यनिधिसंयुक्ता आत्ममुद्राभिरङ्किताः ॥
एवमारोपयेद् देवं यथोक्तं वास्तुशासने ।
तस्य नैव भवेद् दुःखं यावदाभूत सम्प्लवम् ॥"

अब सुवर्ण पुरुष का प्रमाण कहता हूँ—एक हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद के लिये प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके बनावें। यह सोना, चांदी अथवा तांबा का बनाकर जलपूर्ण कलश में स्थापन करें। पीछे उसको पलंग के ऊपर रक्खें। इसके पश्चात् अपने नाम वाली सुवर्णमुद्रा से भरे हुए चार कलश पलंग के चारों पायों के पास रक्खें। इस प्रकार सुवर्णपुरुष को स्थापित करने से जब तक जगत विद्यमान रहे, तब तक किसी प्रकार का दुःख देवालय बंधाने वाले को नहीं होता है।

कलश की उत्पत्ति और स्थापना—

क्षीरार्णवे समुत्पन्नं प्रासादस्याग्रजातकम् ।
माङ्गल्येषु च सर्वेषु कलशं स्थापयेद् बुधः ॥३६॥

जब देवों ने क्षीरसमुद्र का मंथन किया, तब उसमें से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे। इन चौदह रत्नों में एक काम कुम्भ नाम का श्रेष्ठ कलश भी प्राप्त हुआ था। यह प्रासाद के अग्र

भाग (शिखर) पर और सब मांगलिक स्थानों में विद्वान् लोग स्थापित करते हैं ॥३६॥

कलश का उदयमान—

पूर्वोक्तमानतो ज्येष्ठः षोडशांशाधिको भवेत् ।
द्वात्रिंशदंशतो[1] मध्यो नवांशोऽभ्युदयं भवेत् ॥३७॥
ग्रीवापीठं भवेद् भागं त्रिभागेनाण्डकं तथा ।
कर्णिके भागतुल्ये च त्रिभागं बीजपूरकम् ॥३८॥

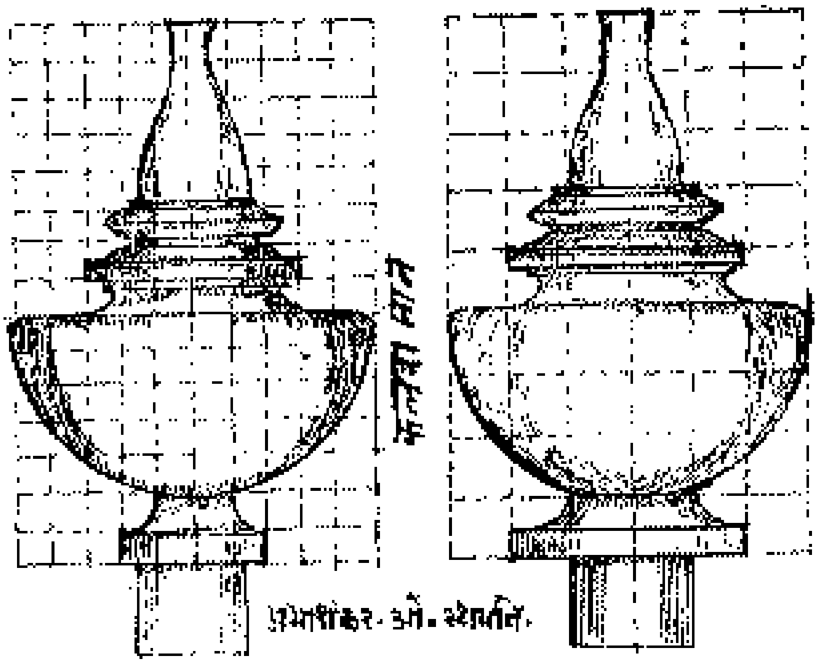

पूर्वोक्त श्लोक २५ में कलश का जो मान लिखा है, उसका मान में उसका सोलहवां भाग बढ़ावें तो ज्येष्ठ मान का और बत्तीसवां भाग बढ़ावें तो मध्यम मान के कलश का उदय होता है। जो उदय आवे उसका नव भाग करें, उन में से एक भाग की ग्रीवा और पीठ, तीन भाग का अंडक (कलश का पेट), दोनों कर्णिका (एक छज्जी और एक कणी) एक २ भाग और तीन भाग का बीजोरा उदय में रक्खें ॥३७–३८॥

कलश का विस्तार मान—

एकांशमग्रे द्वौ मूले वह्निवेदांशकर्णिके ।
ग्रीवा द्वौ पीठमर्द्धं[1] द्वौ षड्भागं विस्तराण्डकम् ॥३९॥

इति कलशः ।

बीजोरा के अग्र भाग का विस्तार एक भाग और मूल भाग का विस्तार दो भाग, ऊपर की कणी का विस्तार तीन भाग, नीचे की कणी (छाजली) का विस्तार चार भाग, गला का विस्तार दो भाग, आधी पीठ का विस्तार दो भाग (पूरी पीठ का विस्तार चार भाग) और कलश के पेटका विस्तार छह भाग है ॥३९॥

१ 'तावदंशोन: कनीयो'

ध्वजादंड रखने का स्थान—

प्रासादपृष्ठदेशे तु दक्षिणे तु प्रतिरथे ।
ध्वजाधारस्तु कर्त्तव्य ईशाने नैऋतेऽथवा ॥४०॥

इति प्रासादस्योर्ध्वलक्षणम् ।

प्रासाद के शिखर के पिछले भाग में दाहिने प्रतिरथ में ध्वजादंड रखने का छिद्रवाला स्थान ध्वजाधार (कलावा) बनावें। यह पूर्वाभिमुख प्रासाद के ईशान कोने में और पश्चिमाभिमुख प्रासाद के नैऋत्य कोने में बनावें ॥४०॥

ध्वजाधार (स्तंभवेध) का स्थान--

"रेखायाः षष्ठमे भागे तदंशे पादवर्जिते ।
ध्वजाधारस्तु कर्त्तव्यः प्रतिरथे च दक्षिणे ॥"

ज्ञान प्र० दी० अ० ६

शिखर की रेखा के उदय का छह भाग करें। उनमें ऊपर के छठे भाग का फिर चार भाग करें, इनमें से नीचे का एक भाग छोड़ कर, इसके ऊपर के भाग में दाहिने प्रतिरथ में ध्वजाधार बनावें अर्थात् रेखा का चौबीस भाग करके ऊपर के बाईसवें भाग में ध्वजाधार बनावें।

अपराजित के मत से स्तंभवेध का स्थान—

"रेखाधः (र्धश्च?) त्रिभागोर्ध्वे सूत्रांशे (तदंशे) पादवर्जिते ।
ध्वजोत्क्षिप्तिस्तु कर्त्तव्या ईशाने नैऋतेऽथवा ॥
प्रासादपृष्ठदेशे तु प्रतिरथे च दक्षिणे ।
स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्तेरष्टमांश के (भित्यादचष्ठमांशके)॥" सूत्र १४४

शिखर की रेखा (कोण) के ऊपर के अर्ध भाग का तीन भाग करें। ऊपर के तीसरे भाग का फिर चार भाग करके नीचे से एक भाग छोड़ करके उसके ऊपर के भाग में स्तंभवेध बनावें। यह ईशान अथवा नैऋत कोण में प्रासाद के पिछले भाग में दाहिने प्रतिरथ में दीवार के छट्ठे भाग के मान जितना मोटा बनावें।

ध्वजाधार की मोटाई और स्तंभिका—

"स्तम्भवेधस्तु कर्त्तव्यो भित्याश्च षष्ठमांशकः ।
घण्टोदयप्रमाणेन स्तम्भिकोदयः कारयेत् ॥
धामहस्ताङ्गुलविस्तार—स्तस्योर्ध्वे कलशो भवेत् ॥" ज्ञान प्र० दी० अ० ६

दीवार के छठे भाग का मोटा स्तंभवेध (ध्वजाधार) बनावें। ध्वजादंड को मजबूत स्थिर रखने के लिये बगल में एक स्तंभिका रखी जाती है। उसका उदय स्तंभवेध से आमलसार का उदय तक रक्खें। उसकी मोटाई प्रासाद के मान से हस्तांगुल (जितने हाथ हो उतने अंगुल) रक्खें और उसके ऊपर कलश रक्खें। ध्वजादंड और स्तंभिका इन दोनों का अच्छी तरह वज्रबंध करें।

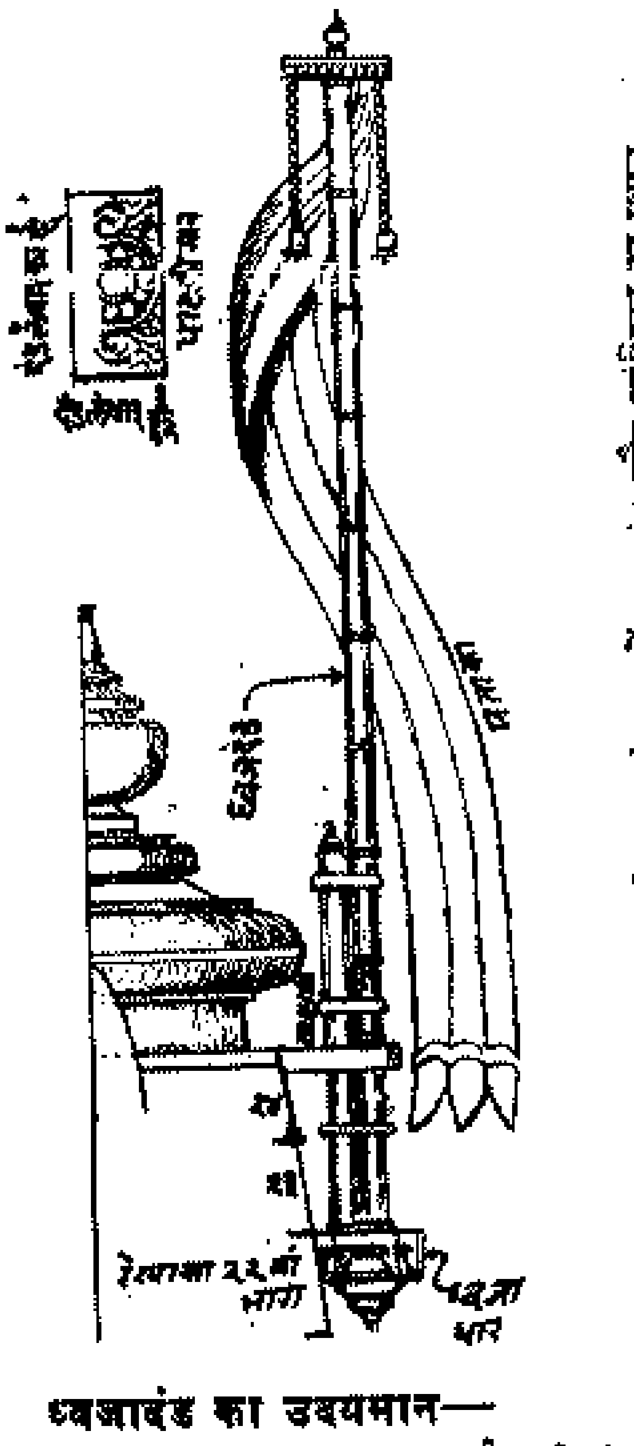

शिखर का २४ भाग करके २१ वां भाग में ध्वजदंड और स्तंभिका का स्थान—

शिखर का छठ्ठ भाग करके ऊपर के छठ्ठे भाग के तीसरे भाग में ध्वजदंड का स्थान—

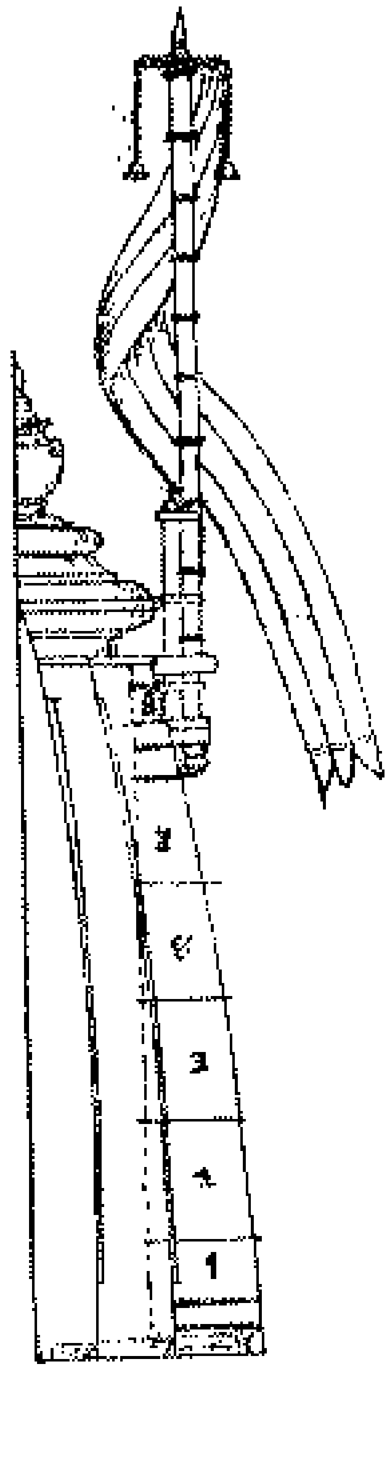

ध्वजादंड का उदयमान—

दण्डः कार्यस्तृतीयांशः शिलातः[1] कलशान्तकम् ।
मध्योऽष्टांशेन हीनोऽसौ ज्येष्ठपादोनः कन्यसः ॥४१॥

१. 'शिलान्त:'

प्रासाद की खरशिला से लेकर कलश के अग्रभाग तक के उदय का तीन भाग करके, इनमें से एक भाग के मान का लंबा ध्वजादंड बनावें। यह ज्येष्ठमान का है। इसमें से आठवां भाग कम करने से मध्यम मान का और चौथा भाग कम करने से कनिष्ठ मान का ध्वजादंड होता है ॥४१॥

ध्वजादंड का दूसरा उदयमान—

प्रासादव्यासमानेन[२] दण्डो ज्येष्ठः प्रकीर्त्तितः ।
मध्यो हीनो दशांशेन पञ्चमांशेन कन्यसः ॥४२॥

प्रासाद के विस्तार के बराबर ध्वजादंड की लंबाई रक्खें, यह ज्येष्ठ मान का ध्वजादंड है *। इसमें से दसवां भाग कम करें तो मध्यम मान का और पांचवां भाग कम करें तो कनिष्ठ मान का ध्वजादंड होता है ॥४२॥*

ध्वजादंड का तीसरा उदयमान—

"मूलरेखाप्रमाणेन ज्येष्ठः स्याद् दण्डसम्भवः ।
मध्यमो द्वादशांशोनः षडंशोनः कनिष्ठकः ॥" अप० सू० १४४

मूलरेखा (गर्भगृह अथवा शिखर के नीचे के पायचा के विस्तार जितना) के विस्तार मान का लंबा ध्वजादंड बनावें, यह ज्येष्ठ मान का है। उसमें से बारहवां भाग कम करें तो मध्यम और छठा भाग कम करेतो कनिष्ठ मान का ध्वजादंड होता है।
विवेक विलास के प्रथम सर्ग के श्लोक १७९ में स्पष्ट लिखा है कि—

"दण्डः प्रकाशे प्रासादे प्रासादकरसंख्यया ।
सान्धकारे पुनः कार्यो मध्यप्रासादमानतः ॥"

प्रकाश वाले (बिना परिक्रमा वाले) प्रासाद का ध्वजादंड प्रासाद के मान का बनावें, अर्थात् प्रासाद का जितना विस्तार हो उतना लंबा ध्वजादंड बनावें। अंधकार वाले (परिक्रमा वाले) प्रासाद का ध्वजादंड मध्य प्रासाद के मान का बनावें। अर्थात् परिक्रमा और उसकी दीवार को छोड़कर के गभारे के दोनों दीवार तक के मान का बनावें।

ध्वजादंड का विस्तारमान—

एकहस्ते तु प्रासादे दण्डः पादोनमङ्गुलम् ।
कुर्यादर्धाङ्गुला वृद्धि–र्यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥४३॥

---

२. 'पृष्ठ'। *यह मत प्रचार में अधिक है।

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के ध्वजादंड का विस्तार पौन अंगुल का रक्खें। पीछे पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा २ अंगुल बढ़ा करके रक्खें ॥४३॥

ध्वजादंड की रचना—

सुवृत्तः सारदारुश्च ग्रन्थिकोटरवर्जितः ।
पर्वभिर्विषमैः कार्यः समग्रन्थिः सुखावहः ॥४४॥

ध्वजादंड बहुत अच्छा और किसी प्रकार की गांठ या पोलाण आदि दोषों से रहित, तथा मजबूत काष्ठ का सुन्दर एवं गोलाकार बनावें। दंड में पर्व (विभाग) विषम संख्या में और ग्रन्थि (कांडी) समसंख्या में रखना सुखदायक है ॥४४॥

विषमपर्व वाले ध्वजादंड के तेरह नाम—

"जयन्तस्त्वेकपर्वश्च त्रिपर्वः शत्रुमर्दनः ।
पिङ्गलः पञ्चपर्वश्च सप्तपर्वश्च सम्भवः ॥
श्रीमुखो नवपर्वश्च आनन्दो रुद्रपर्वकः ।
त्रिदेवो विश्वपर्वश्च तिथिभिर्दिव्यशेखरः ॥
मुनीन्दुभिः कालदण्डो महोत्कटो नवेन्दुतः ।
सूर्याख्यस्त्वेकविंशत्या कमलो वह्निनेत्रतः ॥
तत्त्वपर्वो विश्वकर्मा दण्डनामानि पर्वतः ।
शस्ताशस्तत्वमेतेषामभिधानगुणोद्भवम् ॥" अप० सू० १४४

एक पर्व वाला जयंत, तीन पर्ववाला शत्रुमर्दन, पांच पर्व का पिंगल, सात पर्व का संभव, नव पर्व का श्रीमुख, ग्यारह पर्व का आनंद, तेरह पर्व का त्रिदेव, पंद्रह पर्व का दिव्यशेखर, सत्रह पर्व का कालदंड, उन्नीस पर्व का महाउत्कट, इक्कीस पर्व का सूर्य, तेवीस पर्व का कमल और पच्चीस पर्व का विश्वकर्मा कहलाता है। ये तेरह प्रकार के दंड के नाम पर्व के अनुसार हैं और नाम के अनुसार शुभाशुभ फल देने वाले हैं।

ध्वजादण्ड की मर्कटी (पाटली)—

दण्डदीर्घषडंशेन मर्कट्यर्धेन विस्तृता ।
अर्द्धचन्द्राकृतिः पार्श्वे घण्टोर्ध्वे कलशस्तथा ॥४५॥

ध्वजादंड की लंबाई के छट्ठे भाग की मर्कटी (पाटली) की लंबाई रक्खें। लंबाई से आधी विस्तार में रक्खें। (विस्तार के तीसरे भाग की मोटाई रक्खें।) पाटली का सम्मुख

भाग अर्द्धचन्द्र के आकार वाला बनावें। इसके कोने में घंटडीयां लगावें और ऊपर कलश रक्खें ॥४५॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १४४ में कहा है कि—

"मण्डूकी तस्य कर्त्तव्या अर्धचन्द्राकृतिस्तथा।
पृथुदण्डसप्तगुणा हस्तादिपञ्चकावधि ॥
षड्गुणा च द्वादशान्तं शेषाः पञ्चगुणास्तथा।
तथा त्रिभागविस्ताराः कर्त्तव्याः सर्वकामदाः ॥
अर्धचन्द्राकृतिश्चैव पक्षे कुर्याद् गगारकम्।
दण्डोर्ध्वे कलशं चैव पक्षे घण्टाप्रलम्बनम् ॥"

ध्वजादंड की पाटली अर्धचंद्र के आकार की बनावें। वह एक से पांच हाथ तक के लंबे ध्वजादंड के विस्तार से सातगुणी, छह से बारह हाथ तक के लम्बे ध्वजादंड के विस्तार से छगुणी और तेरह से पचास हाथ तक के ध्वजादंड के विस्तार से पांचगुणी पाटली लम्बाई में रक्खें। लम्बाई का तीसरा भाग विस्तार में रक्खें। यह सब इच्छितफल को देनेवाली है। अर्धचंद्राकृति के दोनों तरफ गगारक बनावें। दंड के ऊपर कलश रक्खें और पाटली के दोनों बगल में लम्बी घंटडीयां लगाना चाहिये।

ध्वजा का मान—

ध्वजा दण्डप्रमाणेन दैर्घ्येऽष्टांशेन विस्तरे।
नानावर्णैर्विचित्राद्यै-स्त्रिपञ्चाग्रशिखोत्तमा ॥४६॥

ध्वजादंड के लंबाई के मान की ध्वजा की लंबाई रक्खें और लम्बाई से आठवें भाग की चौड़ाई रक्खें। यह अनेक वर्ण के वस्त्रों की बनावें और अग्रभाग में तीन अथवा पांच शिखायें बनावें ॥४६॥

ध्वजा का महात्म्य—

पुरे च नगरे कोट्टे रथे राजगृहे तथा।
वापीकूपतडागेषु ध्वजाः कार्याः सुशोभनाः ॥४७॥

पुर, नगर, किला, रथ, राजमहल, बावडी, कूआ और तालाब आदि स्थानो के ऊपर सुन्दर ध्वजा रखनी चाहिये ॥४७॥

निष्पन्नं शिखरं दृष्ट्वा ध्वजहीने सुरालये।
असुरा वासमिच्छन्ति ध्वजहीनं न कारयेत् ॥४८॥

तैयार हुए प्रासाद के शिखर को ध्वजा रहित देखकर असुर (राक्षस) उसमें रहने की इच्छा करते हैं। इसलिये देवालय ध्वजा रहित नहीं रखना चाहिये ॥४८॥

ध्वजोच्छ्रायेण तुष्यन्ति देवाश्च पितरस्तथा ।
दशाश्वमेधिकं पुण्यं सर्वतीर्थधरादिकम् ॥४९॥

देवालय के ऊपर ध्वजा चढ़ाने से देव और पितर संतुष्ट होते हैं। तथा दशाश्वमेध यज्ञ करने से और समस्त भूतल की तीर्थयात्रा करने से जो पुण्य होता है, वही पुण्य प्रासाद के ऊपर ध्वजा चढ़ाने से होता है ॥४९॥

पञ्चाशत् पूर्वतः पश्चाद्-आत्मानं च तथाधिकम् ।
शतमेकोत्तरं सोऽपि तारयेन्नरकार्णवात् ॥५०॥

इति ध्वजलक्षणं पुण्याधिकारः ।

इति श्री सूत्रधारमण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे प्रतिमा-
प्रमाणदृष्टिपदस्थानशिखरध्वजाकलशलक्षणाधिकारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

ध्वजा चढ़ानेवाले के वंश की पहले की पचास और पीछे की पचास, तथा एक अपनी इस तरह कुल एकसौ एक पीढी के पूर्वजों को नरकरूपी समुद्र से यह ध्वजा तिरा देती है अर्थात् उद्धार करती है ॥५०॥

इति श्री पंडित भगवानदास जैन विरचित प्रासादमण्डन ग्रन्थ के चौथा-
अध्ययन की सुबोधिनी नाम्नी भाषाटीका समाप्ता ॥४॥

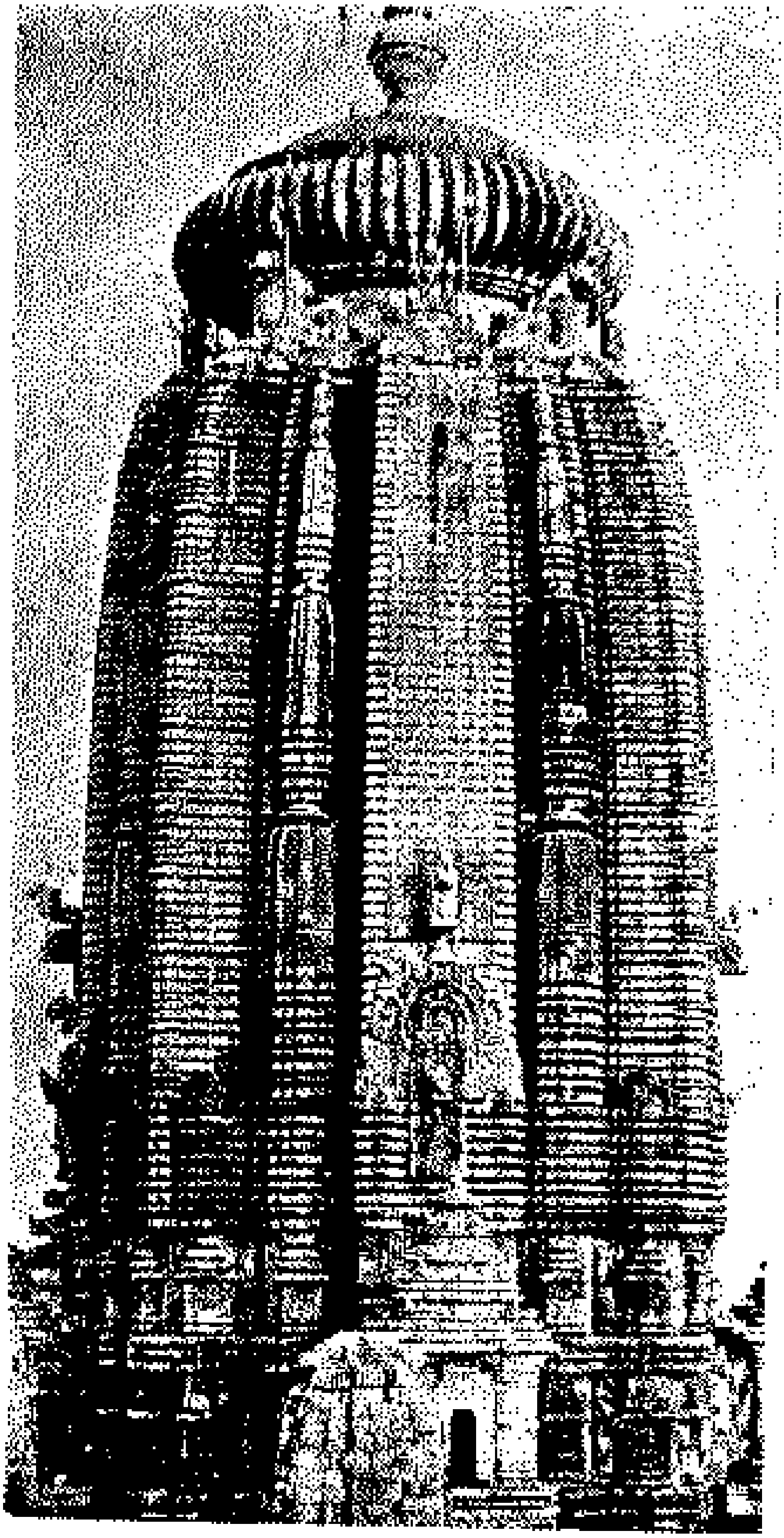

ओरीसा जगन्नाथपुरी का वैराज्यादि जाति का
एकाण्डिक शिखर

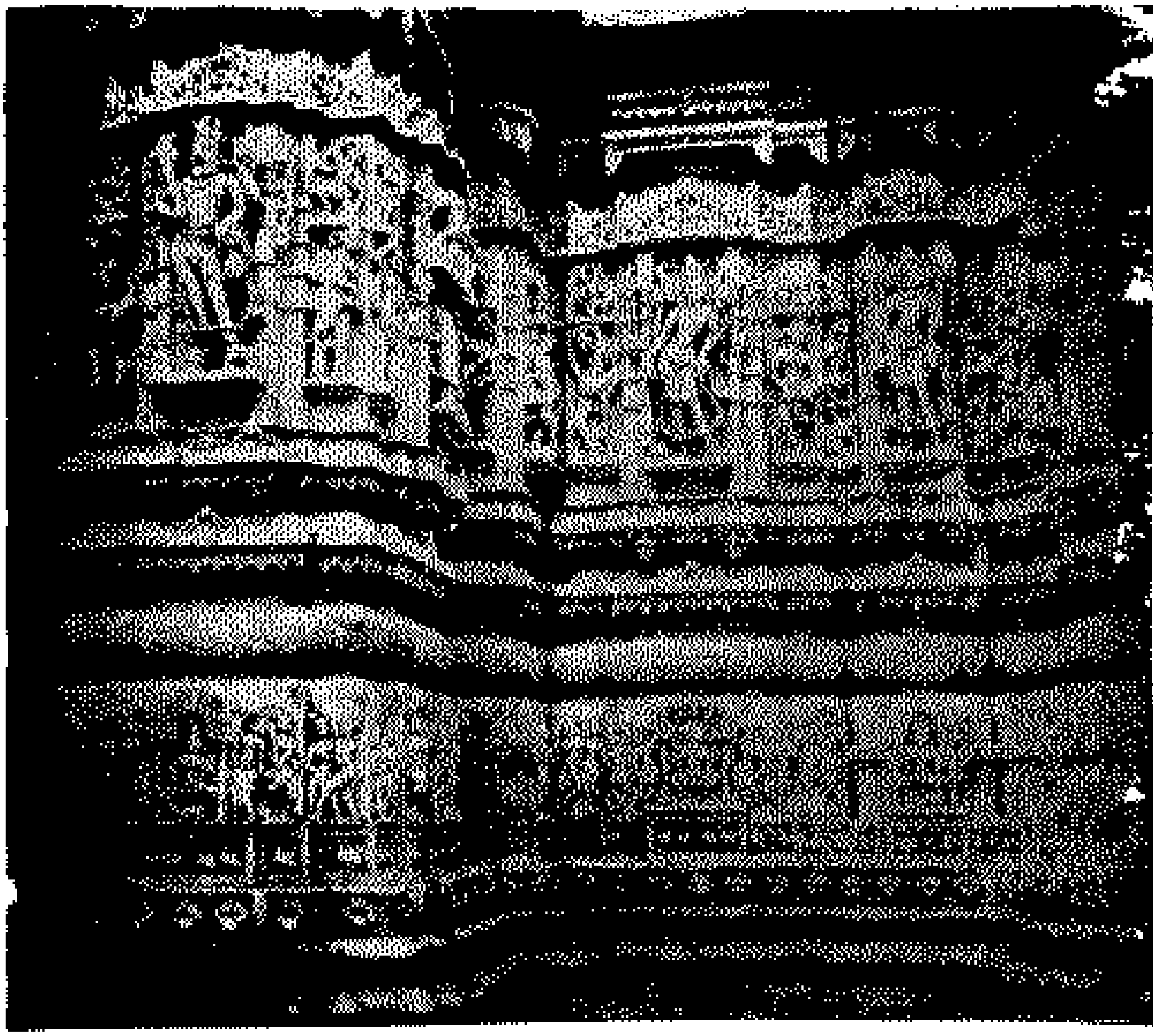

नागर जाति के प्रासाद का कलामय मंडोवर (दीवार)

अथ प्रासादमण्डने पञ्चमोऽध्यायः

मंगल—

नानाविधमिदं विश्वं विचित्रं येन सूत्रितम् ।
सूत्रधारः श्रेयसेऽस्तु[1] सर्वेषां पालनक्षमः ॥१॥

जिसने अनेक प्रकार का यह विचित्र जगत बनाया है, वही सूत्रधार (विश्वकर्मा) सबका पालन करने में समर्थ हैं। और वही सबके कल्याण के लिये हों ॥१॥

ग्रंथ मान्यता की याचना—

न्यूनाधिकं प्रसिद्धं च यत् किञ्चिन्मण्डनोदितम् ।
विश्वकर्मप्रसादेन शिल्पिभिर्मान्यतां वचः ॥२॥

जगत में जो कुछ मंडन सूत्रधार का न्यूनाधिक रूप से कहा हुआ शिल्पशास्त्र प्रसिद्ध है, वह विश्वकर्मा की कृपा से शिल्पियों से मान्य हो ॥२॥

वैराज्यप्रासाद—

चतुर्भागं समारभ्य यावद्द्वयोत्तरं शतम् ।
भागसंख्येति विख्याता फालना कर्णबाह्यतः ॥३॥

चार भाग से लेकर एकसौ बारह भाग तक के वैराज्यादि प्रासाद होते हैं। तथा उनकी फालनाएँ कोने से बाहर निकलती होती हैं। ॥३॥

फालना के भेद—

अष्टोत्तरशतं भेदा अंशवृद्ध्या भवन्ति ते ।
समांशैर्विषमैः कार्या-नन्तभेदैश्च फालना ॥४॥

एक २ अंशकी वृद्धि से फालना का एक सौ आठ भेद होते हैं। एवं समांश और विषमांश के भेदों से फालना के अनन्त भेद भी होते हैं ॥४॥

एकस्यापि तलस्योर्ध्वे शिखराणि बहुन्यपि ।
नामानि जातयस्तेषा-मूर्ध्वमार्गानुसारतः ॥५॥

एक ही तल के ऊपर बहुत प्रकार के शिखर बनाये जाते हैं और उन शिखरों के निर्माण

---

1. 'स एव स्यात्' ।

से ही प्रासादों के नाम और उसकी जाति, ये दोनों उत्पन्न होते हैं ॥५॥

भ्रमणी (परिक्रमा)—

दशहस्तादधो न स्यात् प्रासादो भ्रमसंयुतः ।
नवाष्टदशभागेन भ्रमो भित्तिर्विधीयते ॥६॥

दस हाथ से न्यून प्रासाद को भ्रमणी (परिक्रमा) नहीं किया जाता, किन्तु दस हाथ से अधिक विस्तार वाले प्रासाद को भ्रमणी करना चाहिये । भ्रमणी और दीवार प्रासाद के आठ नव अथवा दसवें भाग की रखना चाहिये ॥६॥

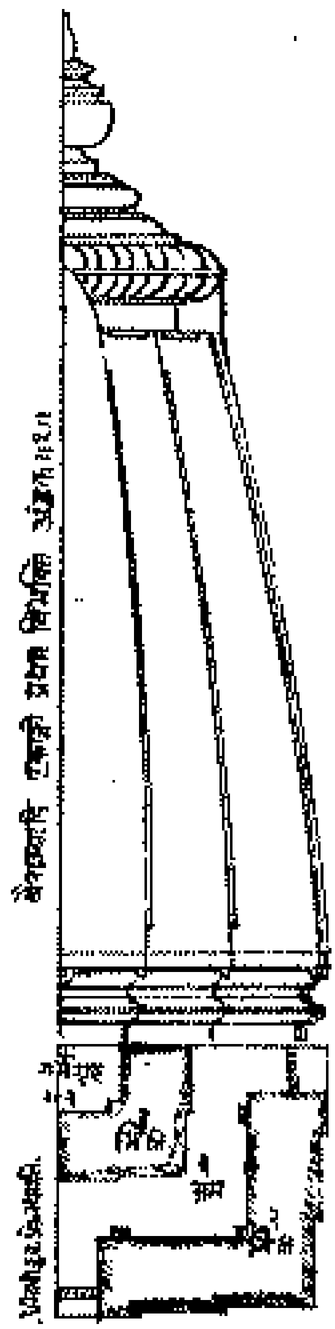

१—वैराज्य प्रासाद—

वैराज्यश्चतुरस्रः स्याच्चतुर्द्वारे चतुष्किका ।
प्रासादो ब्रह्मणः प्रोक्तो निर्मितो विश्वकर्मणा ॥७॥

प्रथम वैराज्य प्रासाद समचोरस और चार द्वार वाला है। प्रत्येक द्वार चोकी मंडप वाला बनावें । यह प्रासाद ब्रह्माजी ने कहा है और विश्वकर्मा ने निर्माण किया है ॥७॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १५५ में कहा है कि—

"चतुरस्रीकृते क्षेत्रे तथा षोडशभाजिते ।
तस्य मध्ये चतुर्भागै-र्गर्भं सूत्रेण कारयेत् ॥
द्वादशस्वथ शेषेषु बाह्ये भित्तिः प्रकल्पयेत् ॥"

वैराज्य प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग कर के उन में से चार भाग का मध्य गर्भगृह बनावें और बाकी बारह भाग में दो २ भाग की दीवार और दो भागकी भ्रमणी बनावें ।

सपादं शिखरं कार्यं घण्टाकलशभूषितम् ।
चतुर्भिः शुकनासैस्तु सिंहकर्णैर्विराजितम् ॥८॥

इसके शिखर का उदय विस्तार से सवाया बनावें । तथा आमलसार और कलश से सोभायमान करें । एवं चारों ही दिशा में शुकनाश तथा सिंहकर्ण आदि से शिखर को शोभायमान बनावें ॥८॥

दिशा के द्वार का नियम—

एकद्वारं भवेत् पूर्वे द्विद्वारं पूर्वपश्चिमे ।
त्रिद्वारं मध्यजं द्वारं दक्षिणास्यं विवर्जयेत् ॥९॥

प्रासाद का यदि एक द्वार रखना हो तो पूर्वदिशा में ही रक्खें। दो द्वार रखना हो तो पूर्व पश्चिम दिशामें रक्खें। तीन द्वार रखना हो तो दो द्वार के बीच में मुख्य द्वार रक्खें। परन्तु दक्षिणाभिमुख वाला मुख्य द्वार नहीं रखना चाहिये। ऐसा द्वार नहीं बनावें जिसमे प्रवेश में उत्तर मुख रहे ॥९॥

चतुर्द्वारं चतुर्दिक्षु शिवब्रह्मजिनालये ।
होमशालायां [१]कर्त्तव्यं क्वचिद् राजगृहे तथा ॥१०॥

शिव, ब्रह्मा और जिनदेव, इनके प्रासादों में चारों ही दिशाओं में द्वार रक्खें जाते हैं। एवं होमशाला और कभी राजमहल में भी चारों दिशाओं में द्वार रक्खें जाते हैं ॥१०॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १५७ में त्रिद्वारके विषय में विशेषरूप से लिखते हैं कि—

"पूर्वोत्तरयाम्ये चैव पूर्वापरोत्तरे तथा ।
याम्यापरोत्तरे शस्तं त्रिद्वारं त्रिविधं स्मृतम् ॥"

पूर्व उत्तर और दक्षिण; पूर्व पश्चिम और उत्तर तथा दक्षिण पश्चिम और उत्तर, इस प्रकार तीन प्रकार के त्रिद्वार प्रशस्त हैं।

"पूर्वापरे स्याद् द्विद्वारं दूषयेच्च याम्योत्तरे ।
एकद्वारं च माहेन्द्र्यां चतुर्द्वारं चतुर्दिशम् ॥" अप० सू० १५७

प्रासाद में दो द्वार बनाना हो तो पूर्व और पश्चिम दिशा में बनावें। परन्तु उत्तर और दक्षिण दिशा में नहीं बनावें, क्योंकि यह दोष कर्त्ता है। यदि एक ही द्वार बनाना हो तो पूर्व दिशा में ही बनावें और चार द्वार बनाना हो तो चारों दिशा में बनावें।

"पूर्वे च भक्तिदं द्वारं मुक्तिदं वरुणोद्भवम् ।
याम्योत्तरे शिवे द्वारे कृते दोषो महद्भयम् ॥" अप० सू० १५७

पूर्वदिशा का द्वार भक्ति देनेवाला है और पश्चिम दिशा का द्वार मुक्ति को देनेवाला है। शिव प्रासाद में यदि उत्तर और दक्षिण दिशा में द्वार किया जाय तो बड़ा दोष और भय करने वाला है।

---

१. 'होमशाला चतुर्द्वारा' पाठान्तरे ।

"एकद्वारं च माहेन्द्र्या-मन्यथा दोषदं भवेत् ।

भद्रं सर्वत्र कल्याणं चतुर्द्वारं शिवालये ॥" अप० सू० १५७

शिवालय में एक द्वार रखना हो तो पूर्व दिशा में ही रक्खें और अन्य दिशा में रक्खें तो दोष देने वाला है। परन्तु चारों दिशा में चार द्वार बनावें तो कल्याण कारक है।

"ब्रह्मविष्णुरवीणां च कुर्यात् पूर्वोक्तमेव हि ।

समोसरणे च जैनेन्द्रे दिशादोषो न विद्यते ॥" अप० सू० १५७

ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य, इन प्रासादों में ऊपर कहे अनुसार द्वार बनावें। जिनदेव के समवसरण प्रासादों में दिशा का दोष नहीं है। चाहे जिस दिशा में द्वार बना सकते हैं।

वैराज्यादिसमुत्पन्नाः प्रासादा ब्रह्मोदिताः[1] ।

एक-त्रि-पञ्चसप्ताङ्क-संख्याङ्गैः पञ्चविंशतिः ॥११॥

इति वैराज्यप्रासादः ।

वैराज्यादि जो पचीस प्रासाद हैं, वे ब्रह्माजी ने बताये हैं। वे एक, तीन, पांच, सात और नव अंगों के भेदवाले हैं।

जैसे–वैराज्यप्रासाद एक अंग फक्त कोना वाला है। नंदन, सिंह और श्रीनन्दन, ये तीन प्रासाद तीन अंग (दो कोना और भद्र) वाले हैं। मंदर, मलय, विमान, सुविशाल और त्रैलोक्यभूषण, ये पांच प्रासाद पांच अंग (दो कर्ण, दो प्रतिरथ और भद्र) वाले हैं। माहेन्द्र, रत्नशीर्ष, शतशृंग, भूधर, भुवनमंडन त्रैलोक्यविजय और पृथ्वीवल्लभ, ये सात प्रासाद सात अंग (दो कर्ण, दो प्रतिरथ, दो रथ और भद्र) वाले हैं। महीधर, कैलाश, नवमंगल, गंधमादन, सर्वाङ्गसुन्दर, विजयानन्द, सर्वाङ्गतिलक, महाभोग और मेरु, ये नव प्रासाद नव अंग (दो कर्ण, दो प्रतिकर्ण, दोरथ, दो उपरथ और भद्र) वाले हैं। ऐसा अपराजित पृच्छा सूत्र १५६ में कहा है ॥११॥

२–नन्दन प्रासाद—

चतुर्भक्ते भवेत् कोणो भागो भद्रं द्विभागिकम् ।

भागार्धं निर्गमं भद्रे प्रकुर्यान्मुखभद्रकम् ॥१२॥

शृङ्गमेकं भवेत् कोणे[2] द्वे द्वे भद्रे च नन्दनः ।

इति नंदनः ।

प्रासाद के तल का चार भाग करें। उनमें से एक २ भाग का कोना और दो भाग का भद्र बनावें। भद्र का निर्गम आधा भाग का रक्खें। भद्र में मुखभद्र भी बनावें। कोने के ऊपर

१. 'ब्रह्मणोदिताः' २. 'कर्णे'।

एक २ शृंग और भद्र के ऊपर दो २ उरुशृंग रक्खें। ऐसा नंदन नाम का प्रासाद है ॥१२॥

शृंगसंख्या १२। कोणे ४ भद्रे ८ और एक शिखर।

३—सिंहप्रासाद—

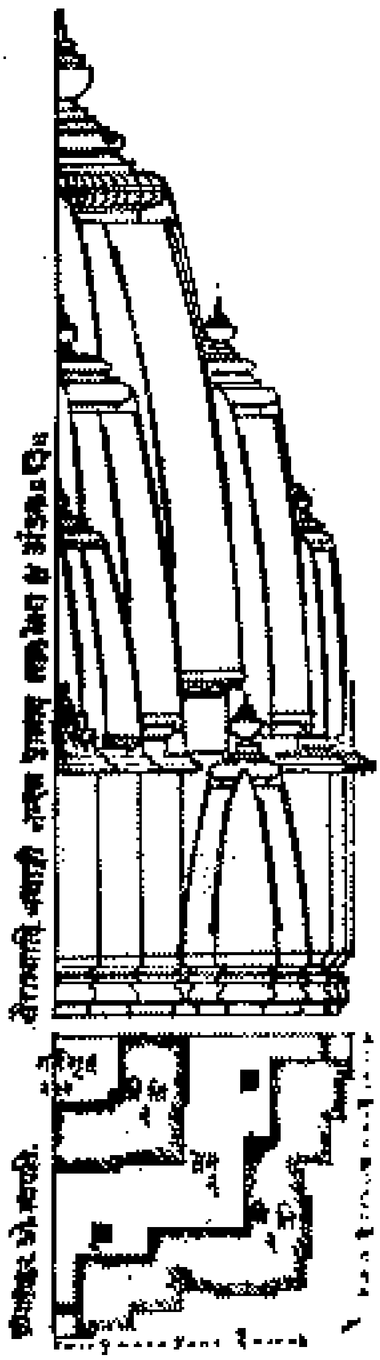

नंदन प्रासाद

मुखभद्रे प्रतिभद्र-मुद्गमो रथिकोपरि ॥१३॥
कर्णशृङ्गे सिंहकर्णः सिंहनामा स उच्यते।
देवतासु[2] प्रकर्तव्यः सिंहस्तत्रैव शाश्वतः ॥१४॥
तुष्यति गिरिजा तस्य सौभाग्यधनपुत्रदा।
रथिका सिंहकर्णश्च भद्रे शृङ्गे च सिंहकः ॥१५॥

इति सिंहः।

तल विभक्ति नन्दन प्रासाद की तरह ही करें। मुखभद्र में प्रतिभद्र बनावें। तथा भद्र के गवाक्ष के ऊपर उद्गम बनावें। कोने के शृंगों के ऊपर सिंह रक्खें। ऐसा सिंह नाम का प्रासाद है। यह देवता (देवीओं) के लिये बनावें। इसमें सिंह शाश्वत रहता है, इसलिये पार्वती देवी खुश होती है और सौभाग्य धन और पुत्र देती है। भद्र की रथिका के ऊपर सिंहकर्ण और शृंगों के ऊपर भी सिंहकर्ण रखने से सिंह नाम का प्रासाद है ॥१३ से १५॥

४—श्रीनन्दन प्रासाद—

कर्णे शृङ्गं तु पञ्चाण्डं स श्रीनन्दन उच्यते।

इति नन्दनः इतिश्यङ्गप्रासादाः।

नन्दन प्रासाद के कोने ऊपर पांच अंडक वाला केसरी शृंग चढ़ावें तो यह श्रीनन्दन नाम का प्रासाद होता है।

शृङ्ग संख्या २६। कोणे केसरी क्रम २०, भद्रे ८, एक शिखर।

५—मंदिर और ६—मलय प्रासाद—

त्र्यङ्गा इत्यर्थः षड्भागी-श्चतुरस्रं विभाजयेत् ॥१६॥
कर्णं प्रतिरथं कुर्याद् भद्रार्धं भागभागिकम्।
समं निर्गमयंशैश्च[3] भद्रं भागार्द्ध निर्गमम् ॥१७॥

२. 'देवानां तु'। ३. 'निर्गममस्माश्च'।

द्वे द्वे कर्णे तथा भद्रे शृङ्गमेकं प्रतिरथे ।
मन्दिरस्तृतीयं भद्रे मलयो भद्रजं त्यजेत् ॥१८॥

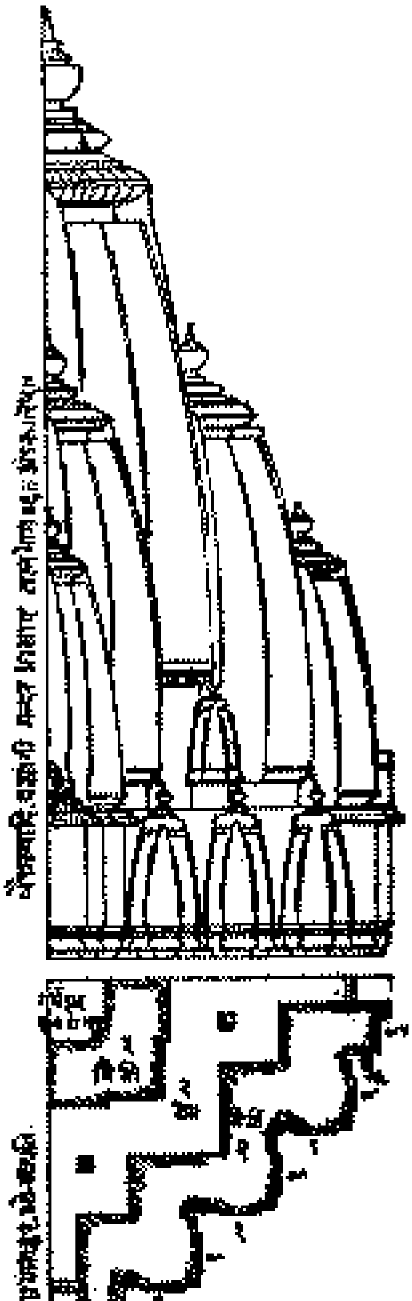

मंदिर प्रसाद

ऊपर तीन अंगवाले प्रासादों का वर्णन कहा गया है। अब पांच अंगवाले प्रासादों का वर्णन करते हैं—समचोरस प्रासाद के तलका छह भाग करें। इनमें कर्ण, प्रतिकर्ण और भद्रार्ध, ये प्रत्येक एक २ भाग का रक्खें। कर्ण और प्रतिकर्ण का निर्गम समदल रक्खें और भद्र का निर्गम आधा भाग रखना चाहिये। कर्ण और भद्र के ऊपर दो दो और प्रतिकर्ण के ऊपर एक २ शृङ्ग चढावें। ऐसा मंदिर नाम का प्रासाद है। इस प्रासाद के भद्र के ऊपर तीसरा एक उरुशृंग चढावें तो मलय नाम का प्रासाद होता है ॥१६ से १८॥

शृंग संख्या २५। कोणे ८, भद्रे ८, प्ररथे ८, एक शिखर।

७–विमान, ८–विशाल और ९ त्रैलोक्यभूषण प्रासाद—

प्रत्यङ्गं तिलकं कुर्यात् प्रतिरथे विमानकः ।
भद्रोरुशृङ्गवैशालः प्रतिरथे सुभूषणः ॥१९॥

इति पञ्चांगाः पंचप्रासादाः ।

ऊपर श्लोक १८ के अंत में 'भद्रजं त्यजेत्' शब्द का यहां अर्थ करें। मलय नाम के प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक उरुशृंग हटा करके कर्ण के दोनों तरफ एक २ प्रत्यंग चढावें और प्रतिरथ के ऊपर एक २ तिलक चढावें, तो इसे विमान नाम का प्रासाद कहा जाता है। विमान प्रासाद के भद्र के ऊपर एक २ उरुशृंग अधिक चढावें, तो विशाल नाम का प्रासाद कहा जाता है, और प्रतिरथ के ऊपर एक २ शृंग अधिक चढावे तो उसे त्रैलोक्यभूषण नामक प्रासाद कहा है ॥१९॥

विमान शृंगसंख्या-कोणे ८, प्ररथे ८, भद्रे ८, प्रत्यंग ८ एक शिखर एवं कुल ३३ शृंग। तिलक संख्या—प्ररथे १–१ कुल ८। त्रैलोक्यभूषण शृंगसंख्या—कोणे ८ प्रतिरथे १६ भद्रे ८, प्रत्यंग ८, एक शिखर एवं ४१ शृंग और तिलक ८। विशाल शृंगसंख्या—भद्रे १२ बाकी पूर्ववत् कुल ३७। तिलक ८ प्ररथे।

१०—माहेन्द्रप्रासाद—

चतुरस्रेऽष्टभिर्भक्ते कर्णं प्रतिरथं रथम् ।
भद्रार्धं भागभागं च भागार्धेन विनिर्गमम् ॥२०॥
वारिमार्गान्तरयुक्ता रथाश्च तुल्यनिर्गमाः ।
शृङ्गयुग्मं च तिलकं कर्णे द्वे तु प्रतिरथे ॥२१॥
एकं चोपरथे भद्रे त्रीणि त्रीणि चतुर्दिशि ।
शिखरं पञ्चविस्तारं माहेन्द्रो राज्यदो नृणाम् ॥२२॥

इति माहेन्द्रः ।

समचोरस तल का आठ भाग करें। इनमें कर्ण, प्रतिरथ, उपरथ और भद्रार्ध, ये प्रत्येक एक २ भाग का रक्खें। भद्र का निर्गम आधा भाग का रक्खें ये सब अंग वारिमार्ग वाले बनावें। कर्ण, प्रतिरथ और उपरथ का निर्गम एक २ भाग रक्खें। कर्ण के ऊपर दो २ शृंग और एक तिलक चढ़ावें, प्रतिरथ के ऊपर दो २ शृंग, उपरथ के ऊपर एक २ शृंग और भद्र के ऊपर तीन २ उरुशृंग चढ़ावें। मूल शिखर का विस्तार पांच भाग रक्खें। ऐसा माहेन्द्र नाम का प्रासाद मनुष्यों को राज्य देनेवाला है ॥२० से २२॥

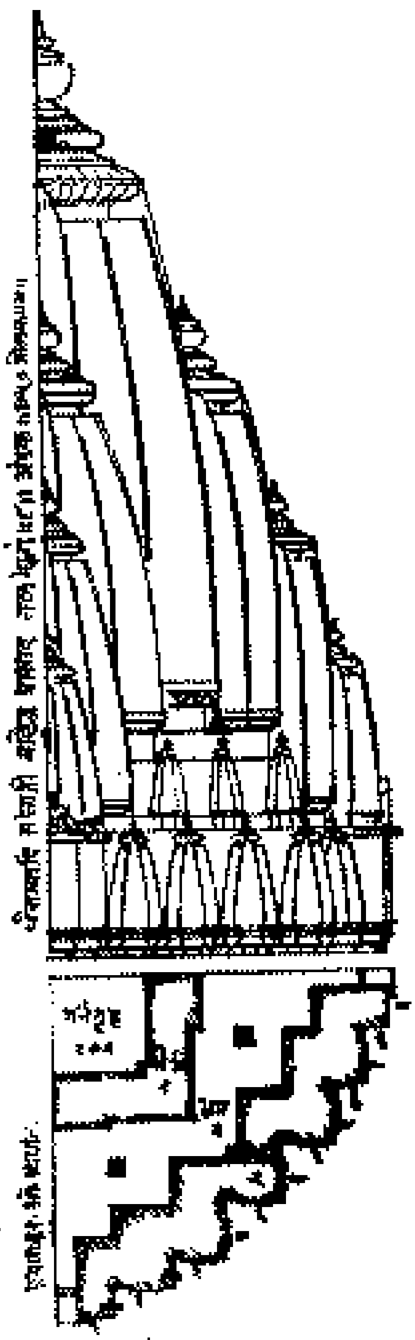

माहेन्द्र प्रासाद

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे १६ उपरथे ८, भद्रे १२ एक शिखर एवं कुल ४५, तिलक, ४ कोणे ।

११—रत्नशीर्ष प्रासाद—

कर्णे शृङ्गत्रयं शेषं पूर्ववद् रत्नशीर्षकः ।

इति रत्नशीर्षः ।

माहेन्द्र प्रासाद के कर्ण के ऊपर यदि तीन शृंग चढ़ाया जाय तो उस प्रासाद का नाम रत्नशीर्ष होता है।

शृंग संख्या—कोणे १२, प्ररथे १६, उपरथे ८ भद्रे १२ एक शिखर, कुल ४९ ।

१२—सितशृंग प्रासाद—

त्यक्त्वैकशृङ्गं भद्रस्य मत्तालम्बं च कारयेत् ॥२३॥

मस्तके तस्य छाद्यस्य शृङ्गयुग्मं प्रदापयेत् ।
सितशृङ्गस्तदा नाम ईश्वरस्य सदा प्रियः ॥२४॥

रत्नशीर्ष प्रासाद के भद्र के तीन उरुशृंगों में से एक कम करके उस स्थान पर मत्तालम्ब (गवाक्ष) बनावें और उसके छाद्य के ऊपर दो शृंग चढ़ावें। ऐसा सितशृंग नाम का प्रासाद ईश्वर को हमेशा प्रिय है ॥२४॥

शृंग संख्या—कोणे १२, प्ररथे १६, उपरथे ८ भद्रे १६ एक शिखर, कुल ५३

१३—भूधर और १४—भुवनमंडन प्रासाद—

तिलकं यद्युपरथे भूधरो नाम नामतः ।
छाद्यशृङ्गे तु तिलकं नाम्ना भुवनमण्डनः ॥२५॥

सितशृंग प्रासाद के उपरथ ऊपर एक २ तिलक चढ़ावें, तो भूधर नाम का प्रासाद होता है और छाद्य के दोनों शृङ्गों के ऊपर एक २ तिलक चढ़ावें तो भुवनमंडन नाम का प्रासाद होता है ॥२५॥

१५—त्रैलोक्यविजय और १६—क्षितिवल्लभ प्रासाद—

शृङ्गद्वयं चोपरथे तिलकं कारयेत् सुधीः ।
त्रैलोक्यविजयो भद्रं शृङ्गेण क्षितिवल्लभः ॥२६॥

इति सप्ताङ्गाः सप्तप्रासादाः ।

यदि उपरथ के ऊपर दो शृंग और एक तिलक किया जाय तो त्रैलोक्यविजय नामका प्रासाद होता है और भद्र के ऊपर एक शृंग अधिक चढ़ाया जाय तो क्षितिवल्लभ नाम का प्रासाद होता है ॥२६॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्ररथे १६ उपरथे १६ भद्रे १२ एक शिखर कुल ५७, तिलक ८.

१७—महीधर प्रासाद—

दशभागकृते क्षेत्रे भद्रार्धं भागमानतः ।
अथः प्रतिरथाः कर्णो भागभागाः समो भवेत् ॥२७॥

कर्णे प्रतिरथे भद्रे द्वे द्वे शृङ्गे प्रकारयेत् ।
रथोपरथे तिलकं प्रत्यङ्गं च रथोपरि ॥२८॥

मत्तालम्बयुतं भद्रं प्रासादोऽयं महीधरः ।

समचोरस प्रासाद के तलका दस भाग करें। उनमें भद्रार्ध, कर्ण प्रतिकर्ण, रथ और उपरथ ये प्रत्येक एक २ भाग का बनावें और इनका निर्गम भी एक २ भाग का रक्खें। भद्र का निर्गम आधे भाग का रक्खें। कोना, प्रतिरथ और भद्र के ऊपर दो २ शृंग तथा रथ और उपरथ के ऊपर एक २ तिलक चढावें। एवं रथ के ऊपर प्रत्यंग चढावें। भद्र मत्तालंब (गवाक्ष) वाला बनावें। ऐसा महीधर नाम का प्रासाद है ॥२७-२८॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे १६, भद्रे ८, प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल ४१। तिलक-रथे ८, उपरथे ८

१८—कैलास प्रासादः—

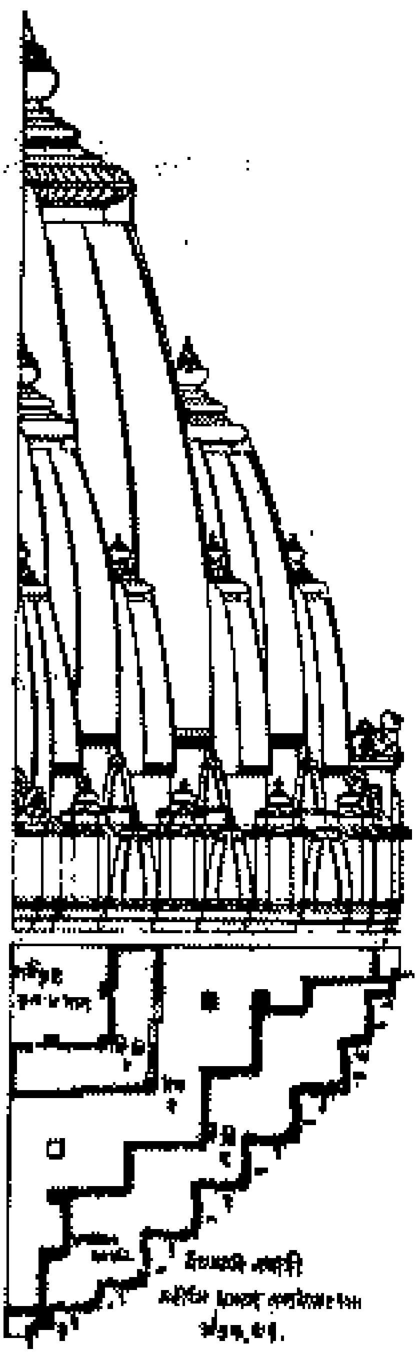

भद्रे शृङ्गं तृतीयं च कैलासः[1] शङ्करप्रियः ॥२९॥

महीधर प्रासाद के भद्र के ऊपर तीसरा एक शृंग अधिक चढावें तो कैलाश नाम का प्रासाद होता है। यह शंकर को प्रिय है ॥२९॥

शृंगसंख्या-कोणे ८, प्ररथे १६, भद्रे १२, प्रत्यंग ८ एक शिखर कुल ४५। तिलक—रथे ८ उपरथे ८

१९—नव मंगल और २०—गंधमादन प्रासाद—

भद्रे त्यक्त्वा रथे शृङ्गं नवमङ्गल उच्यते।
तथा भद्रे पुनर्दद्यात् तदासौ गन्धमादनः ॥३०॥

कैलाश प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक उरुशृंग कम करके रथ के ऊपर एक २ शृंग चढावें तो नवमंगल नामका प्रासाद होता है। यह नवमंगल प्रासाद के भद्र के ऊपर एक उरुशृंग अधिक चढावें तो गंधमादन नाम का प्रासाद होता है ॥३०॥

शृंगसंख्या—४९। कोणे ८, प्ररथे १६, भद्रे ८, रथे ८, प्रत्यंग ८, एक शिखर। तिलक ८ उपरथे

२१—सर्वाङ्गसुन्दर और २२—विजयानन्द प्रासाद—

भद्रे त्यक्त्वा चोपरथे शृङ्गं सर्वाङ्गसुन्दरः।
भद्रे दद्यात् पुनः शृङ्गं विजयानन्द उच्यते ॥३१॥

1. 'नाम नामतः'।

गंधमादन प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक उरःशृंग कम करके उपरथ के ऊपर एक २ शृंग चढ़ावें, तो सर्वांगसुन्दर नाम का प्रासाद होता है। इसके भद्रके ऊपर एक २ उरःशृंग फिर चढ़ावें तो विजयानन्द नामका प्रासाद होता है ॥२१॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे १६, रथे ८, भद्रे ८ उपरथे ८, प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल ५७

२३–सर्वांगतिलक प्रासाद—

मत्तालंबयुतं भद्र–मुरुशृङ्गं परित्यजेत् ।
शृङ्गद्वयं च छाद्योर्ध्वे सर्वांगतिलकस्तथा ॥२२॥

विजयानंद प्रासाद के भद्र के ऊपर से एक २ उरुशृंग कम कर के मत्तालंब (गवाक्ष) बनावें और इस गवाक्ष के छाद्य के ऊपर दो शृंग रक्खें, तो सर्वांग तिलक नाम का प्रासाद होजाता है ॥२२॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे १६ रथे ८ उपरथे ८, प्रत्यंग ८, भद्रे और गवाक्षे १६, एक शिखर कुल ६५ शृंग

२४–महाभोग प्रासाद—

उरुशृङ्गं ततो दद्या–न्मत्तालम्बसमन्वितम् ।
महाभोगस्तदा नाम सर्वकामफलप्रद: ॥२३॥

सर्वांग तिलक प्रासाद के गवाक्ष वाले भद्र के ऊपर एक २ उरुशृंग अधिक चढ़ाने से महाभोग नाम का प्रासाद होता है। यह सब कार्य के फल को देने वाला है ॥२३॥

२५–मेरुप्रासाद—

कर्णे रथे प्रतिरथे शृङ्गमुपरथे तथा ।
मेरुरेव समाख्यात: सर्वदेवेषु पूजित: ॥२४

इति नवाङ्गा नवप्रासादाः ।

कर्ण, रथ, प्रतिरथ और उपरथ इन सबके ऊपर एक २ शृंग अधिक चढ़ावें तो मेरु नामक प्रासाद होता है, यह सब देवों में पूजनीय है ॥२४॥

प्रासादप्रदक्षिणा का फल—

'प्रदक्षिणात्रयं कार्यं मेरुप्रदक्षिणायतम् ।
फलं स्यात्कैलराज्यस्य मेरोः प्रदक्षिणाकृते ॥२५॥

१. 'प्रदक्षिणात्रये स्वर्ण-मेरौ पुण्यं च यत्फलम् ।
दूष्कशैलजे मेरौ तत्फलं प्रदक्षिणाकृते ॥' इति पाठान्तरे ।

सुवर्ण के मेरु पर्वत की तीन प्रदक्षिणा करने से जो फल होता है, उतना फल इस पाषाण के बने हुये मेरुप्रासाद की तीन प्रदक्षिणा करने से होता है ॥३५॥

वैराज्यप्रमुखास्तत्र नागरा ब्रह्मणोदिताः ।
वल्लभाः सर्वदेवानां शिवस्यापि विशेषतः ॥३६॥

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे वैराज्यादिप्रासाद-
पञ्चविंशत्यधिकारनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥*

वैराज्यादि यह पचीस प्रासाद नागर जाति के हैं। ये स्वयं ब्रह्माजी के कहे हुए है। इसलिए ये प्रासाद सब देवों के लिये प्रिय हैं। उनमें भी महादेवजी को विशेष प्रिय हैं ॥३६॥

इति श्री पंडित भगवानदास जैन विरचित प्रासाद मण्डनके वैराज्यादी प्रासाद
नामके पांचवे अध्यायकी सुबोधिनी नाम्नी भाषाटीका समाप्त।

---

*विशेष जानने के लिये देखें अपराजितपृच्छा सूत्र – १५७

अथ प्रासादमण्डने षष्ठोऽध्यायः

केसरी आदि पचीसप्रासादों के नाम—

केसरी सर्वतोभद्रो नन्दनो [1]नन्दशालिकः ।
नन्दीशो [2]मन्दरश्चैव [3]श्रीवृक्षश्चामृतोद्भवः ॥१॥
हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ।
इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ॥२॥
वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोज्ज्वलः ।
ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभध्वजः ॥३॥
मेरुः प्रासादराजः स्याद् देवानामालयो हि सः ।
ब्रह्मविष्णुशिवार्काणा–मन्येषां न कदाचन ॥४॥

केसरी १, सर्वतोभद्र २, नन्दन ३, नन्दशालिक ४, नन्दीश ५, मन्दर ६, श्रीवृक्ष ७, अमृतोद्भव ८, हिमवान ९, हेमकूट १०, कैलाश ११, पृथिवीजय १२, इन्द्रनील १३, महानील १४, भूधर १५, रत्नकूटक १६, वैडूर्य १७, पद्मराग १८, वज्रक १९, मुकुटोज्ज्वल २०, ऐरावत २१, राजहंस २२, गरुड २३, वृषभध्वज २४, और मेरु २५, ये प्रासादों के पचीस नाम हैं। मेरु प्रासाद सब प्रासादों का राजा है और उसमें देवोंका निवास भी है, इसलिए यह मेरु प्रासाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य, इन देवों के लिए बनाना चाहिये, परन्तु दूसरे देवों के लिऐ यह नहीं बनाना चाहिये ॥१ से ४॥

पचीस प्रासादों की शृंग संख्या—

आद्यः पञ्चाण्डको ज्ञेयः केसरीनाम नामतः ।
[4]तावदन्तं चतुर्वृद्धि-र्यावदेकोत्तरं शतम् ॥५॥

प्रथम केसरी नामका प्रासाद पांच शृंगवाला है। (चार कोने पर चार और एक मुख्य शिखर इस प्रकार पांच)। अंतिम प्रासाद तक प्रत्येक प्रासाद के ऊपर अनुक्रमसे चार २ शृंग बढानेसे पचीसवें मेरुप्रासादके ऊपर एक सौ एक शृंग होते हैं ॥५॥

---

१. 'नन्दिशालकः'। २. 'मन्दिर'। ३. 'श्रीवत्स'। ४. 'चतुर्णां क्रमशो वृद्धिः'।

अष्टविभागीय तलमान—

क्षेत्रेऽष्टांशैर्विभक्ते तु कर्णो भागद्वयं भवेत् ।
भद्रार्धं कर्णतुल्यं तु भागेनैकेन निर्गमः ॥६॥

समचोरस प्रासाद के तलका आठ भाग करें, उनमें से दो भाग का कोना और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। इन अंगों का निर्गम एक २ भाग का रक्खें ॥६॥

दस और बारह विभागीय तलमान—

दशांशे सार्धभागं च भद्रार्धं च प्रतिरथः ।
कर्णो द्विभागः सूर्यांशे भद्रार्धं च प्रतिरथः ॥७॥

समचोरस तलका दस भाग करें। उनमें से दो भाग का कोना, डेढ़ भाग का प्रतिरथ और डेढ़ भाग का भद्रार्ध बनावें। यदि बारह भाग करना हो तो दो भाग का कर्ण, दो भाग का प्रतिकर्ण और दो भाग का भद्रार्ध बनावें ॥७॥

चौदह विभागीय तलमान—

चतुर्दशविभक्ते तु कर्णाद्यं द्वादशांशवत् ।
भद्रपार्श्वद्वये कार्या भागभागेन नन्दिका ॥८॥

समचोरस तलका चौदह भाग करें। उनमें से कर्ण आदिका भाग बारह विभागीय तलमान के अनुसार रक्खें। अर्थात् कर्ण दो भाग, प्रतिकर्ण दो भाग, और भद्रार्ध दो भाग, ऐसे बारह भाग और भद्र के दोनों तरफ एक २ भाग की नन्दिका (कोणी) बनावें। ऐसे कुल चौदह भाग होते हैं ॥८॥

सोलह विभागीय तलमान—

षोडशांशे प्रकर्त्तव्या कर्णप्रतिरथान्तरे ।
कोणिका भागतुल्या च शेषं चतुर्दशांशवत् ॥९॥

समचोरस तलका सोलह भाग करें। उनमें से कर्ण और प्रतिरथ के बीचमें एक २ भाग की कोणिका बनावें। बाकी सब अंगो का मान चौदह विभागीय तलमान के बराबर समझें। अर्थात् कर्ण दो भाग, कोणी एक भाग, प्रतिरथ दो भाग, नंदी एक भाग और भद्रार्ध दो भाग, इस प्रकार सोलह विभागीय तलमान होता है ॥९॥

अठारह विभागीय तलमान—

अष्टादशांशे भद्रस्य पार्श्वे द्वे द्वे च नन्दिके ।
कर्तव्ये भागभागेन शेषं स्यात् षोडशांशवत् ॥१०॥

समचोरस तलका अठारह भाग करें। उनमें से भद्र के दोनों तरफ दो २ नन्दी एक २ भाग की बनावें। बाकी सब सोलह विभागीय तलमान के बराबर जानें। जैसे—कर्ण दो भाग, कोणी एक भाग, प्रतिरथ दो भाग, नन्दी एक भाग, दूसरी नंदी एक भाग और भद्रार्ध दो भाग, ऐसे अठारह भागीय तलमान जानें ॥१०॥

बीस विभागीय तलमान—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे विंशत्यंशविभाजिते ।
कर्णो द्विभागो नन्दिका सार्धांशा पृथुविस्तरे ॥११॥
द्विभागस्तु प्रतिरथो नन्दिका सार्धभागिका ।
भद्रनन्दी भवेद् भागा भद्रार्धं युग्मभागिकम् ॥१२॥

समचोरस क्षेत्र के बीस भाग करें। उनमें से दो भाग का कर्ण, डेढ़ भाग की कोणी, दो भाग का प्रतिरथ, डेढ़ भाग की नंदिका, एक भाग की भद्रनंदी और दो भाग का भद्रार्ध, इस प्रकार बीस भागीय तलमान बनावें ॥११-१२॥

बाईस विभागीय तलमान—

द्वाविंशतिकृते[1] क्षेत्रे नन्द्ये का भद्रपार्श्वयोः ।
त्रयः प्रतिरथाः कर्णो भद्रार्धं च द्वि भागिकम् ॥१३॥

समचोरस क्षेत्र के बाईस भाग करें। उनमें से भद्र के दोनों तरफ की नन्दी एक २ भाग की बनावें। बाकी तीन प्रतिरथ (रथ, उपरथ और प्रतिरथ) कर्ण और भद्रार्ध, ये प्रत्येक दो २ भाग का रक्खें। इस प्रकार बाईस विभागीय तलमान होता है ॥१३॥

तलोंके क्रमसे प्रासाद संख्या—

एकद्वित्रिकं त्रीणि वेदाश्चत्वारि पञ्च च ।
तलेषु क्रमतोऽष्टासु केऽप्याहुः शिखराणि हि ॥१४॥

---

१. 'द्वाविंशत्यंशके नन्दी भागैका'।

केसरी आदि प्रासादों की तल विभक्ति आठ हैं। उनमें क्रमशः एक, दो, तीन, तीन, तीन, चार, चार और पांच प्रासाद हैं। अर्थात् आठ तल वाला प्रथम एक प्रासाद; दस तल का दूसरा और तीसरा ये दो; बारह तल का चौथा, पांचवां और छट्ठा ये तीन प्रासाद; चौदह तल का सातवां, आठवां और नवां ये तीन प्रासाद; सोलह तलका दसवां, ग्यारहवां और बारहवां ये तीन प्रासाद, अठारह तलका तेरहवां, चौदहवां, पंद्रहवां और सोलहवां ये चार प्रासाद; बीस तलका सत्रहवां, अठारहवां, उन्नीसवां और बीसवां ये चार प्रासाद और बाईस तलका इक्कीस से पच्चीस तक के पांच प्रासाद हैं। ऐसा किसी (क्षीरार्णव) का मत है ॥१४॥

> शिखरं त्वेकवेदैकं षट्त्रिवेदयुगद्वयम् ।
> तलेषु क्रमतः प्रोक्तो मूलसूत्रेऽपराजिते ॥१५॥

केसरी प्रासादों में प्रथम आठ तलका, दो से पांच ये चार प्रासाद दस तलका, छट्ठा एक प्रासाद बारह तलका, सात से बारह ये छः प्रासाद चौदह तलका, १३ से १५ ये तीन प्रासाद सोलह तलका, १६ से १९ ये चार प्रासाद अठारह तलका, २० से २३ ये चार प्रासाद बीस तलका और चौबीसवां और पच्चीसवां ये दो प्रासाद बाईस तलका होता है। यह मूलसूत्र अपराजितपृच्छा का मत है ॥१५॥

> तलेष्वष्टासु विहिताः प्रासादाः पञ्चविंशतिः ।
> अयस्त्रयः क्रमेणैव चत्वारस्त्वष्टमे तले ॥१६॥

केसरी आदि पच्चीस प्रासादों की जो आठ तल विभक्ति हैं, उनमें प्रत्येक तल के तीन २ प्रासाद हैं और आठवां बाईस विभागीय तल के चार प्रासाद हैं ॥१६॥

> त्रीणि त्रीणि स्वकीयानि द्वे द्वे परः परस्य च ।
> शिखराणि विधेयानि विश्वकर्मवचो यथा ॥१७॥

ऊपर १६ वें श्लोक में तलों के तीन २ प्रासाद बनाने की जो बात कही गई है। यह मेरा स्वयं (मंडन) का मत है और नीचे के श्लोक १८ वें में दो दो आदि प्रासाद लिखा है, यह दूसरे का मत है। ये पच्चीस प्रासाद विश्वकर्मा के वचन के अनुसार बनाये हैं ॥१७॥

> [1]द्विद्व्येकषट्त्रयोऽष्टादि-तलेषु पञ्चसु क्रमात् ।
> सप्तैव सप्तमे षष्ठे शिरांसि त्रीणि चाष्टमे ॥१८॥

---

१. 'द्विश्येक'

आठ तल विभक्तियों में से पहले पांच तल विभक्ति के अनुक्रम से दो, दो, एक, छह और तीन प्रासाद हैं। छट्ठी तल विभक्ति का एक प्रासाद, सातवीं तल विभक्ति के सात और आठवीं तल विभक्ति के तीन प्रासाद हैं ॥१८॥

भेदाः पञ्चाशदेकैकं प्रोक्ताः श्रीविश्वकर्मणा ।
तेनैकस्मिंस्तलेऽपि स्युः शिखराणि बहून्यपि ॥१९॥

केसरी आदि प्रत्येक प्रासाद के पचास २ भेद श्री विश्वकर्माजी ने किये हैं। एकही प्रासाद तल के ऊपर अनेक प्रकार के शिखर बनाये जाते हैं ॥१९॥

रथिकां सिंहकर्णं च भद्रे कुर्याद् गवाक्षकान् ।
प्रत्यङ्गैस्तिलकाद्यैश्च शोभितं सुरमन्दिरम् ॥२०॥

रथिका, सिंहकर्ण, भद्र में गवाक्ष, प्रत्यंग और तिलक आदि आभूषणों से देवालय को सुशोभित बनावें ॥२०॥

प्रासादाः केसरीमुख्याः सर्वदेवेषु पूजिताः ।
पुरराज्ञः प्रजादीनां कर्तुः कल्याणकारिकाः ॥२१॥

इति केसर्यादिप्रासादाः पञ्चविंशतिः ।

केसरी आदि जो पच्चीस प्रासाद हैं, वे सब देवों के लिये पूजित हैं। इसलिये बनानेवाले तथा नगर के राजा और प्रजा का कल्याण करने वाले हैं ॥२१॥

निरंधार प्रासाद—

षट्त्रिंशत्करतोऽधस्ताद् यावद्धस्तचतुष्टयम् ।
विना भ्रमैर्निरन्धाराः कर्त्तव्याः शान्तिमिच्छता ॥२२॥

छत्तीस हाथ से न्यून चार हाथ तक, अर्थात् चार हाथ से लेकर छत्तीस हाथ तक के विस्तार वाले प्रासाद शान्ति को चाहने वाले शिल्पी भ्रम (परिक्रमा) बिनाके निरंधार (प्रकाश वाले) भी बना सकता है। निरंधार प्रासादको परिक्रमा नहीं बनावें ॥२२॥

प्रासादतलाकृतिः—

वास्तोः पञ्चविधं क्षेत्रं चतुरस्रं तथायतम् ।
वृत्तं वृत्तायतं चैवाष्टास्रं[1] देवालयादिषु ॥२३॥

---

१. अष्टास्रं देवस्थानयम् ।

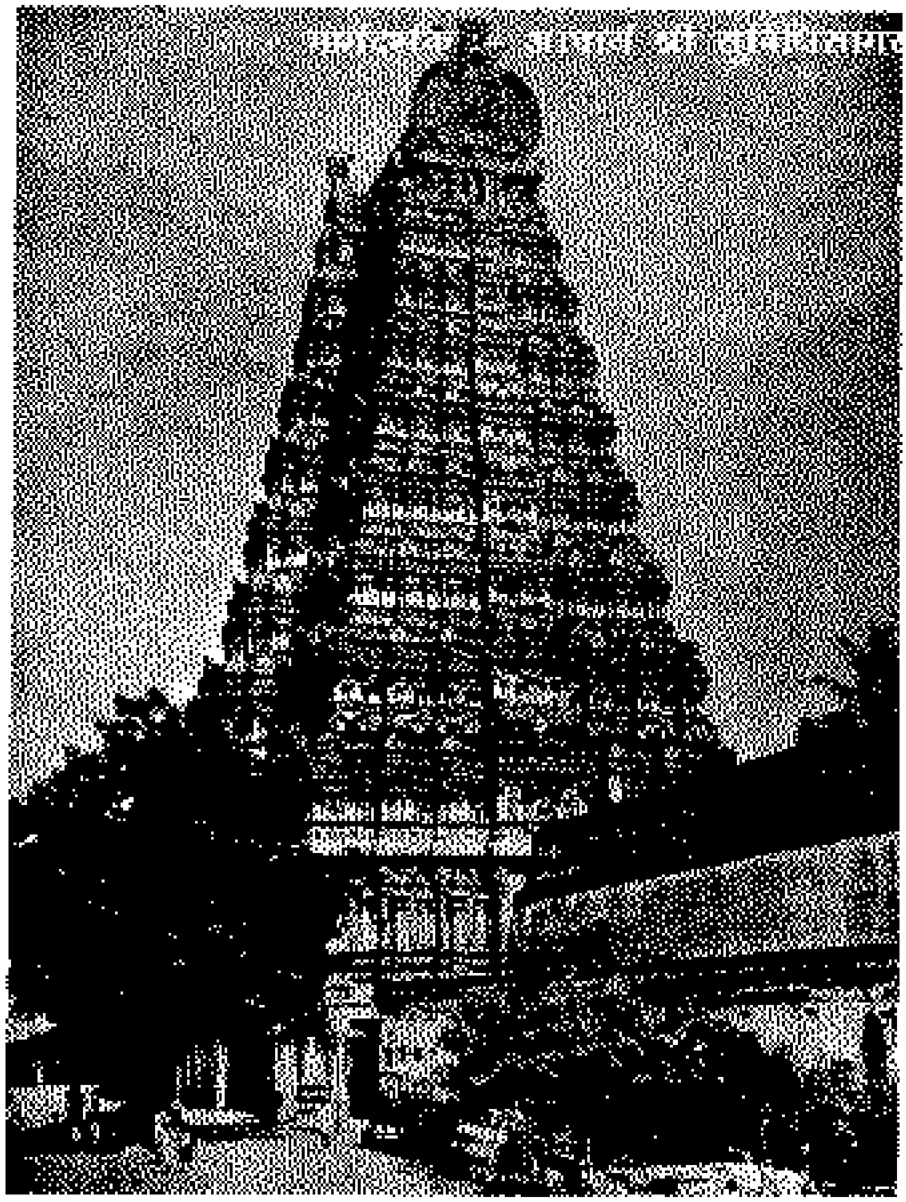

मीनाक्षाजी देवी के मंदिर की जगती के द्वार ऊपर का
गोपुर मंडप - मदुरा (दक्षिण)

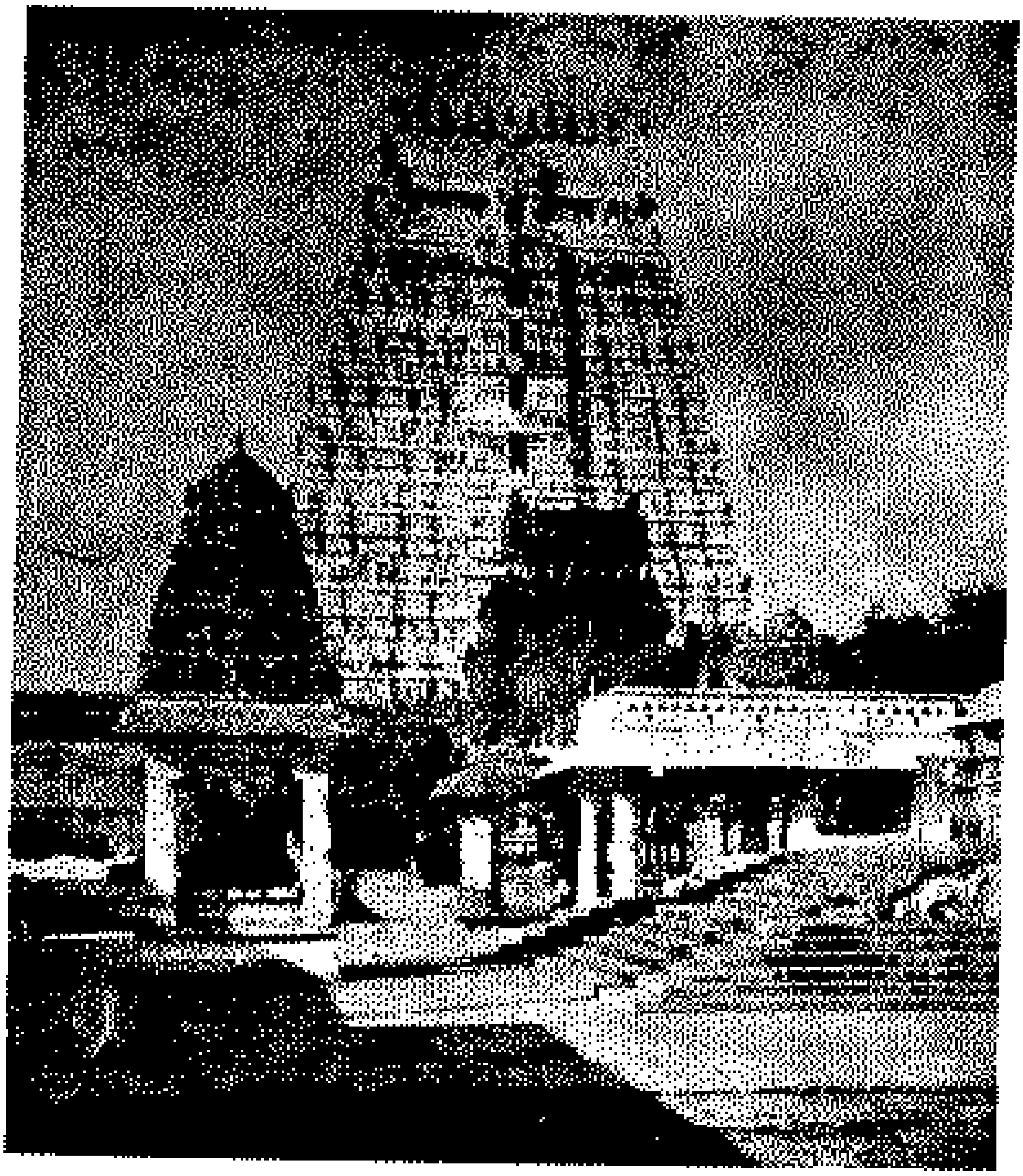

तिरुवण्णाम् (दक्षिण) के मंदिर का एक गोपुर मंडप

चोरस, लंब चोरस, गोल, लंबगोल और आठ कोना वाला, इस प्रकार पांच आकार के देवालय आदि के वास्तुक्षेत्र हैं ।।२३।।

लम्बचोरस प्रासाद—

विस्तारे तु चतुर्भाग-मायामे पञ्चभागिकम् ।
ऊर्ध्वं त्रिकलशान् कुर्यात् पृष्ठाग्रे सिंहकर्णकम् ।।२४।।

लंब चोरस प्रासाद के विस्तार में चार भाग और लंबाई में पांच भाग करना चाहिये और उसके छाद्य के ऊपर तीन गुम्बद (कलश) रखना चाहिये। तथा आगे और पीछे के चारों कोने पर सिंह रखना चाहिये।

गोल, लंबगोल और अष्टास्र प्रासाद—

वृत्तायतं च कर्णार्धं व्यासार्धं वामदक्षिणे ।
कर्णान्तं च भ्रामयेद् वृत्तं [२]भद्राणि चाष्टकोणिका ।।२५।।
प्रासादो वर्तुलोऽष्टास्रः प्रायेणैकाण्डकः शुभः ।
कर्णे वा श्रेणयोऽण्डानां मण्डपं तत्स्वरूपकम् ।।२६।।

इति पंचक्षेत्राणि ।

गोल प्रासाद के विस्तार का आधा भाग गोल के दोनों तरफ बढ़ावे तो लंबगोल प्रासाद होता है। तलके मध्यबिंदु से कोने तक व्यासार्ध मान करके एक गोल खींचा जाय तो गोल-प्रासादतल होता है। चोरस प्रासाद के चार भद्रों में कोना बनाया जाय तो अष्टास्र प्रासाद होता है। गोल और अष्टास्र प्रासाद प्रायः करके एक शिखर वाला बनाना शुभ है। अथवा शिखर के कोने में शृंगों की पंक्ति रखनी चाहिये। इन प्रासादों का मंडप भी इसी स्वरूप का बनाना चाहिये ।।२५-२६।।

नागर प्रासाद—

विविधै रूपसङ्घाटै-र्भद्रैर्गवाक्षभूषितैः ।
वितानकालनाभृङ्गै-रनेकैर्नागरा मताः ।।२७।।

अनेक प्रकार के तलाकृति वाले रूपों से, गवाक्ष वाले भद्रों से तथा अनेक प्रकार के गुम्बदों से और अनेक शृंगयुक्त कालनाओं से शोभायमान नागर जाति का प्रासाद बनाया जाता है ।।२७।।

---

२. वृत्ते भद्राणि चाष्ट हि ।

द्राविड प्रासाद—

पीठोपरि भवेद् वेदी पीठानि त्रीणि पञ्च वा ।
पीठतो द्राविडे रेखा लताशृङ्गादिसंयुता ॥२८॥

द्राविड प्रासाद को पादबंधनादि तीन अथवा पांच पीठ हैं, इस पीठ के ऊपर वेदी होती है। तथा उसकी रेखा (कोना) लता और शृंगों वाली होती है ॥२८॥

भूमिजप्रासाद—

भूमिकोपरिभूमिश्च [1]ह्रस्वा ह्रस्वा नवान्तकम् ।
विभक्तदलसंयुक्ता मूर्ध्नि शृङ्गेण भूमिजाः ॥२९॥

भूमिज जाति के प्रासाद एक के ऊपर एक ऐसे नव भूमि (माल) तक बनाया जाता है। उसमें नीचे के मालसे ऊपर का माल छोटा २ किया जाता है। पदविभक्ति वाला और ऊपर शृंग वाला भूमिज प्रासाद है ॥२९॥

ललित श्रीवत्स और नागर जातिके प्रासाद—

शृङ्गैकेन ललिताः श्रीवत्सा[2] वारिसंयुताः ।
नागरा भ्रमसंयुक्ताः सान्धारास्ते प्रकीर्तिताः ॥३०॥

इति प्रासादजातय।

ललित जाति के प्रासाद एक शृंग वाले हैं, श्रीवत्स प्रासाद वारि मार्ग वाले हैं। नागर प्रासाद भ्रम (परिक्रमा) वाले हैं, उसको सांधार प्रासाद कहते हैं ॥३०॥

मेरुप्रासाद —

पञ्चहस्तो भवेन्मेरु–रेकोत्तरशताण्डकः ।
भेदाः पञ्चोनपञ्चाशत् करवृद्धया भवन्ति ते ॥३१॥
हस्ते हस्ते भवेद् वृद्धि–स्त्वण्डकानां च विंशतिः ।
एकोत्तरसहस्रं स्या–च्छृङ्गाणां च शताद्धके ॥३२॥

मेरु प्रासाद पांच हाथ से न्यून नहीं बनाया जाता। पांच हाथ के विस्तार वाले मेरु प्रासाद के ऊपर एकसौ एक शृंग चढाये जाते हैं। यह पांच हाथ से एक २ हाथ पचास हाथ तक बढाने से पैंतालीस भेद होते हैं। बढाये हुए प्रत्येक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद के ऊपर

१. 'ह्रस्वावर्कनवान्तकम्'. इति पाठान्तरे। २. 'श्रीवत्साम्बुपथान्विताः।'
३. यहां पच्चीसी इत्यादि आदि बार२ क्रम समझने का है।

क्रमशः बीस २ शृंग अधिक चढाये जाते हैं। जैसे—पांच हाथ के विस्तार वाले मेरु प्रासाद के ऊपर एक सौ एक, छह हाथ के प्रासाद के ऊपर एकसौ इक्कीस, सात हाथ के प्रासाद के ऊपर एकसौ इकतालीस, इस प्रकार बीस २ शृंग बढ़ाते हुए पचास हाथ के मेरु प्रासाद के ऊपर एक हजार एक शृंग हो जाते हैं ॥३१–३२॥

विमान नागर प्रासाद—

केसरिप्रमुखाः कर्णे विमानमुरुशृंगकम् ।
तथैव मूलशिखरं पञ्चभूमिविमानकम् ॥३३॥
विमाननागरा जाति–स्तदा प्राज्ञैरुदाहृता ।
एवं भक्तोभक्ताणि सम्भवन्ति बहून्यपि ॥३४॥

जिस प्रासाद के कोने के ऊपर केसरी आदि के अनेक शृंग हों, और भद्र के ऊपर उरुशृंग हों, तथा मूल शिखर पांच भूमि (माल) वाला विमानाकार हो, इसको विद्वानों ने विमाननागर जाति का प्रासाद कहा है। इसके ऊपर अनेक शृंग और उरुशृंग होते हैं ॥३३–३४॥

*१—श्रीमेरुप्रासाद और २—हेमशीर्ष मेरुप्रासाद—

श्रीमेरुरष्टभागः स्या–देकोत्तरशताण्डकः ।
हेमशीर्षो दशांशश्च युतः सार्धशताण्डकैः ॥३५॥

पहला श्रीमेरुप्रासाद आठ तलविभक्ति वाला और एकसौ एक शृंग वाला है। दूसरा हेमशीर्ष मेरुप्रासाद दश तल विभक्तिवाला और डेढ़सौ शृंगवाला है ॥३५॥

३—सुरवल्लभ मेरुप्रासाद—

भागैर्द्वादशभिर्युक्तः सार्धद्विशतसंयुतः ।
सुरवल्लभनामा तु प्रोक्तः श्रीविश्वकर्मणा ॥३६॥
कर्णो द्विभाग एकांशा कोणी सार्धः प्रतिरथः ।
अर्धांशा नन्दिका भद्र–मर्धं भागेन सम्मितम् ॥३७॥

तीसरा सुरवल्लभ नाम का मेरु प्रासाद बारह तल विभक्ति वाला और दोसौ पचास (ढाईसौ) शृंगवाला है। ऐसा श्री विश्वकर्माजी ने कहा है। कोना दो भाग, कोणी एक भाग,

* ये नव मेरु प्रासाद का स्वरूप सविस्तर जानने के लिए देखो अपराजित पृच्छा सूत्र. १८०

प्रतिरथ डेढ़ भाग, कोणी आधा भाग और भद्रार्ध एक भाग, इस प्रकार बारह भाग की तल विभक्ति है ॥३६--३७॥

४--भुवनमण्डन मेरुप्रासाद—

त्रिशतं पञ्चसप्तत्या--धिकैर्यश्चाण्डकैः सह ।
भक्तश्चतुर्दशांशैस्तु नाम्ना भुवनमण्डनः ॥३८॥
कोणः कोणी प्रतिरथो नन्दी भद्रार्धमेव च ।
द्व्येकद्व्यर्धांशसार्धांशै--श्चतुर्दशविभाजिते ॥३९॥

चौथा भुवनमण्डन नाम का मेरुप्रासाद तीनसौ पचहत्तर शृंगवाला है। इसके तलका चौदह विभाग करें। उनमें से कोण दो भाग, कोणी एक भाग, प्रतिरथ दो भाग, कोणी आधा भाग और भद्रार्ध डेढ़ भाग रक्खें ॥३८--३९॥

५--रत्नशीर्ष मेरुप्रासाद--

बाणैकवेदयुग्मांशा वेदा, कर्णादिभागतः ।
रत्नशीर्षो भवेन्मेरुः पञ्चशतैकशृङ्गकैः ॥४०॥

पांचवां रत्नशीर्ष मेरु प्रासाद के तलका बत्तीस भाग करें। उनमें से पांच भाग का कोना, एक भाग की कोनी, चार भाग का प्रतिरथ, दो भाग की नन्दी और चार भाग का भद्रार्ध रक्खें। इस प्रासाद के ऊपर पांचसौ एक शृंग है ॥४०॥

६--किरणोद्भव मेरुप्रासाद—

गुणैकयुग्मचन्द्रद्वौ पुराणांशैर्विभाजिते ।
किरणोद्भवमेरुश्च सपादषट्शताण्डकः ॥४१॥

छट्ठा किरणोद्भव मेरु प्रासाद के तल का अठारह भाग करें। उनमें से तीन भाग का कोणा, एक भाग की कोणी, दो भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। इस प्रासाद के ऊपर छसौ पच्चीस शृंग हैं ॥४१॥

७--कमलहंस मेरुप्रासाद—

रामचन्द्रद्वियुग्मांशै-र्नेत्रैर्विंशतिभाजिते ।
नाम्ना कमलहंसः स्यात् सार्धसप्तशताण्डकः ॥४२॥

सातवां कमलहंस नामके मेरु प्रासाद के तलका बीस भाग करना चाहिये। उनमें से

तीन भाग का कोना, एक भाग की कोनी, दो भाग का प्रतिरथ, दो भाग की नंदी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। इस प्रासाद के ऊपर सातसौ पचास शृंग हैं ॥४२॥

८—स्वर्णकेतु मेरुप्रासाद—

भागैः कर्णादिगर्भान्तं [1]वेदार्धसार्धत्र्येकांशैः ।
द्वाभ्यां च स्वर्णकेतुः स्यात् पञ्चसप्ताष्टशृङ्गकैः ॥४३॥

आठवां स्वर्णकेतु नामके मेरु प्रासाद के तलका बाईस भाग करें। इनमें से चार भाग का कोना, आधे भाग की कोणी, साढ़े तीन भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नंदी और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। इस प्रासाद के ऊपर आठसौ पच्चहत्तर शृंग हैं ॥४३॥

९—वृषभध्वज मेरुप्रासाद—

वेदैकरामयुग्मांशैर्नेत्रैर्जिनविभाजिते ।
वृषभध्वजमेरुश्च सैकाण्डकसहस्रवान् ॥४४॥

नववां वृषभध्वज मेरु प्रासाद के तलका चौबीस भाग करें। इनमें से चार भाग का कोना, एक भाग की कोनी, तीन भाग का प्रतिरथ, दो भाग की नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। यह प्रासाद एक हजार एक शृंग वाला है॥४४॥

सभ्रमो भ्रमहीनश्च महामेरुश्च भद्रयम् ।
सान्धारेषु प्रकर्तव्यं भद्रे चन्द्रावलोकनम् ॥४५॥

उपरोक्त नव महामेरु प्रासाद भ्रम (परिक्रमा) वाले अथवा बिना भ्रमवाले बनाये जाते हैं। एवं दो भ्रमवाले भी बनाये जाते हैं। यदि दो भ्रमवाले सान्धार मेरु प्रासाद बनाया जाय तब उसके भद्र में चंद्रावलोकन करना चाहिये अर्थात् प्रकाश के लिये जाली या गवाक्ष बनाना चाहिये ॥४५॥

राज्ञः स्यात् प्रथमो मेरुस्ततो हीनो [2]द्विजादिकः ।
विना राज्ञोऽन्यवर्णेन कृते मेरौ महद्भयम् ॥४६॥

इति नवमेरुलक्षणम् ।

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते प्रासादमण्डने वास्तुशास्त्रे केसर्यादि प्रासादजातिलक्षणे पञ्चचत्वारिंशन्मेरुलक्षणो षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

---

१. 'वेदाक्षाद्र्धविसार्धकैः।' २. 'ऽन्यवर्णजः।'

मेरुप्रासाद राजालोग बनावें। धनिक लोग मेरुप्रासाद से न्यून प्रासाद बनावें, अर्थात् मेरुप्रासाद नहीं बनावें। यदि बनावें तो राजा के साथ बनावें। राजा के बिना अकेले धनिक द्वारा बनाया हुआ मेरुप्रासाद बड़ा भयकारक माना है ॥४६॥

इति श्री पंडित भगवानदास जैन द्वारा अनुवादित प्रासादमण्डन का केसर्यादि-
प्रासाद लक्षणनाम का छट्ठा अध्याय की सुबोधिनी नामकी
भाषाटीका समाप्त ॥६॥

अथ प्रासादमण्डने सप्तमाऽध्यायः

मंडप विधान—

रत्नगर्भाङ्कुरं सूर्यचन्द्रतारावितानकम् ।
विचित्रं मण्डपं येन कृतं तस्मै नमः सदा ॥१॥

लगे हुए रत्नवाले तथा सूर्य चंद्रमा और तारे जैसा तेजस्वी वितान (गुम्बद का पेटा भाग चांदनी) वाले, ऐसे अनेक प्रकार के मण्डपों की जिसने रचना की है, उनको हमेशा नमस्कार है ॥१॥

गर्भाग्रमंडप—

कर्णगूढा विलोक्याश्च एकत्रिद्वारसंयुताः ।
प्रासादाग्रे प्रकर्त्तव्याः सर्वदेवेषु मण्डपाः ॥२॥

गूढ कोना वाला अर्थात् दीवार वाला अथवा बिना दीवार वाला खुला, तथा एक अथवा तीन द्वारवाला, ऐसा मंडप सब देवों के प्रासाद के आगे किया जाता है ॥२॥

जिनप्रासाद के मंडप—

गूढस्त्रिकस्तथा नृत्यः क्रमेण मण्डपास्त्रयः ।
जिनस्याग्रे प्रकर्त्तव्याः सर्वेषां तु बलाणकम् ॥३॥

जिनदेव के गर्भगृह के आगे गूढ मण्डप, इसके आगे चौकी वाले त्रिकमंडप और इसके आगे नृत्यमंडप, इस प्रकार अनुक्रम से तीन मंडप बनावें। बाकी सब देवों के गर्भगृह के आगे बलाणक बनावें ॥३॥

मंडपके पांच मान—

समं सपादं प्रासादात् सार्धं च पादोनद्वयम् ।
द्विगुणं वा प्रकर्त्तव्यं मण्डपं पञ्चधा मतम् ॥४॥

मंडप का नाप प्रासाद के बराबर, सवाया, डेढा, पौने दुगना अथवा दुगना किया जाता है। ये मंडप के पांच प्रकार के नाप हैं ॥४॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८५ में सवा दो गुणा और ढाई गुणा ये दो प्रकार का अधिक नाप मिलाकर सात प्रकार के मंडप के नाप लिखे हैं।

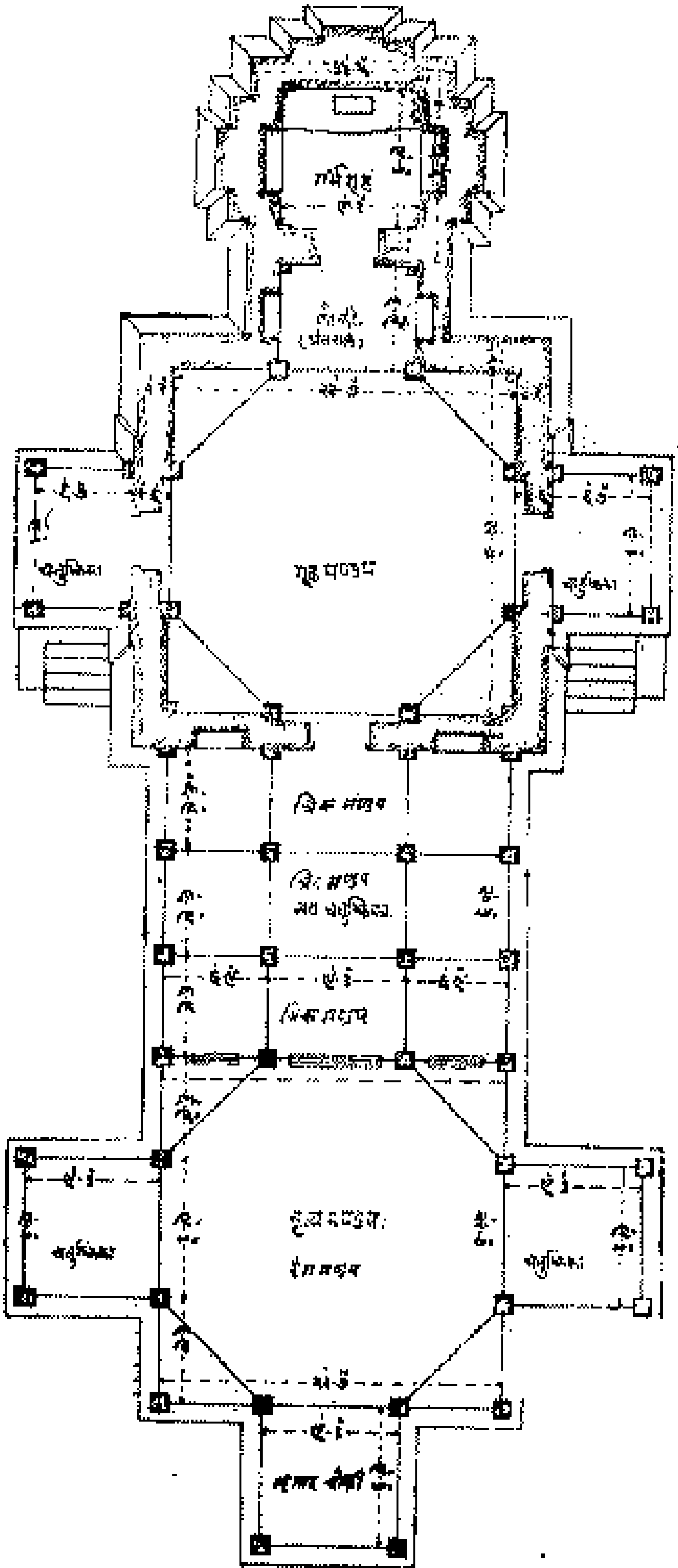

प्रासाद और मंडपों का तलदर्शन

प्रासादमान से मंडप का नाप—

समं सपादं पञ्चाशत्पर्यन्तं दशहस्तकात् (तः) ।
दशान्तं पञ्चतः सार्धं द्विपादोनं चतुष्करे ॥५॥
त्रिहस्ते द्विगुणं द्वयेक-हस्ते कुर्याच्चतुष्किकाम् ।
प्रायेण मण्डपं सार्धं द्विगुणं प्रत्यलिन्दकैः ॥६॥

दश हाथ से पचास हाथ तक के प्रासाद को समान अथवा सवाया, पांच हाथ से दश हाथ तक के प्रासाद को डेढ़ा, चार हाथ के प्रासाद को पौने दो गुना और तीन हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को दुगुना मंडप बनाना चाहिये। दो और एक हाथ के प्रासाद को सिर्फ चौकी बनावें। प्रायः करके मण्डप का प्रमाण डेढ़ा या दुगना अलिन्द के अनुसार जानना चाहिये ॥५-६॥

गूमट के घंटा कलश और शुकनास का मान—

मण्डपे स्तम्भपट्टादि-र्मध्यपट्टानुसारतः ।
शुकनाससमा घण्टा न्यूना श्रेष्ठा न चाधिका ॥७॥

मण्डप में स्तंभ और पाट आदि सब गर्भगृह के पट्ट आदि के अनुसार रखना चाहिये। मण्डप के गूमट के घंटा कलश की ऊंचाई शुकनास के बराबर रखना चाहिये। कम या अधिक नहीं रखनी चाहिये ॥७॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८५ श्लोक १० में लिखा है कि—'शुकनाससमा घण्टा न न्यूना न ततोऽधिका।' अर्थात् गूमट के आमलसार कलश की ऊंचाई शुकनास के बराबर रक्खें। न न्यून न अधिक रक्खें।

मंडप के समविषम तल—

मुखमण्डपसङ्घाटो यदा भित्त्यन्तरे भवेत् ।
न दोषः स्तम्भपट्टाद्यैः समं च विषमं तलम् ॥८॥

गर्भगृह और मुखमंडप के बीच में यदि भित्त (दीवार) का अंतर हो तो मंडप में स्तंभ, पट्ट और तल ये समविषम किया जाय, तो दोष नहीं है। अर्थात् ऊपर के श्लोक में कहा है कि-गर्भगृह के पट्ट स्तंभ के अनुसार बराबर में मंडप के पट्ट स्तंभ आदि रखा जाता है। परन्तु इन दोनों के बीच में दीवार का अंतर हो तो सम विषम रखा जाय तो दोष नहीं माना जाता ॥८॥

*मुखमंडप—

नवाष्टदशभागेषु त्रिभिश्चन्द्रावलोकनम् ।
हस्तैकं त्र्यङ्गुलोनं वा तदूर्ध्वं मत्तवारणम् ॥९॥

गर्भगृह के आगे मुखमंडप है, उसके उदयका साढ़े तेरह, साढे चौदह अथवा साढे पंद्रह भाग करें। उनमें से आठ, नव अथवा दस भाग का चंद्रावलोकन (खुला भाग) रक्खें। तथा आसनपट के ऊपर एक हाथ का अथवा इक्कीस अंगुल का मत्तवारण (कटहरा) बनावें ॥९॥

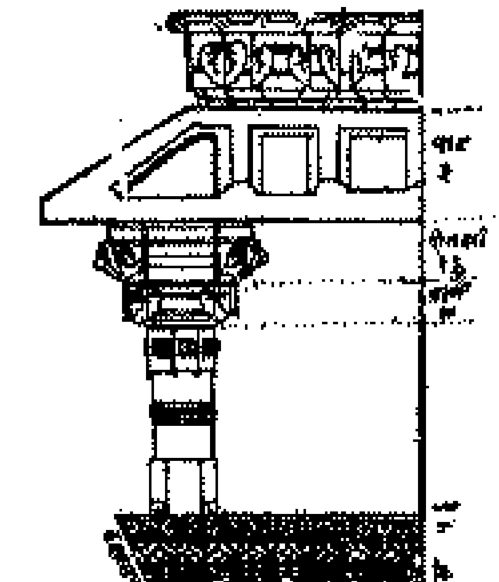

मुखमंडप

सार्धपञ्चांशकैर्भक्तैः सपादं राजसेनकम् ।
सपादत्र्यंशका वेदी भागेनासनपट्टकम् ॥१०॥

खुले भाग के नीचे से मंडप के तल तक साढे पांच भाग करें। उनमें से सवा भाग का राजसेन, सवातीन भाग की वेदी और एक भाग का आसनपट्ट बनावें ॥१०॥

तदूर्ध्वं सार्धसप्तांशा यावत्पट्टस्य पेटकम् ।
सार्धपञ्चांशकः स्तम्भः पादोनं भरणं भवेत् ॥११॥
भागार्धं भरणं वापि सपादं सार्धतः शिरः ।

आसनपट्ट के ऊपरसे पाटके तलभाग तक साढे सात भाग करें। उनमें से साढे पांच भाग का स्तम्भ रक्खें। उसके ऊपर पौन अथवा आधे भाग की भरणी और इसके ऊपर सवा या डेढ़ भागकी शिरावटी रक्खें ॥११॥

पट्टो द्विभागस्तस्योर्ध्वे कर्तव्यश्छाद्यकोदयः ॥१२॥
त्रिभागैः ललितं छाद्यं यावत्[1] पट्टस्य पेटकम् ।
अर्धांशोर्ध्वा कपोतालि-र्द्विभागः पट्टविस्तरः ॥१३॥

शिरावटी के ऊपर दो भागका पाट रक्खें। उसके ऊपर तीन भाग निकलता और पाटके पेटा भाग तक नमा हुआ सुन्दर छज्जा बनावें। उसके ऊपर आधे भाग की केवाल बनावें; पाटका विस्तार दो भाग रक्खें ॥१२-१३॥

● विशेष जानकारी के लिए देखो अपराजितपृच्छा सूत्र १८४ श्लोक ५ से १३ तक

१. तत्पेटं पट्टपेटकम् ।

स्तंभ का विस्तारमान और भेद—

प्रासादात् दशरुद्रार्क-भागेन स्तम्भविस्तरः ।
वेदाष्टरविंशत्यः कर्णा वृत्तस्तु पञ्चधा ॥१४॥

प्रासाद के दसवां, ग्यारहवां अथवा बारहवां भागके बराबर स्तंभ का विस्तार (मोटाई) रक्खें। तथा चार, आठ, बारह और बीस कोना वाला और गोल, ऐसे पांच प्रकार के स्तंभ हैं ॥१४॥

अपराजितपृच्छा सूत्र १८४ श्लोक २५ में तेरहवां और चौदहवां भाग के बराबर भी स्तंभ का विस्तार रखना लिखा है।

आकृति से स्तंभसंज्ञा—

"चतुरस्राश्च रुचका भद्रका भद्रसंयुताः ।
वर्द्धमानाः प्रतिरथैस्तथाष्टांशैश्चाष्टास्रकाः ॥
आसनोर्ध्वे भवेद् भद्र-मष्टकर्णैस्तु स्वस्तिकाः ।
प्रकर्तव्याः पञ्चविधाः स्तम्भाः प्रासादरूपिणः ॥" अप० सू० १८४

चार कोना वाला चतुरस्र, भद्रवाला भद्रक, प्रतिरथवाला वर्द्धमान, आठ कोना वाला अष्टास्र और आसन के ऊपर से भद्र और आठ कोना वाला स्वस्तिक नाम का स्तंभ कहा जाता है। ये पांच प्रकार के स्तंभ प्रासाद के अनुसार बनाना चाहिये।

क्षीरार्णवग्रंथ के अनुसार स्तंभ का विस्तार मान—

"एकहस्ते तु प्रासादे स्तम्भः स्याच्चतुरङ्गुलः ।
द्वौ हस्ते चाङ्गुलं सप्त त्रिहस्ते च नवाङ्गुलः ॥
तस्योर्ध्वं दशहस्तानां हस्ते हस्ते च द्व्यङ्गुला ।
सपादाङ्गुला वृद्धिः स्यात् त्रिंशद्धस्ते यदा भवेत् ॥
अङ्गुलैका ततो वृद्धि-श्चत्वारिंशच्च हस्तके ।
तस्योर्ध्वं च शतार्द्धं च पादोनमङ्गुलं भवेत् ॥"

एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद का स्तंभ चार अंगुल, दो हाथ के प्रासाद का स्तंभ सात अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद का स्तंभ नव अंगुल, चार से दश हाथ के प्रासाद का स्तंभ प्रत्येक हाथ दो दो अंगुल, ग्यारह से तीस हाथ के प्रासाद का स्तंभ प्रत्येक हाथ सवा सवा अंगुल, इकतीस से चालीस हाथ के प्रासाद का स्तंभ प्रत्येक हाथ एक एक अंगुल और इकतालीस से

पच्चास हाथ के विस्तार वाले प्रासाद का स्तंभ पौन पौन अंगुल बढाकर स्तंभ का विस्तार करना चाहिये।

स्तंभका अन्य विस्तार मान—

"एक हस्ते तु प्रासादे स्तम्भः स्याच्चतुरङ्गुलः ।
सप्ताङ्गुलश्च द्विहस्ते त्रिहस्ते तु नवाङ्गुलः ॥
द्वादशाङ्गुलविस्तारः प्रासादे चतुर्हस्तके ।
चतुर्हस्तादितः कृत्वा यावद् द्वादशहस्तकम् ॥
सार्धाङ्गुला भवेद् वृद्धिः प्रतिहस्ते विवर्द्धयेत् ।
द्वादशहस्तस्योर्ध्वं तु यावत् त्रिंशद्धस्तकम् ॥
अङ्गुलैका ततो वृद्धि-र्हस्ते हस्ते प्रदापयेत् ।
अत ऊर्ध्वं ततः कुर्याद् यावत्पञ्चाशद्धस्तकम् ॥
अर्धाङ्गुला भवेद् वृद्धिः कर्त्तव्या शिल्पिभिः सदा ।
उच्छ्रयं चतुर्गुणं प्रोक्त-मेतत्स्तम्भस्य लक्षणम् ॥"

इति ज्ञानप्रकाशदीपार्णवे ।

एक हाथ के प्रासाद में स्तंभ का विस्तार चार अंगुल, दो हाथ के प्रासाद में सात अंगुल, तीन हाथ के प्रासाद में नव अंगुल और चार हाथ के प्रासाद में बारह अंगुल रक्खें। पीछे पांच हाथ से बारह हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ डेढ डेढ अंगुल, तेरह हाथ से तीस हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ एक एक अंगुल और इकतीस से पचास हाथ तक के प्रासाद में प्रत्येक हाथ आधा आधा अंगुल बढा करके स्तंभ का विस्तार रक्खें और विस्तार से चार गुणी स्तंभ की ऊंचाई रक्खें।

प्राग्ग्रीव मंडप—

द्वाराग्रे स्तम्भवेद्याद्या प्राग्ग्रीवो मण्डपो भवेत् ।
द्विद्विस्तम्भविवृद्धया च षोडशैवं प्रकीर्त्तिताः ॥१५॥

प्रासाद के द्वारके आगे दो स्तंभवाली प्रथम वेदी है, वह प्राग्ग्रीव मंडप है। उनमें दो दो स्तंभ बढ़ाने से सोलह प्रकार का प्राग्ग्रीव मंडप होता है ॥१५॥

विशेष जानने के लिये देखो अपराजितपृच्छा सूत्र १८८ श्लोक १ से ११

आठ जाति के गूढ मंडप—

भित्तिः प्रासादवद् गूढे मण्डपेऽष्टविधेषु च ।
चतुरस्रः सुभद्रश्च तथा प्रतिरथान्वितः ॥१६॥

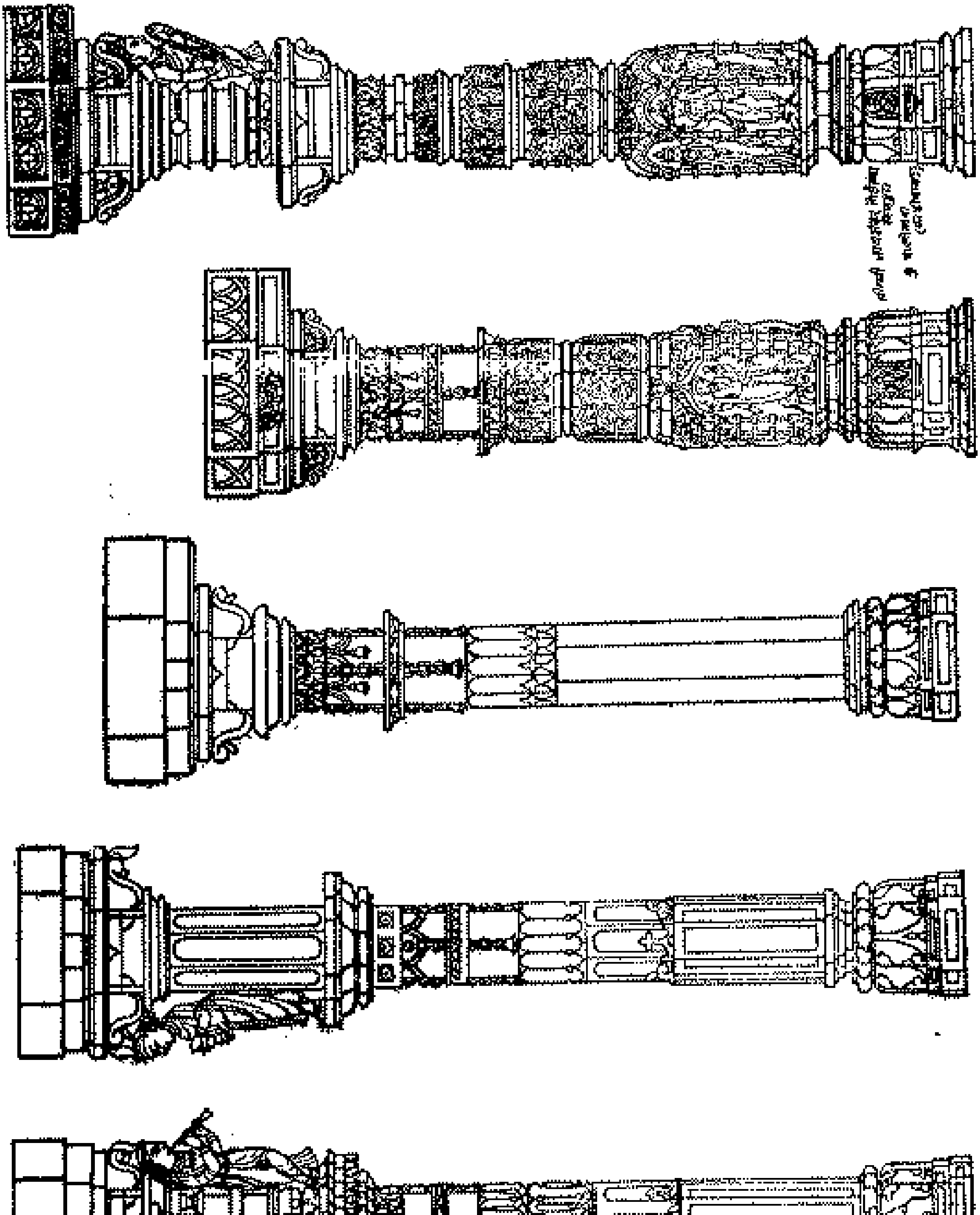

स्तंभों के नमूने

मुखभद्रयुतो वापि द्विविप्रतिरथैर्युतः ।
कर्णोदकान्तरेणाथ भद्रोदकविभूषितः ॥१७॥

आठ प्रकार के गूढ मंडपों की भी दीवार प्रासाद के दीवार जैसी बनावें अर्थात् प्रासाद की दीवार जितने थरवाली हों उतने थरवाली और रूपों की आकृति वाली हो तो रूपों की आकृति वाली गूढ मंडप की दीवार बनानी चाहिये। वे समचोरस, सुभद्र और प्रतिरथ वाला, मुखभद्र और दो या तीन प्रतिरथ वाला, कर्ण जलान्तर वाला अथवा भद्र जलान्तर वाला, ऐसे आठ प्रकार के गूढ मंडप हैं ॥१६-१७॥

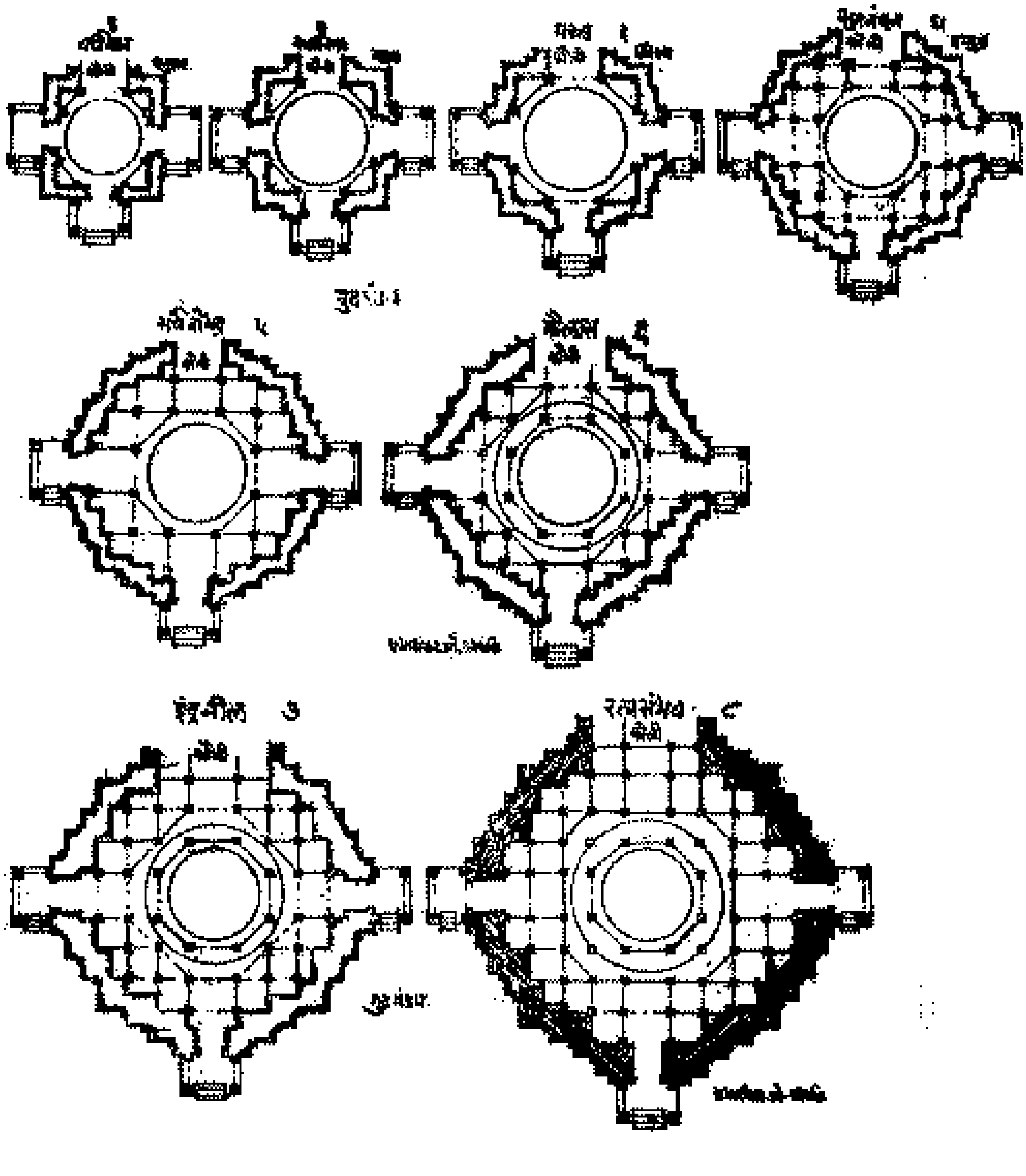

गूढमण्डप की फालना—

कर्णतो द्विगुणं भद्रं पादोनप्रतिकर्णकः ।
भद्रार्धं मुखभद्रं च शेषं षड्वसु भाजितम् ॥१८॥

कोने से दुगुणा भद्र और पौन भाग का प्रतिरथ रक्खें, भद्र से आधा मुखभद्र रक्खें। बाकी नंदी आदि छट्ठ अथवा आठवें भाग की रक्खें ॥१८॥

दलेनार्धेन पादेन दलस्य निर्गमो भवेत् ।
मूलप्रासादवद् बाह्ये पीठजङ्घादिमेखला ॥१९॥

फालनाओं का निर्गम अपला चौथा अथवा आधा भाग का रक्खें तथा पीठ जंघा आदि की मेखलाएं मुख्य प्रासाद के जैसी बाहर निकलती हुई बनावें ॥१९॥

गवाक्षेणान्वितं भद्र-मथ जालकसंयुतम् ।
गूढोऽथ कर्णगूढो वा भद्रे चन्द्रावलोकनम् ॥२०॥

गूढ मंडप के भद्र में जाली अथवा गवाक्ष बनावें। कोने गुप्त (अंधकार मय) रक्खें अर्थात् दीवार बनावें अथवा भद्र में चंद्रावलोकन (खुला भाग) रक्खें ॥२०॥

त्रिद्वारे चैकद्वारेऽथ मुखे कार्या चतुष्किका ।
गूढे प्राकाशके वृत्त-मर्धोदयं करोटकम् ॥२१॥

इत्यष्टगूढमण्डपाः ।

गूढ मंडप में तीन अथवा एक द्वार बनावें और द्वारके आगे चौकी मंडप बनावें। मंडप की गोलाई के विस्तार मान से आधे मान का करोटक (गूमट) का उदय रक्खें ॥२१॥

विशेष जानने के लिये देखें अप० सू० १८७ वर्द्धमानादि अष्टमंडप।

गूमट के उदयका तीन प्रकार—

"अर्धोदयश्च यः प्रोक्तो वामन उदयो भवेत् ।
कृते चैव भवेच्छान्तिः सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥
अर्धोदयश्च नवधा द्वौ भागौ परिवर्जयेत् ।
अनन्त उदयो नाम सर्वलोकसुखावहः ॥
अर्धोदयश्च नवधा त्रयभागान् परित्यजेत् ।
वाराह उदयो नाम अनन्तफलदायकः ॥" ज्ञानरत्नकोशे ।

घूमट का ऊदय विस्तार से आधे मानका रक्खें, यह वामन नाम का उदय कहा जाता है यह सब यज्ञों के फल को देने वाला है और शान्तिदायक है। उदय का नव भाग कर, उन में से दो भाग कम करके सात भाग का उदय रक्खें, उसको अनन्त नाम का उदय कहते हैं, यह सब लोगों के लिये सुख कारक है। नव भाग में से तीन भाग कम करके छह भाग का उदय रक्खें, उसको वाराह नाम का उदय कहते हैं। यह अनन्त फल को देने वाला है।

घूमट का न्यूनाधिक उदय फल--

"उदयाश्च समाख्याता अनन्त फलदायकाः ।
तत्र देशे भवेच्छान्ति-रारोग्यं च प्रजायते ॥
उदये हीनाश्च ये केचित् क्रियन्ते मण्डपा भुवि ।
तत्र मारी महाव्याधी राष्ट्रभङ्गभयं भवेत् ॥
दुर्भिक्षं चातिरौद्रं च राजा च म्रियते तथा ।
धनं निष्फलतां याति शिल्पिनो म्रियन्ते ध्रुवम् ॥" इति ज्ञानरत्नकोशे ।

उदय का जो मान बतलाया है, उसी मान के अनुसार कार्य करने से वह अनन्त फल को देने वाला, देश में शान्ति करने वाला और आरोग्यता को बढ़ाने वाला है। यदि ये मंडप कहे हुए उदय के मान से हीन करें तो देश में महामारी, अनेक प्रकार की व्याधियां, देश भंग का भय, भयंकर दुर्भिक्ष, राजा की मृत्यु, धनकी निष्फलता और शिल्पियों की मृत्यु, इत्यादि उपद्रव होने का भय है।

बारह चौकी मंडप—

एकत्रिवेदषट्सप्ता-कूचतुष्कयस्त्रिकत्रये ।
अग्रे भद्रं विना पार्श्वे पार्श्वयोरग्रतस्तथा ॥ २२॥
अग्रतस्त्रिचतुष्कयश्च तथा पार्श्वद्वयेऽपि च ।
शुकाग्रे चतुष्के वेदिति द्वादश मण्डपाः ॥२३॥

गूढमंडप के आगे एक, तीन, चार, छह, सात और नव चौकी वाले, ये छह प्रकार के मंडप हुए, उनमें छट्ठा नव चौकी वाले मंडप के आगे एक चौकी हो ७, अथवा आगे चौकी न हो परन्तु दोनों बगल में एक एक चौकी हो ८, तथा दोनों बगल में और आगे एक एक चौकी हो ९, अथवा आगे तीन चौकी हो, अर्थात तीन तीन चौकी वाली चार लाईन हो १०, इसके दोनों बगल में एक २ चौकी हो ११ अथवा दोनों बगल में और आगे एक २ चौकी हो १२, ऐसे बारह प्रकार के चौकी मंडप हैं ॥२२-२३॥

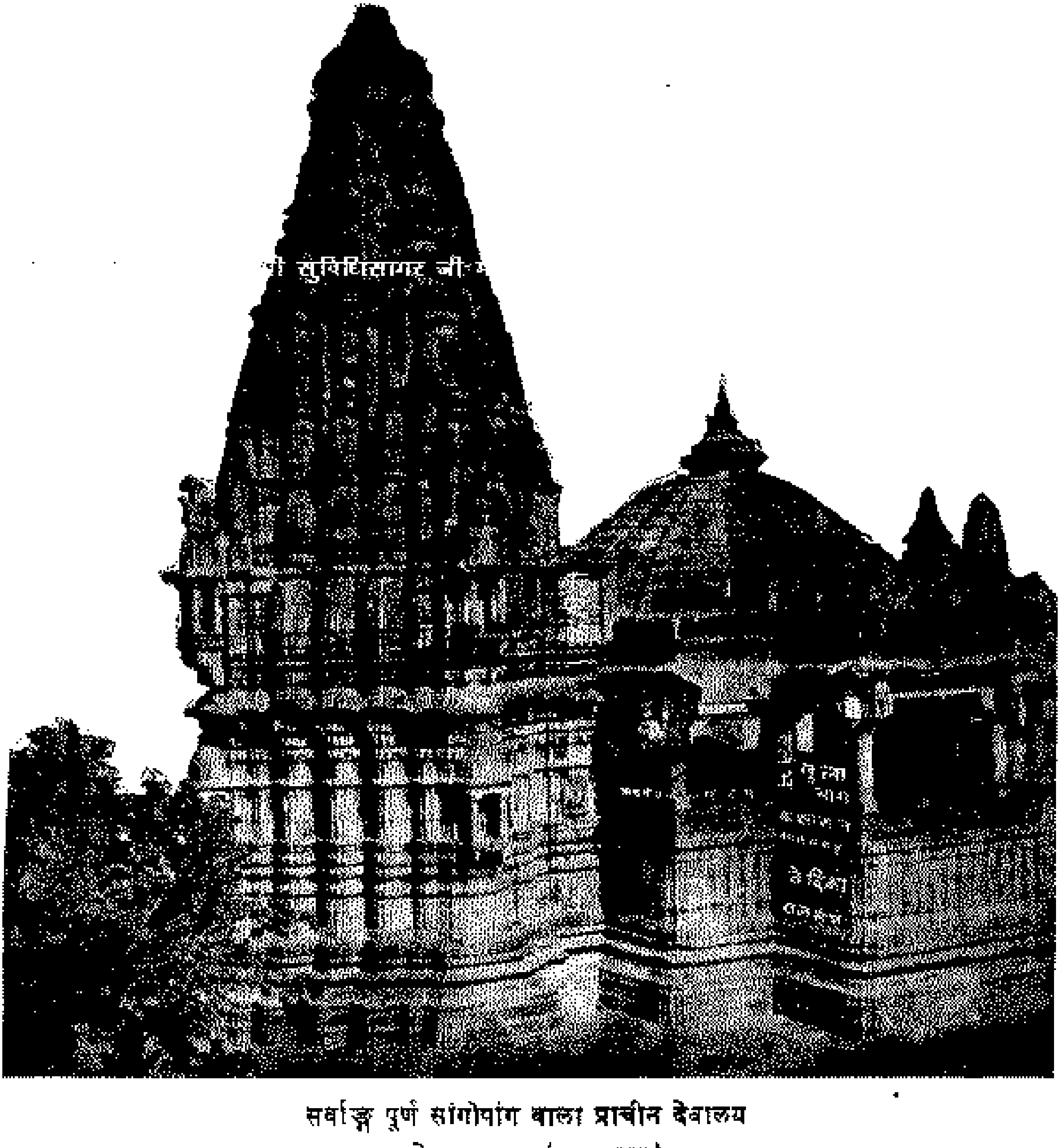

सर्वाङ्ग पूर्ण सांगोपांग वाला प्राचीन देवालय
आमेर-जयपुर (राजस्थान)

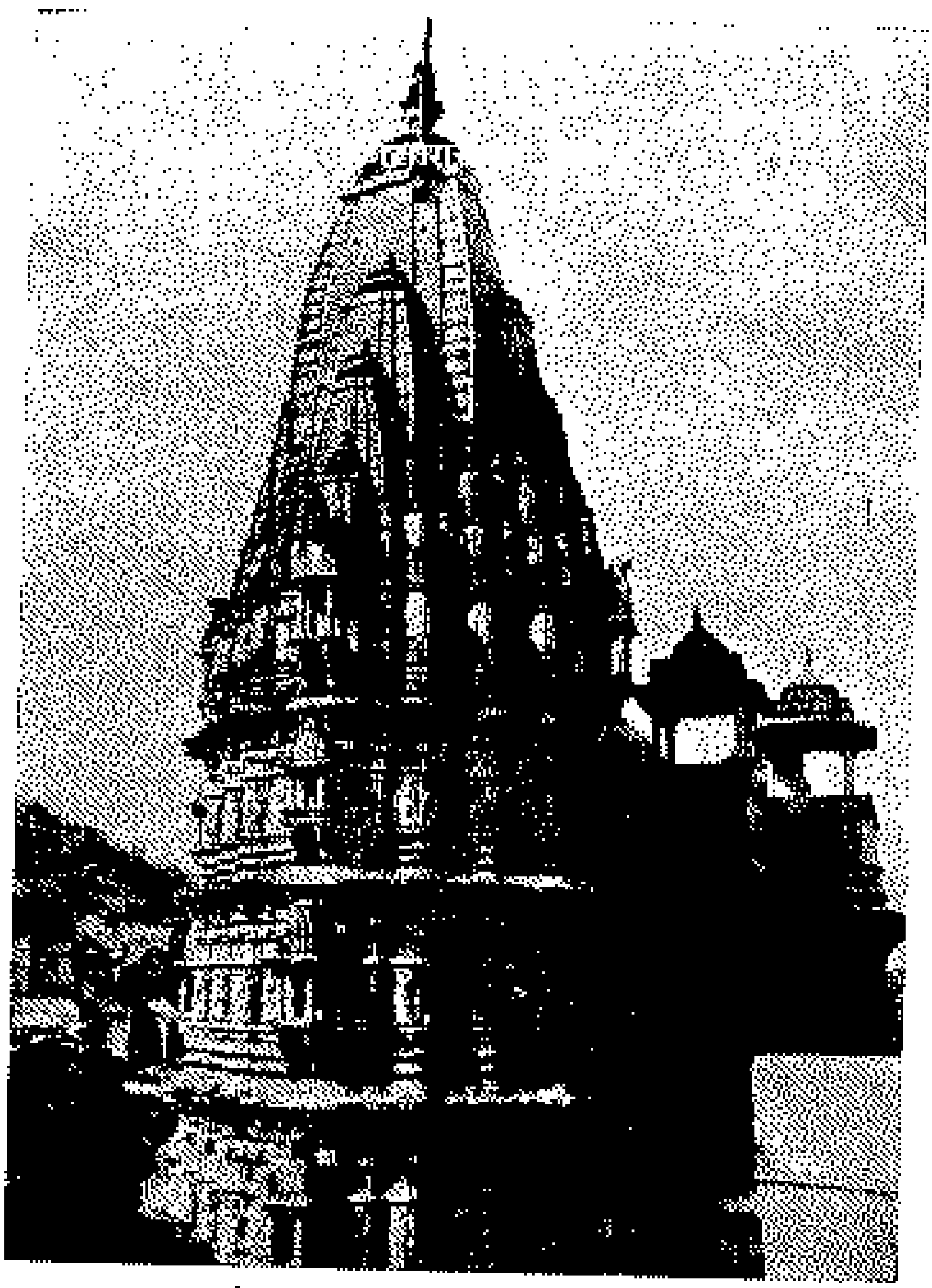

जगतशरणजी का प्राचीन् मेरु मंडोवर वाला देवालय
आमेर-जयपुर (राजस्थान)

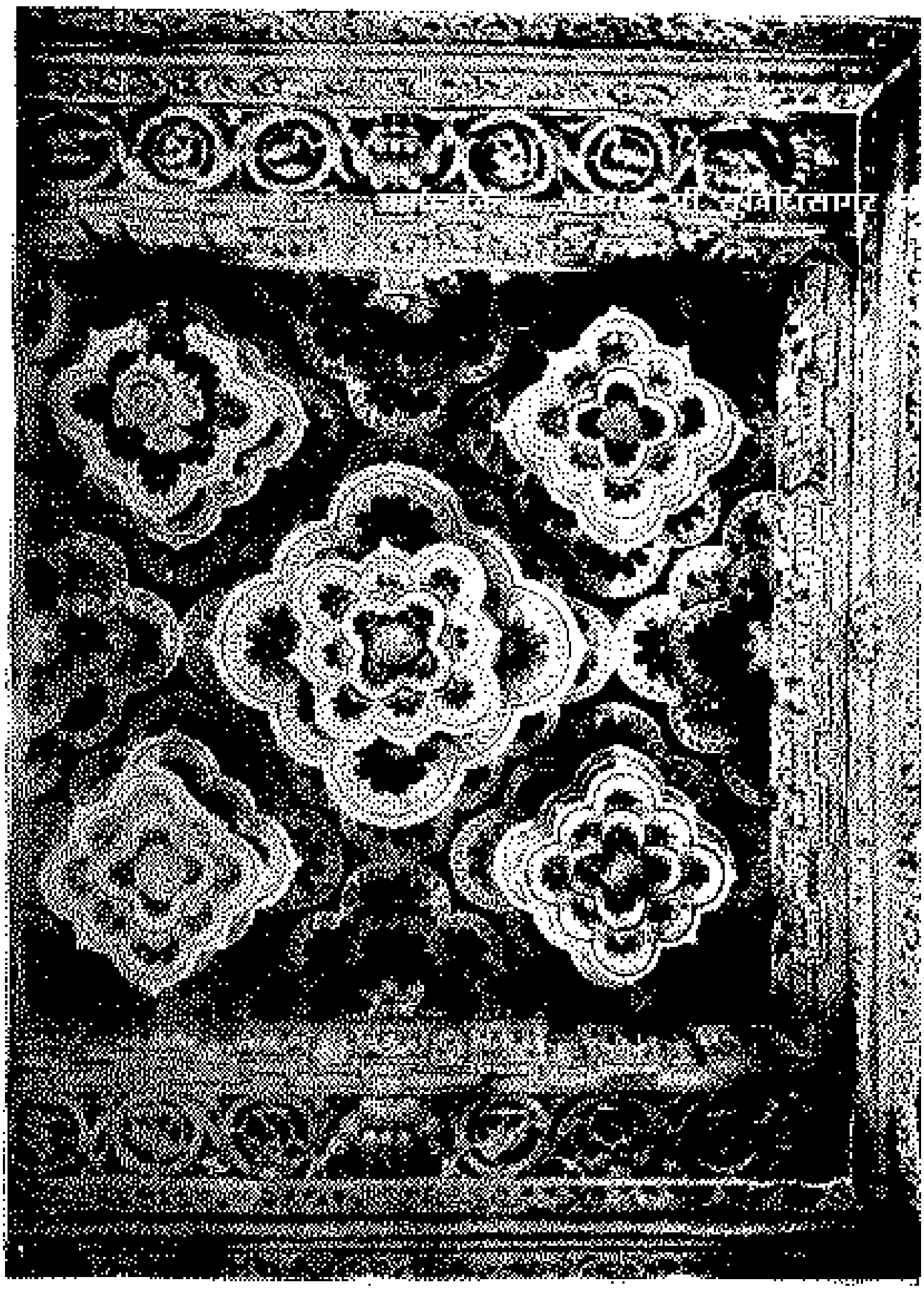

क्षिप्त वितान का दृश्य – जैन मंदिर-आबू

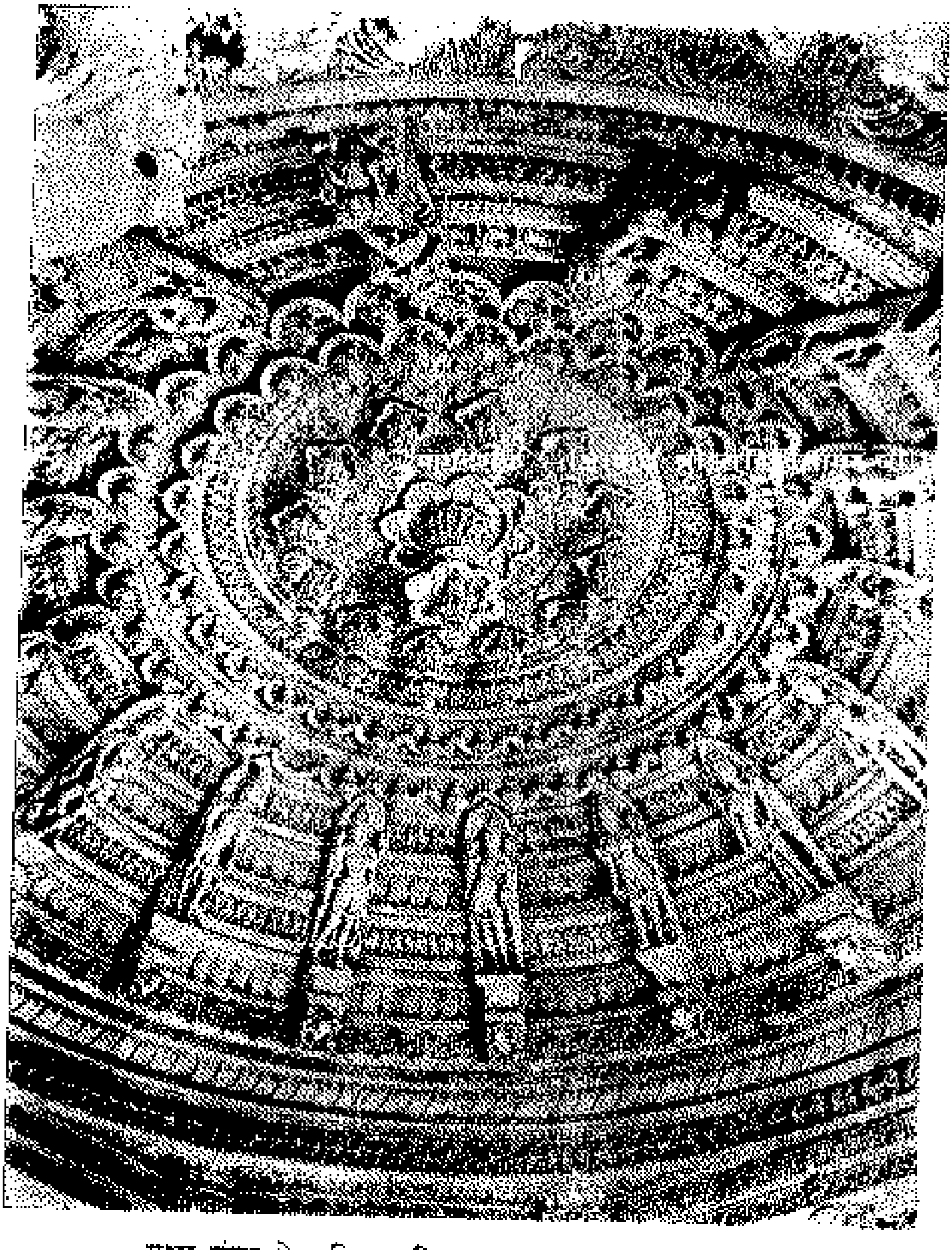

सभा मंडप के उत्क्षिप्त वितान का भीतरी कलामय दृश्य
जैन मंदिर - आबू

अपराजितपृच्छा सूत्र १८७ में विशेषरूप से कहा है कि—

गूढ़मंडप के आगे एक चौकी वाला सुभद्र १, तीन चौकी वाला किरीटी २, तीन चौकी के आगे एक चौकी, ऐसा चार चौकी वाला दुंदुभी ३, तीन २ चौकी की दो लाईन, ऐसा छह चौकी वाला प्रान्त ४, छह चौकी के आगे एक चौकी ऐसा सात चौकी वाला मनोहर कामद ५,

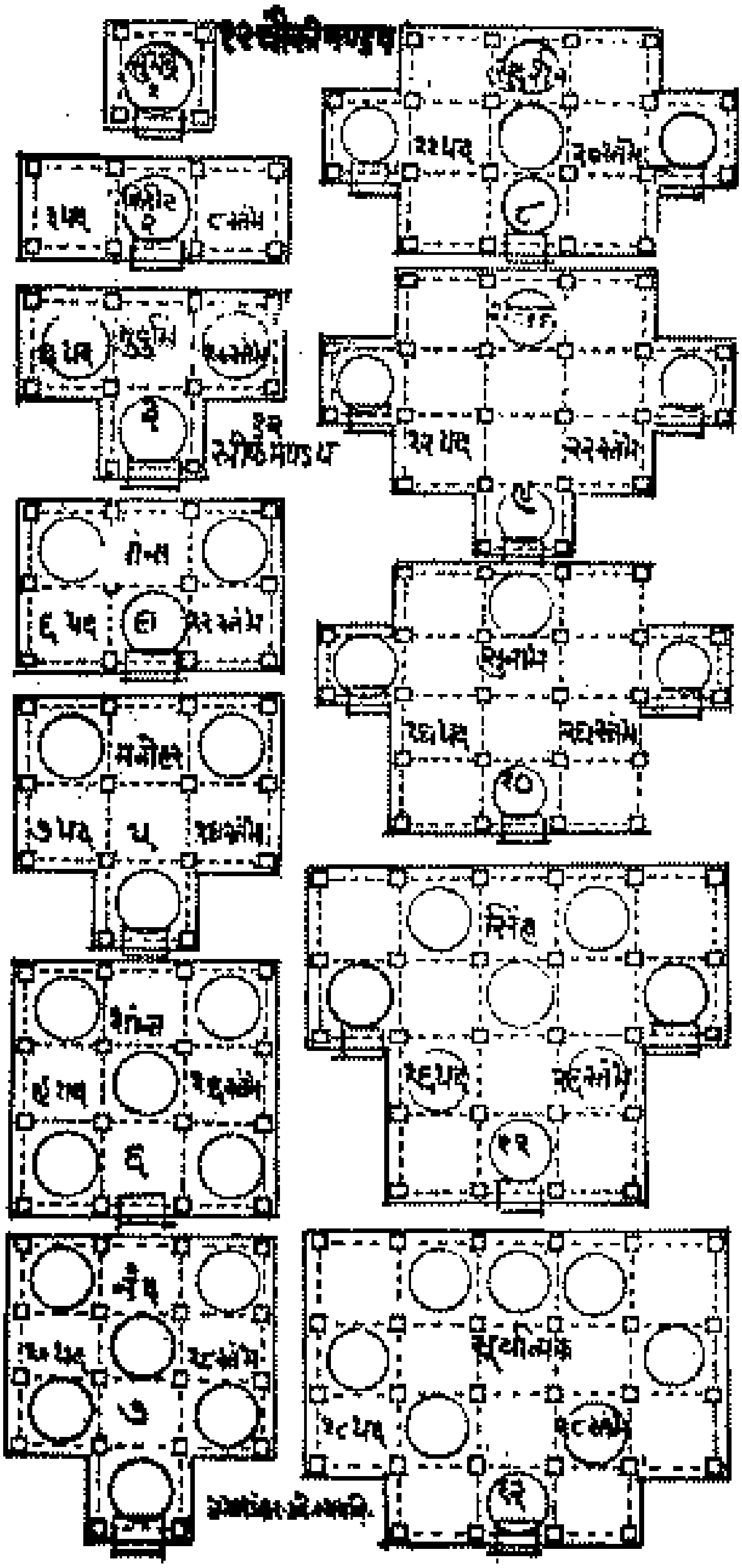

तीन २ चौकी की तीन लाईन ऐसा नव चौकी वाला शान्त नाम का मंडप कहा जाता है ।।६।। शान्तमंडप के आगे एक चौकी हो तो नंद ७, शान्तमंडप के आगे चौकी न हो, परन्तु दोनों बगल में एक २ चौकी हो तो सुदर्शन ८, शान्तमंडप के आगे और दोनों बगल में एक २ चौकी हो तो रम्यक ९, तीन २ चौकी वाली चार लाईन हो तो सुनाभ १०, सुनाभ मंडप के दोनों बगल में एक २ चौकी हो तो सिंह ११, और सिंह मंडप के आगे एक चौकी हो तो सूर्यात्मक नामका मंडप १२ कहा जाता है । इन मंडपों के ऊपर गुमट अथवा संवरणा किया जाता है ।

गूढस्याग्रे प्रकर्तव्या नानाचतुष्किकान्विताः ।
चतुरस्रादिभेदेन वितानैर्बहुभिर्युताः ।।२४।।

इति द्वादशचतुष्किकमंडपाः ।

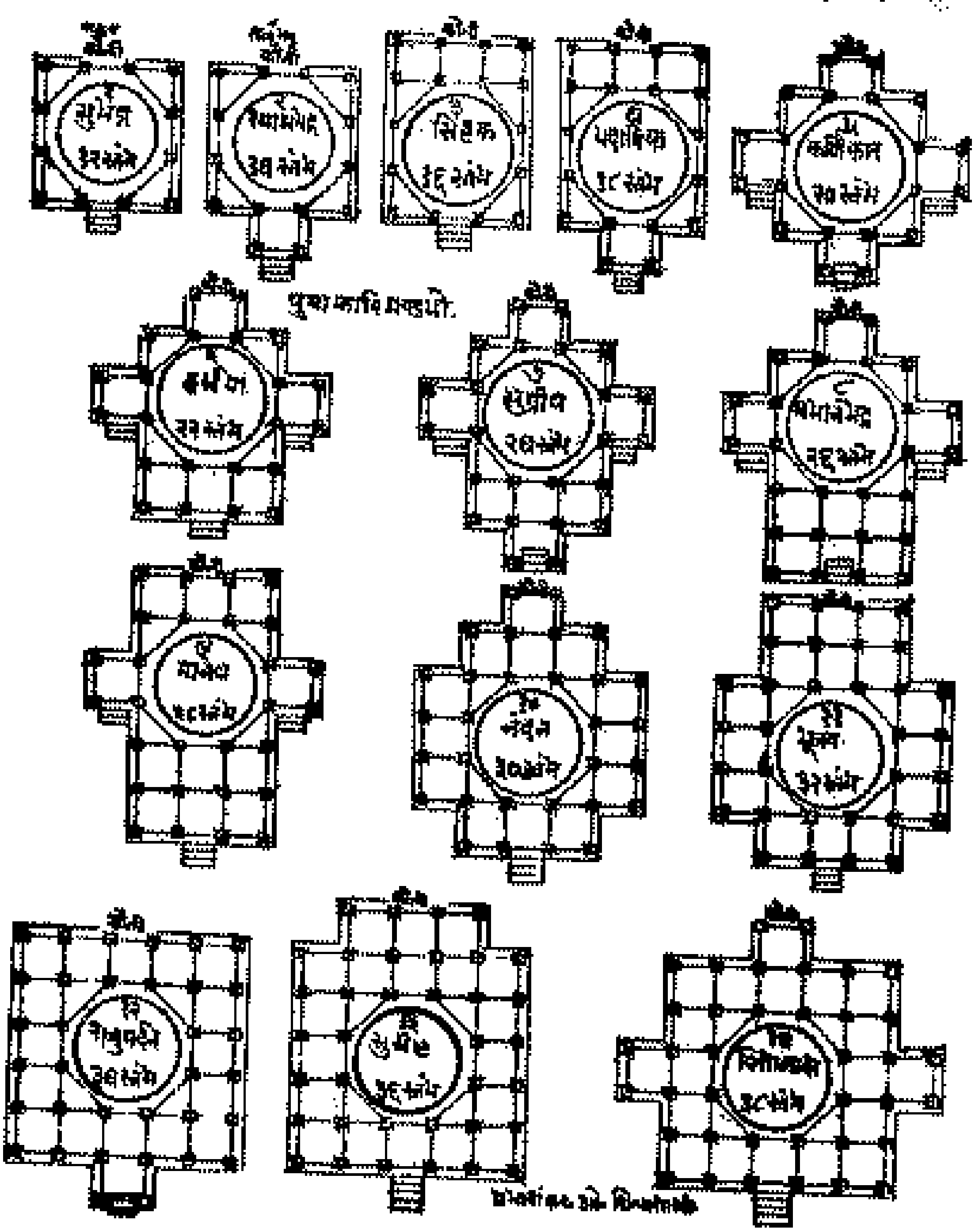

ऐसे ये बारह प्रकार के मंडप गूढ मंडप के आगे अनेक प्रकार के चौकी वाले किये जाते हैं। तथा ये मंडप समचोरस आदि आकृति वाले और अनेक प्रकार के वितान (चंदोवा) वाले होते हैं ।।२४।।

नृत्यमण्डप—

त्रिकाग्रे रङ्गभूमिर्या तत्रैव नृत्यमण्डपः ।
प्रासादाग्रेऽथ सर्वत्र प्रकुर्याच्च विधानतः ।।२५।।

चौकी मंडप के आगे जो रंगभूमि है, उसी भूमि के ऊपर ही नृत्यमंडप किया जाता है। ऐसा सब प्रासादों के आगे बनाने का विधान है ।।२५।।

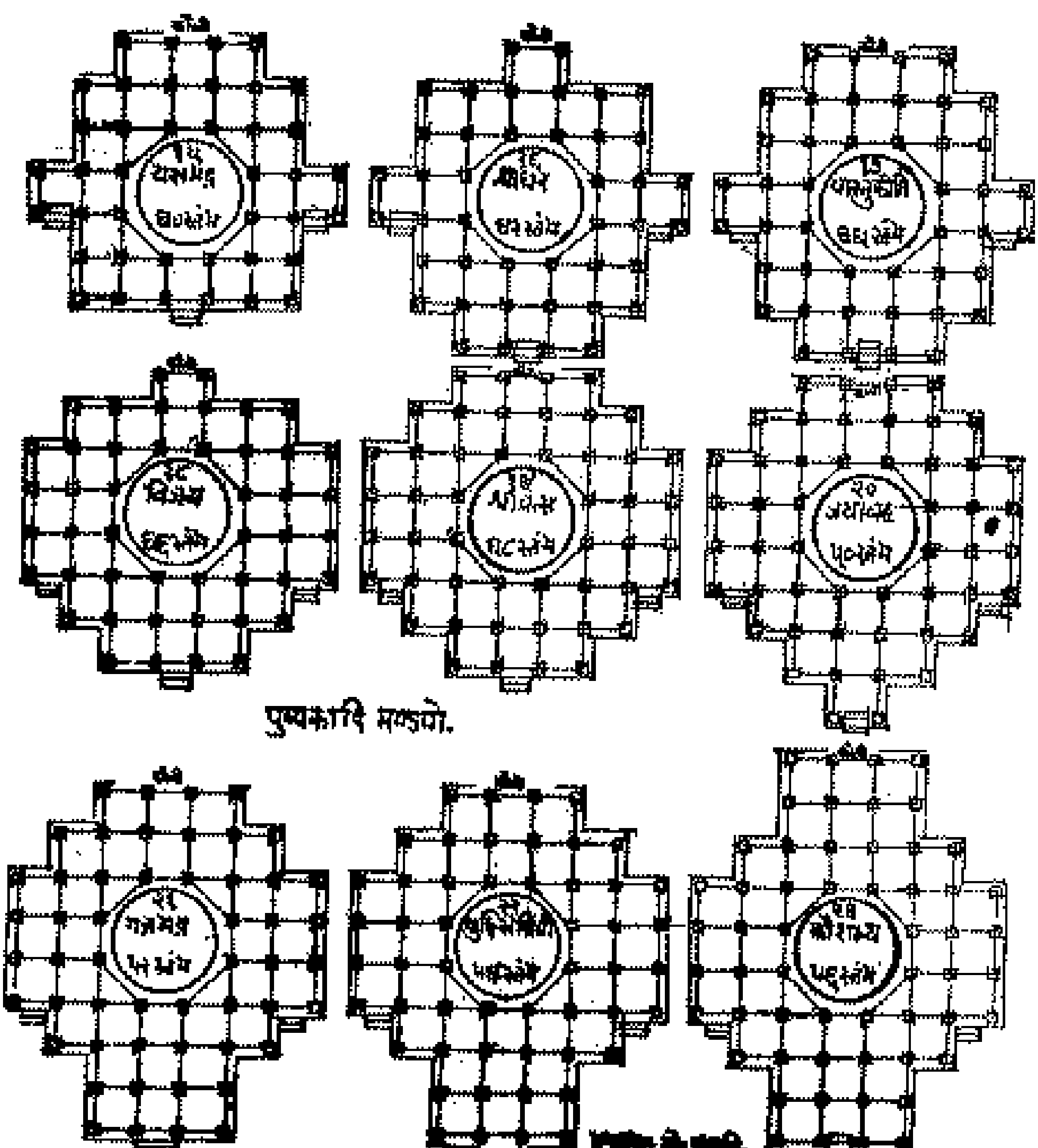

पुष्यकादि मण्डपो.

सप्तविंशति मण्डप——

सप्तविंशतिरुक्ता ये मण्डपा विश्वकर्मणा ।
तलैस्तु विषमैस्तुल्यैः खण्डैः स्तम्भैः समैस्तथा ॥२६॥
प्रथमो द्वादशस्तम्भो द्विद्विस्तम्भविवर्द्धनात् ।
यावत् षष्टिश्चतुर्युक्ताः सप्तविंशतिमण्डपाः ॥२७॥

श्री विश्वकर्मा ने जो सत्ताईस प्रकार के मंडप कहे हैं उनके तल सम अथवा विषम कर सकते हैं, परन्तु तला (खंड ?) और स्तंभ ये सम संख्या में ही रखना चाहिये। पहला मंडप बारह स्तंभ का है। पीछे दो २ स्तंभ की वृद्धि चौसठ स्तंभ तक बढ़ाने से सत्ताईस मंडप होते हैं ॥२६–२७॥

विशेष जानने के लिये देखें समरांगण सूत्रधार अध्याय ६७ और अपराजितपृच्छा सूत्र १८६ वां। इन दोनों में प्रथम मंडप चौसठ स्तंभों का लिखा है, पीछे दो २ स्तंभ घटाने से सत्ताईसवां मंडप बारह स्तंभ का बनाने को कहा है।

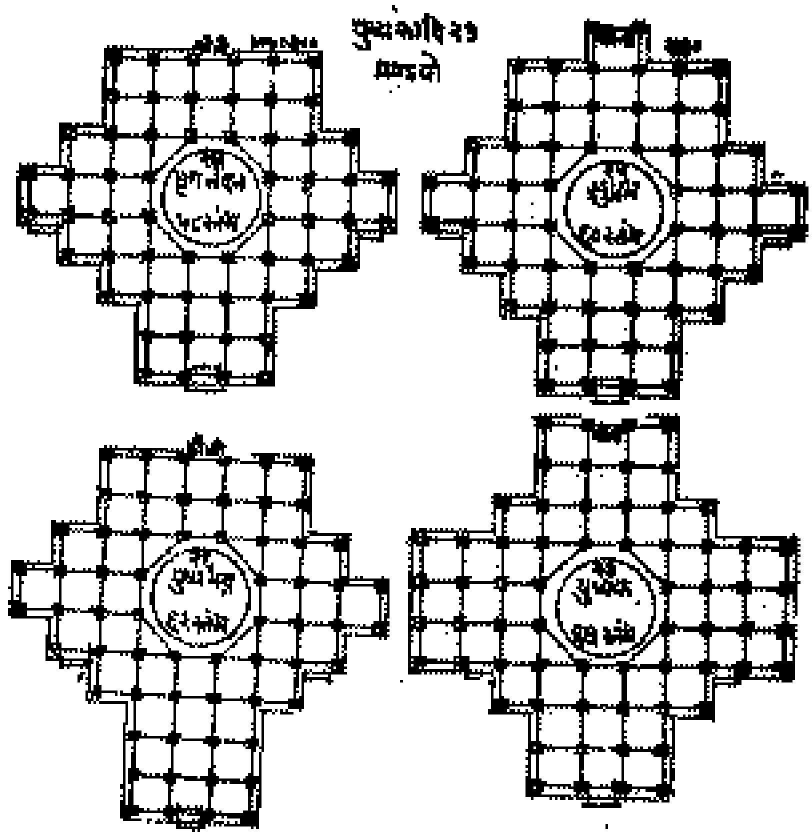

अष्टास्र और षोडशास्र——

क्षेत्रार्धे स्वषडंशोन-मेकाक्षे ऽष्टास्रमुच्यते ।
कलाक्षः क्षेत्रषड्भागास्तत्षडंशेन संयुतः ॥२८॥

क्षेत्र के विस्तार के आधे का छह भाग करें, उनमें से एक भाग कम करके बाकी पांच भाग के मान की अष्टास्र की एक भुजा का मान आवें। यदि षोडशास्र बनाना हो तो क्षेत्र के विस्तार का छह भाग करें। उनमें से एक भाग का छट्ठा भाग विस्तार के छट्ठे भाग में जोड़ देने से जो मान हो, वही मानकी षोडशास्र की एक भुजा का मान होता है ॥२८॥

वितान (चंदोवा-गूमट)—

अष्टास्रं षोडशास्रं च वृत्तं कुर्यात् तदूर्ध्वतः ।
उदयं विस्तरार्धेन षड् पञ्च सप्त वा भवेद् ॥२९॥

मंडप के चंदोवा का उदय बनाने की क्रिया इस प्रकार है। प्रथम पाट के ऊपर अष्टास्र बना कर उसके ऊपर षोडशास्र बनावें और षोडशास्र के ऊपर गोलाई बनावें। मंडप के विस्तार से आधा वितान का उदय रक्खें। उदय में पांच छह अथवा सात थर बनावें ॥२९॥

वितान (गूमट) के थर—

कर्णदर्दरिका सप्त-भागेन निर्गमोन्नता[1] ।
रूपकण्ठस्तु पञ्चांशो द्विभागेनात्र[2] निर्गमः ॥३०॥

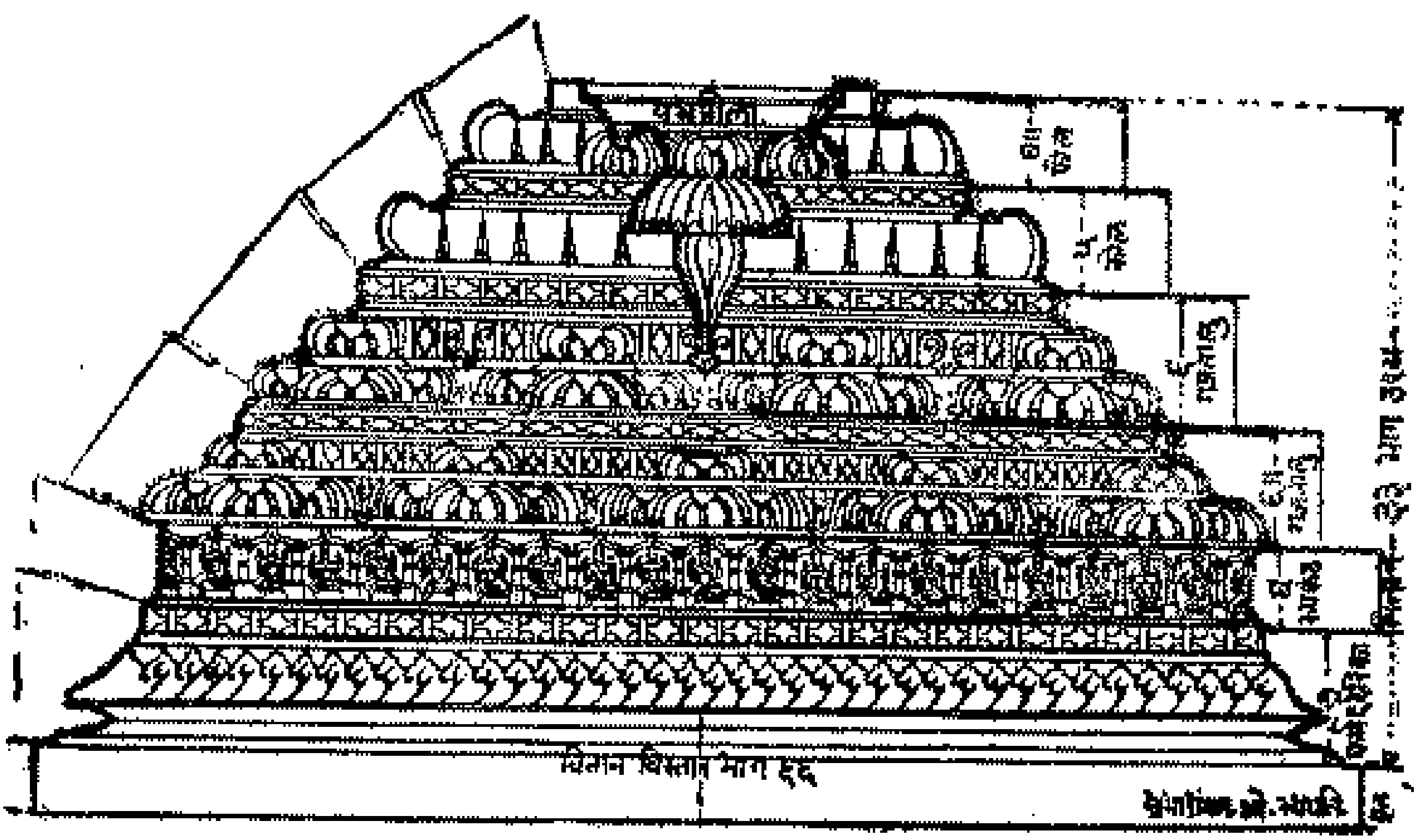

१. "निर्गमोच्छ्रयः।" २. 'द्विभागोन्नत।'

कर्णदर्दरिका का थर सात भाग के उदय में और सात भाग निर्गम में रक्खें। रूपकंठ का उदय पांच भाग और निर्गम दो भाग रक्खें ॥३०॥

विद्याधरैः समायुक्तं षोडशाष्टद्विकाकरैः ।
जिनसंख्यामितैर्वापि दन्ततुल्यैर्विराजितम् ॥३१॥

आठ, बारह, सोलह, चौबीस अथवा बत्तीस विद्याधरों से युक्त सुन्दर वितान बनावें ॥३१॥

विद्याधरः पृथुत्वेन सप्तांशो निर्गमो[1] दश ।
तदूर्ध्वे चित्ररूपाश्च नर्तक्यः[2] शालभञ्जिकाः ॥३२॥

विद्याधर का थर विस्तार में सात भाग और निर्गम में दस भाग रक्खें। उसके ऊपर अनेक प्रकार से नृत्य करती हुई, अनेक स्वरूप वाली देवांगना रक्खें ॥३२॥

गजतालुस्तु षट्सार्धा प्रथमा द्वितीया तु षट् ।
तृतीया सार्धपञ्चांशा कोलानि त्रीणि पंच वा ॥३३॥

प्रथम गजतालु साढे छह भाग, दूसरा गजतालु छह भाग और तीसरा गजतालु साढे पांच भाग का रक्खें। तीन अथवा पांच कोल का थर बनावें ॥३३॥

मध्ये वितानं कर्तव्यं चित्रवर्णविराजितम् ।
नाटकादिकथारूपै-र्नानाकारैर्विराजितम् ॥३४॥

मंडप के मध्य में वितान (चंदोवा) अनेक प्रकार के चित्रों से शोभायमान बनावें तथा संगीत और नृत्य करती हुई देवांगनाओं से और पुराणादि के अनेक प्रकार के कथारूपों से सुशोभित बनावें ॥३४॥

वितान संख्या—

एकादशशतान्येव वितानानां त्रयोदश ।
शुद्धसङ्घाटमिश्राणि क्षिप्तोत्क्षिप्तानि यानि च ॥३५॥

ग्यारहसौ तेरह प्रकार के वितान हैं। वे शुद्ध संघाट (समतल वाले), संघाटमिश्र सम विषम तल वाला, क्षिप्त (नीचे भाग में लटकते थरों वाला) और उत्क्षिप्त (ऊपर उठी हुई गोलाई वाला) ये चार प्रकार के वितान हैं ॥३५॥

१. 'निर्गमोदयः।' २. 'नृत्यशोभिताः।'

अपराजित पृच्छा सूत्र. १८६ में श्लोक ४ में वितान के मुख्य तीन प्रकार लिखे हैं। देखो—

"वितानानि विचित्राणि क्षिप्तान्युत्क्षिप्तकानि च।
समतलानि ज्ञेयानि उदितानि त्रिधा क्रमत् ॥"

क्षिप्त, उत्क्षिप्त और समतल ये तीन प्रकार के वितान कहे हैं।

वर्ण और जाति के चार प्रकार के वितान—

"पद्मको नाभिच्छन्दश्च सभामार्गस्तृतीयकः।
मन्दारक इति प्रोक्तो वितानाश्च चतुर्विधाः ॥" अप० सू० १८६ श्लो० ६

पद्मक, नाभिछंद, सभामार्ग और मन्दारक ये चार प्रकार के वितान हैं।

"पद्मको विप्रजातिः स्यात् क्षत्रियो नाभिच्छन्दकः।
सभामार्गो भवेद् वैश्यः शूद्रो मन्दारकस्तथा ॥" श्लो० ७

ब्राह्मण जाति का पद्मक, क्षत्रिय जातिका नाभिछंद, वैश्यजातिका सभामार्ग और शूद्रजातिका मंदारक नामका वितान हैं।

"पद्मकः श्वेतवर्णः स्यात् क्षत्रियो रक्तवर्णकः।
सभामार्गो भवेत् पीतो मन्दारः सर्ववर्णकः ॥" श्लो० ८

सफेद वर्ण का पद्मक, लाल वर्ण का नाभिछंद, पीले वर्ण का सभामार्ग और अनेक वर्ण का मंदारक है।

फिर अपराजित पृच्छा सूत्र १६० में भी चार प्रकारके वितान कहे है—

"वितानांश्च प्रवक्ष्यामि भेदैस्तश्च चतुर्विधम्।
पद्मकं नाभिच्छन्दं च सभा मन्दारकं तथा ॥ श्लो० १
शुद्धश्च छन्दसंघाटो भिन्न उद्भिन्न एव च।
एतेषां सन्ति ये भेदाः कथ्यते तान् समासतः ॥" श्लो० २

चार प्रकार के वितानों को कहता हूं। पद्मक, नाभिच्छंद, सभा और मन्दारक इन चार प्रकार के वितान के शुद्ध, संघाट, भिन्न और उद्भिन्न ये चार भेद हैं। उसको संक्षेप से कहता हूं।

"एकत्वे च भवेच्छुद्धः संघाटश्च द्विमिश्रणात्।
त्रिमिश्राश्च तथा भिन्ना उद्भिन्नाश्चतुरन्विताः ॥" श्लो० ३

एकही प्रकारकी आकृति वाले शुद्ध, दो प्रकार की मिश्र आकृति वाले संघाट, तीन प्रकार की आकृति वाले भिन्न और चार प्रकार की आकृति वाले उद्भिन्न नामके वितान है।

"पद्मनाभं सभापद्मं सभामन्दारकं तथा।
कमलोद्भवमाख्यातं मिश्रकाणां चतुष्टयम् ॥" श्लो० ४

पद्मनाभ, सभापद्म, सभामन्दारक और कमलोद्भव ये चार मिश्र जाति के वितान हैं। "किन्तु इसमें इसकी आकृतियों का वर्णन नहीं लिखा है।"

वितानानि विचित्राणि वस्त्रचित्रादिभेदतः।
शिल्पिलोके प्रवर्त्तन्ते तस्मादूह्यानि लोकतः ॥३६॥

जैसे अनेक प्रकार के चित्र आदि से विभिन्न प्रकार के वस्त्र हैं, वैसे ही शिल्पशास्त्र में अनेक प्रकार के वितान हैं। ये अन्य शास्त्रों से विचार करके बनावें ॥३६॥

रंगभूमि—

मण्डपेषु च सर्वेषु पीठान्ते रङ्गभूमिका।
कुर्याद्वितानपट्टेन चित्रपाषाणजेन च ॥३७॥

इति मण्डपाः।

समस्त मंडपों की पीठ के नीचे की जो भूमि है, वह रंग भूमि कही जाती है। वह बड़े लंबे चौड़े पाषाणों से तथा अनेक प्रकार के चित्र विचित्र पाषाणों से बनाने चाहिए ॥३७॥

बलाणक का स्थान—

बलाणं देवगेहाग्रे राजद्वारे गृहे पुरे।
जलाश्रयेऽथ कर्त्तव्यं सर्वेषां मुखमण्डपम् ॥३८॥

देवालय के द्वार के आगे तथा प्रवेश द्वारके ऊपर, राजमहल, गृह, नगर और जलाश्रय (बावड़ी, तालाब आदि) इन सब के द्वार के आगे मुखमंडप (बलाणक) किया जाता है ॥३८॥

बलाणक का मान—

जगतीपादविस्तीर्णं पादपादेन वर्जितम्।
शालालिन्देन गर्भेण प्रासादेन समं भवेत् ॥३९॥

बलाणक का विस्तार जगती का चौथा भाग का अथवा चौथे का चौथा भाग न्यून, शाला और अलिंद के मान से, प्रासाद के गर्भमान के अथवा प्रासाद के मान के बराबर बनावें ॥३९॥

प्रासाद में बलाणक का स्थान—

उत्तमे कन्यसं मध्ये मध्यं ज्येष्ठं तु कन्यसे।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च-रससप्तपदान्तरे ॥४०॥

ज्येष्ठमान के प्रासाद में कनिष्ठ मान का, मध्यममान के प्रासाद में मध्यम मान का और कनिष्ठमान के प्रासाद में ज्येष्ठमान का बलाणक किया जाता है। यह प्रासाद से एक, दो तीन, चार, पांच, छह अथवा सात पद के अन्तर से (दूर) बनाया जाता है * ॥४०॥

मूलप्रासादवद् द्वारं मण्डपे च बलाणके ।
न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं दैर्घ्ये हस्ताङ्गुलाधिकम् ॥४१॥

मंडप का द्वार और बलाणक का द्वार मुख्य प्रासाद के द्वार के बराबर रखना चाहिये । यदि बढ़ाने की आवश्यकता हो तो द्वार की ऊंचाई में हस्तांगुल (जितने हाथ का हो उतने अंगुल) बढ़ा सकते हैं। 'यह नीचे के भाग में बढ़ाना चाहिये, क्यों कि उत्तरंग तो सब समसूत्र में रखा जाता है ऐसा शास्त्रीय कथन है ॥४१॥

उत्तरंग का पेटा भाग—

पेटकं चोत्तरङ्गानां सर्वेषां समसूत्रतः ।
अङ्गणेन समं पेटं जगत्याश्चोत्तरङ्गजम् ॥४२॥

सब उत्तरंग का पेटा भाग (उत्तरंग के नीचे का भाग) समसूत्र में रखना चाहिये और जगती के द्वार के उत्तरंग का पेटा भाग प्रासाद के प्रांगन जगती के तयला बराबर रखना चाहिये ॥४२॥

पांच प्रकार के बालाणक—

जगत्यग्रे चतुष्किका[1] वामनं तद् बलाणकम् ।
वामे च दक्षिणे द्वारे वेदिकामत्तवारणम् ॥४३॥

जगती के आगे की चौकी के ऊपर जो बलाणक किया जाता है, वह वामन नामका बलाणक कहा जाता है। उसके बायीं और दाहिनी ओर के द्वार पर वेदिका और मत्तवारण किया जाता है ॥४३॥

ऊर्ध्वा भूमिः प्रकर्त्तव्या नृत्यमण्डपसूत्रतः ।
मत्तवारणं वेदी च वितानं तोरणैर्युता ॥४४॥

---

* अपराजित पृच्छा सूत्र १२२ श्लोक १० में एक से आठ पद के अंतरे भी बनाना लीखा है।
१ 'चतुष्की या'।

बलाणक की ऊर्ध्वभूमि नृत्यमंडप के समसूत्र में रखनी चाहिये। तथा मत्तवारण, वेदी, वितान और तोरणों से शोभायमान बनानी चाहिए ॥४४॥

राजद्वारे बलाणो च पञ्च वा सप्तभूमिकाः ।
तद्विमानं बुधैः प्रोक्तं पुष्करं वारिमध्यतः ॥४५॥

राजद्वार के ऊपर जो पांच अथवा सात भूमिवाला बलाणक किया जाता है, उसको विद्वान् शिल्पी विमान अथवा उत्तुंग नामका बलाणक कहते हैं। तथा जलाश्रय के बलाणक को पुष्कर नामका बलाणक कहते हैं ॥४५॥

हर्म्यशालो गृहे वापि कर्त्तव्यो गोपुराकृतिः ।
एकभूम्यादित्रिभूम्यन्तं गृहाग्रद्वारमस्तके ॥४६॥

इति पंचबलाणकम् ।

गृहद्वार के आगे एक, दो अथवा तीन भूमिवाला जो बलाणक किया जाय, उसका नाम हर्म्यशाल है। वह गोपुराकृति वाला बनाया जाता है। (किले के द्वार के ऊपर जो बलाणक किया जाता है, उसको गोपुर नाम का बलाणक कहते हैं)।

कौन २ देव के आगे बलाणक करना—

"शिवसूर्यौ ब्रह्मविष्णू चण्डिका जिन एव च।
एतेषां च सुराणां च कुर्यादग्रे बलाणकम् ॥" अप० सू० १२३

शिव, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, चंडिका और जिन, इन देवों के आगे बलाणक बनाना चाहिए।

संवरणा—

संवरणा प्रकर्त्तव्या प्रथमा पञ्चघण्टिका ।
चतुर्घण्टाभिवृद्धया च यावदेकोत्तरं शतम् ॥४७॥

मंडप आदि के ऊपर गुमटी के स्थान पर संवरणा की जाती है। प्रथम संवरणा पांच घंटी की है। आगे प्रत्येक संवरणा की चार चार घंटी की वृद्धि से एक सौ घंटी तक बढाया जाता है ॥४७।

पञ्चविंशतिरित्युक्ताः प्रथमा वसुभागिका ।
वेदोत्तरं शतं यावद् वेदांशा वृद्धिरिष्यते ॥४८॥

उपरोक्त घंटिका की संख्यानुसार संवरणा पच्चीस प्रकार की हैं। उन में प्रथम संवरणा की भूमि का आठ आठ भाग करें। पीछे प्रत्येक संवरणा में चार चार भाग एक सौ चार भाग तक बढ़ाने चाहिये ॥४८॥

भद्रार्धे रथिकार्धे च तवङ्ग वामदक्षिणे ।
अर्धोदयेन रथिका घण्टा कूटं तवङ्गकम् ॥४९॥

भद्रार्ध की रथिकार्ध के मान का दोनों तरफ तवंग बनावें। रथिका, घंटा, कूट और तवंग, ये विस्तार से आधा उदय में रक्खें ॥४९॥

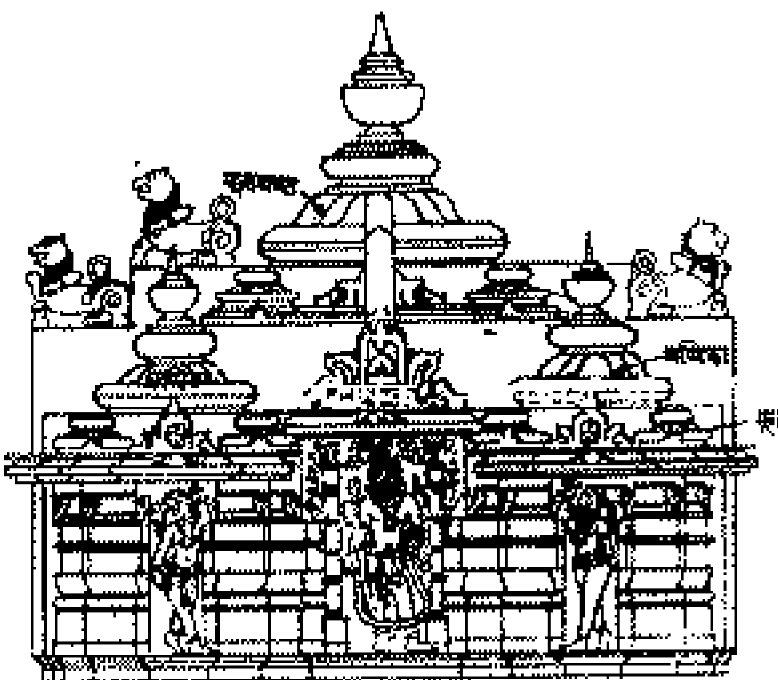

पुष्पिका नाम संवर्णा (१) घंटिका १, कूट १६, सिंह ८, ...
प्रासाद... प्रो. ...

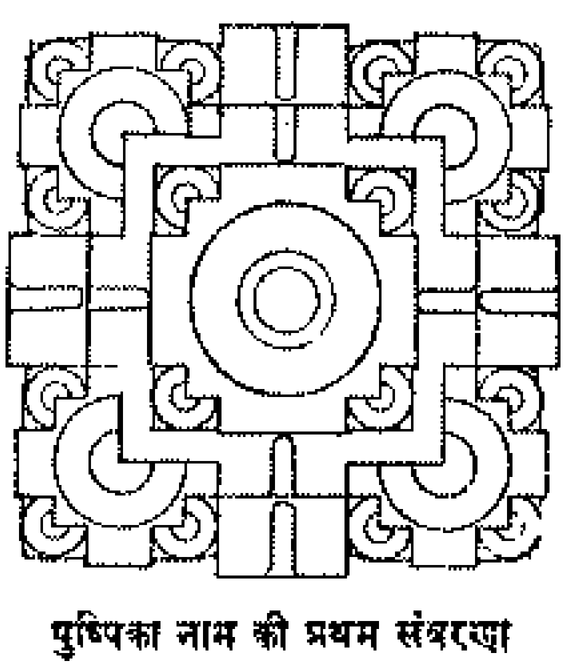

पुष्पिका नाम की प्रथम संवरणा

प्रथम संवरणा—

कलाकूटान्विता पूर्वा पञ्चभिः कलशैर्युता ।
भागतुल्यैस्तथा सिंहै-रेवमन्याश्च लक्षिताः ॥५०॥

इति मण्डपोर्ध्वसंवरणाः ।

इति श्री सूत्रधार मण्डनविरचिते प्रासादमण्डने मण्डपलक्षण-संवरणाधिकारे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

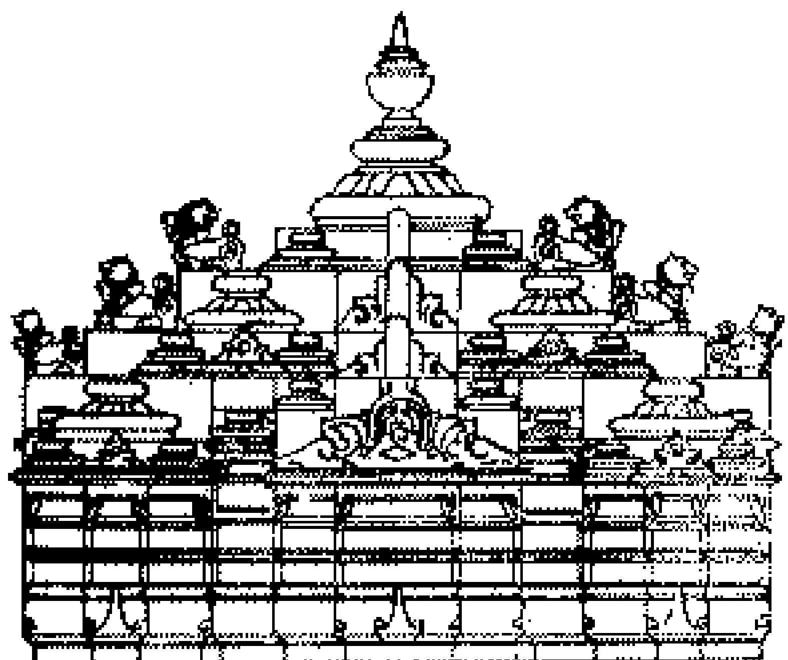

नंदिनी नाम संवर्णा (४) भाग १२. घंटिका ५. कूट ६८, सिंह ३२.
[illegible]

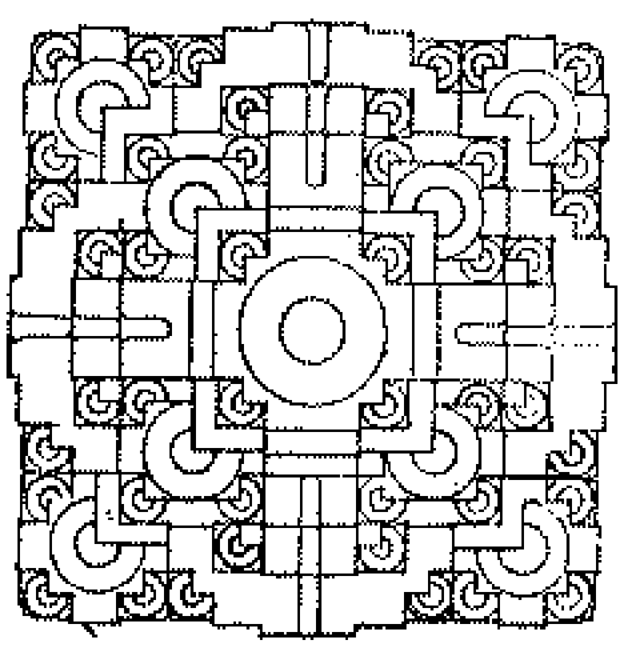

नंदिनी नाम की दूसरी संवरणा

प्रथम संवरणा सोलह कूट और पांच घंटाकलश वाली है। तथा कर्ण और उद्गम के के ऊपर तल भाग के तुल्य (आठ) सिंह रक्खें। इस प्रकार अन्य संवरणा बनायी जाती है ॥५०॥

पच्चीस संवरणा के नाम—

"पुष्पिका नन्दिनी चैव दशाक्षा देवसुन्दरी।
कुलतिलका रम्या च उद्भिन्ना च नारायणी ॥
नलिका चम्पका चैव पद्माख्या च समुद्भवा।
त्रिदशा देवगांधारी रत्नगर्भा चूडामणिः ॥
हेमकूटा चित्रकूटा हिमाख्या गन्धमादिनी।
मन्दरा मालिनी ख्याता कैलासा रत्नसम्भवा ॥
मेरुकूटोद्भवा ख्याताः संख्यया पञ्चविंशतिः।"

अप० सूत्र १९२ श्लोक २ से ५

पुष्पिका, नन्दिनी, दशाक्षा, देवसुन्दरी, कुलतिलका, रम्या, उद्भिन्ना, नारायणी, नलिका, चम्पका, पद्मा, समुद्भवा, त्रिदशा, देवगान्धारी, रत्नगर्भा, चूडामणि, हेमकूटा, चित्रकूटा, हिमाख्या, गन्धमादिनी, मन्दरा, मालिनी, कैलासा, रत्नसंभवा और मेरुकूटा, ये ये पच्चीस संवरणा के नाम हैं।

ज्ञानरत्नकोश नाम के ग्रन्थ में बत्तीस संवरणा लिखा हैं। उनके नाम भी अन्य प्रकार के हैं। घंटिका की संख्या प्रासाद के मानानुसार लीखी है। जैसे—एक या दो हाथ के प्रासाद के ऊपर पांच घंटिका वाली संवरणा, तीन हाथ के प्रासाद के ऊपर नव, चार हाथ के प्रासाद के ऊपर तेरह, इस प्रकार पचास हाथ के प्रासाद के ऊपर एकसौ उनतीस घंटिका चढाना लीखा है। तथा घंटिकाओं की संख्यानुसार बत्तीस संवरणा के नाम लीखे हैं। जैसे—पांच घंटावाली पद्मिनी, नव घंटावाली मेदिनी, तेरह घंटावाली कलशा, इस प्रकार एकसौ उनतीस घंटावाली राजवर्द्धनी है।

प्रथमा पुष्पिका संवरणा—

"चतुरस्रीकृते क्षेत्रे अष्टधा प्रतिभाजिते।
उच्छ्रयः स्याच्चतुर्भागैः सर्वासामर्धोदयः ॥
मूलकूटोद्भवाः कर्णा द्विभागैः पृथग् विस्तराः।
भागोदया विधातव्याः कूटा वै सर्वकामदाः ॥"

प्रथम संवरणा की समचोरस भूमिका आठ भाग करें, उसमें चार भाग संवरणा का उदय रक्खें। सब संवरणा विस्तार से आधी उदय में रक्खें। कर्ण के ऊपर मूल घंटा दो भाग विस्तार वाली और एक भाग का उदयवाली बनावें एवं कूटा भी विस्तार से आधा उदय में रक्खें।

"...................................।

छाद्योर्ध्वमास्तदर्धे च कर्णे कर्णे च घण्टिका ॥

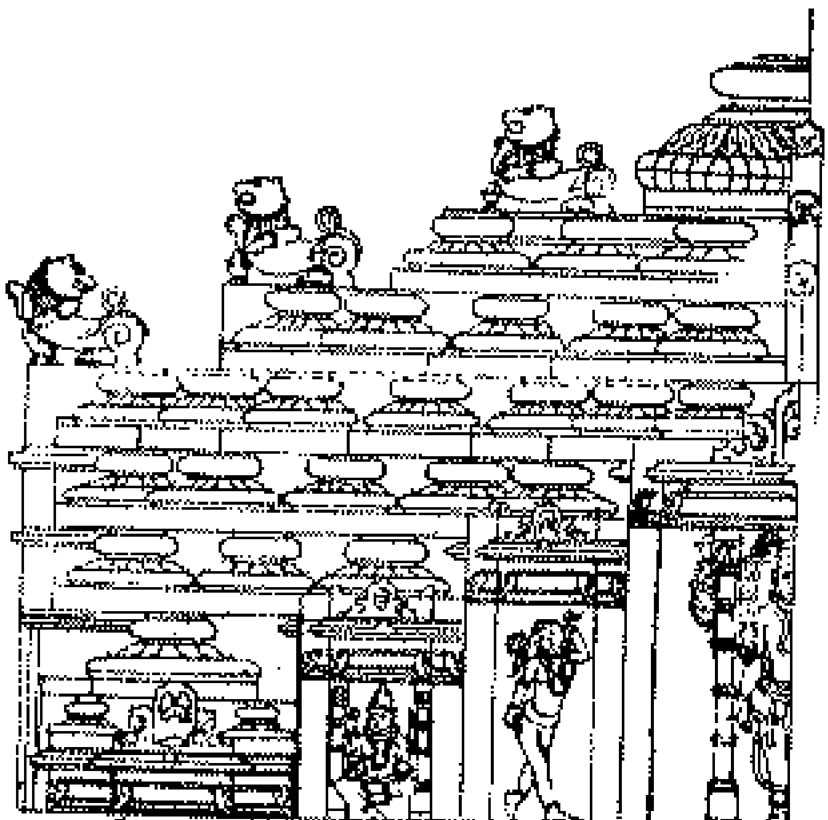

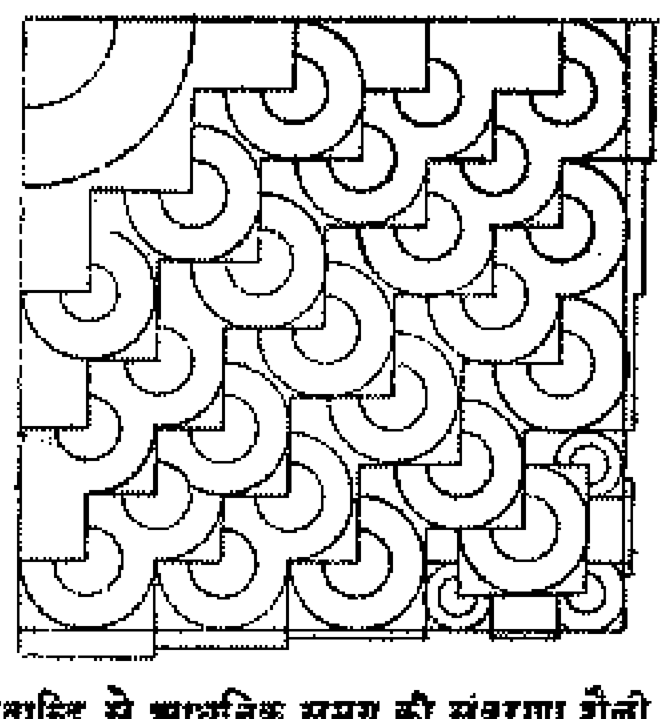

१८ वीं शताब्दि से आधुनिक समय की संवरणा शैली।

तद्रूपा भद्रकूटाश्च श्रृङ्गकूटास्तदर्धतः ।
सिंहस्थाना कर्णघण्टी बृहद्घण्टी तदूर्ध्वतः ॥
संवरणागर्भमूले रथिका द्व्यंशविस्तरा ।
भागैका चोदये कार्या भागा पक्षतवङ्गिका ॥
तदूर्ध्वे उद्गमो भाग–स्तवङ्गोर्ध्वे च कूटकः ।
सिंहं वै उद्गमोर्ध्वे तु उरोघंण्टा भागोपरि ॥
तदुपरि सिंहस्थानं भागैकं च विनिर्गतम् ।
तस्योपरि मूलघण्टा द्विभागा च भागोच्छ्रया ॥
अष्टसिंहैः पञ्चघण्टैः कूटैरेवं द्विरष्टभिः ।
चतुर्भिर्मूलकूटश्च पुष्पिका नाम नामतः ॥"

''''''छाद्या के उद्गम के अर्धमान का कोने कोने के ऊपर घंटिका रक्खें। उसके जैसा भद्र का कूट बनावें व इससे आधे भाग का श्रृंगकूट रक्खें। कर्णघंटी पर सिंह रक्खें। उसके ऊपर बीच में बड़ी घंटी रक्खें। संवरणा के गर्भ के मूल में दो भाग के विस्तार वाली रथिका बनावें और यह उदय में एक भाग की रक्खें। इसके दोनों तरफ तवंगा एक एक भाग की रक्खें और रथिका के ऊपर एक भाग उदय वाला उद्गम बनावें। तवंगा के ऊपर कूट रक्खें। उद्गम और बड़ी कर्णघंटी के ऊपर सिंह रक्खें, उसका निर्गम एक भाग रक्खें। उसके ऊपर दो भाग के विस्तारवाली और एक भाग का उदय वाली मूलघंटा रक्खें। आठसिंह (चार कर्ण और चार भद्र के उद्गम ऊपर) पांच बड़ी घंटी, सोलह कूट और चार मूलकूट वाली प्रथम पुष्पिका नाम की संवरणा होती है।

दूसरी नन्दिनी नाम की संवरणा—

"तवङ्गकूटयोर्मध्ये तिलकं द्व्यंशविस्तरम् ॥
भागोदयं विधातव्यं रूपसंघाटभूषितम् ॥
तवङ्गरथिकाश्चैव द्विभागोदयिनः स्मृताः ।
अष्टचत्वारिंशत्कूटा मूले स्युः पूर्ववत्तथा ॥
नवघण्टा समायुक्ता स्याद्वै द्वादशसिंहतः ।
नन्दिनी नामविख्याता कर्त्तव्या शान्तिमिच्छता ॥
कार्या तिलकवृद्धिश्च यावत्क्षेत्रं वेदाङ्गकम् ।
मण्डपदलनिष्कासै–र्भक्तिभागैस्तु कल्पना ॥

बृहद्भिर्भिन्नोद्भिन्ना मण्डपक्रमभागतः ।
आसां युक्तिर्विधातव्या मेरुकूटान्तकल्पना ॥"

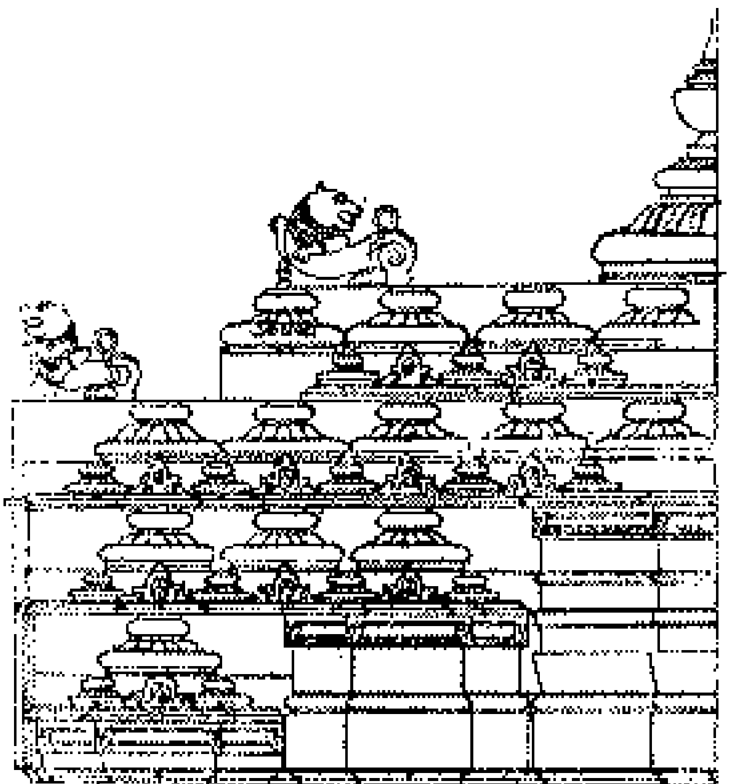

१२ भागनी संवरणानी पूठी संवर्णा नन्दिनी शैली.
डॉ. प्रभाशंकर. सोमपुरा.

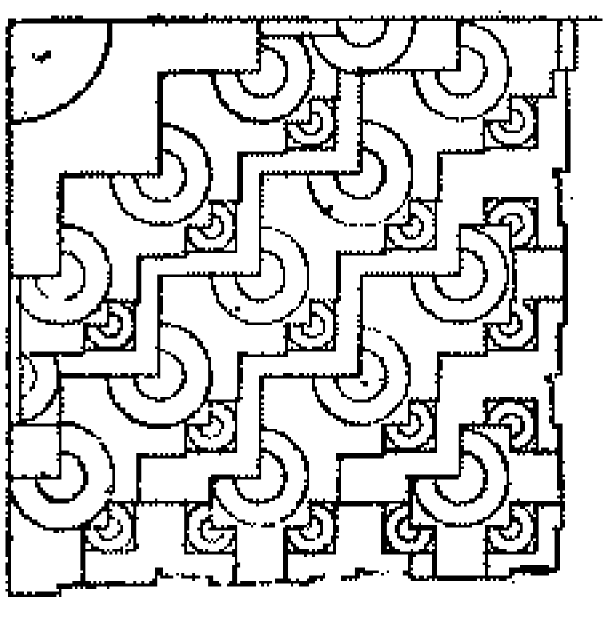

सर्वांग और कूटके मध्य में दो भाग के विस्तारवाला और एक भाग के उदय वाला तलके भूषणरूप तिलक बनावें नवंगा और रथिका ये दोनों दो भाग के उदयवाले बनावें । अड़तालीस कूटा, नवघण्टा और बारह सिंह वाली नन्दिनी नाम की संवरणा शांति की इच्छा रखने वाले बनावें । समचोरस क्षेत्र के भागों में तिलककी वृद्धि करनी चाहिये । मंडप को विस्तार से आधा उदय में रक्खें । भूमि के बारह भाग की कल्पना करें । संवरणायें भिन्न और उद्भिन्न होती हैं । मण्डप के अनुक्रम भाग से पचीसवीं मेरुकूटा नाम की संवरणा तक इस प्रकार युक्ति से अन्य संवरणायें बनावें ।

इति श्री मंडनसूत्र धार विरचित प्रासादमंडन के मंडप बलाणक संवरणा लक्षणवाला सातवां अध्याय की पंडित भगवानदास जैन ने सुबोधिनी नाम की भाषा टीका रची ॥७॥

★

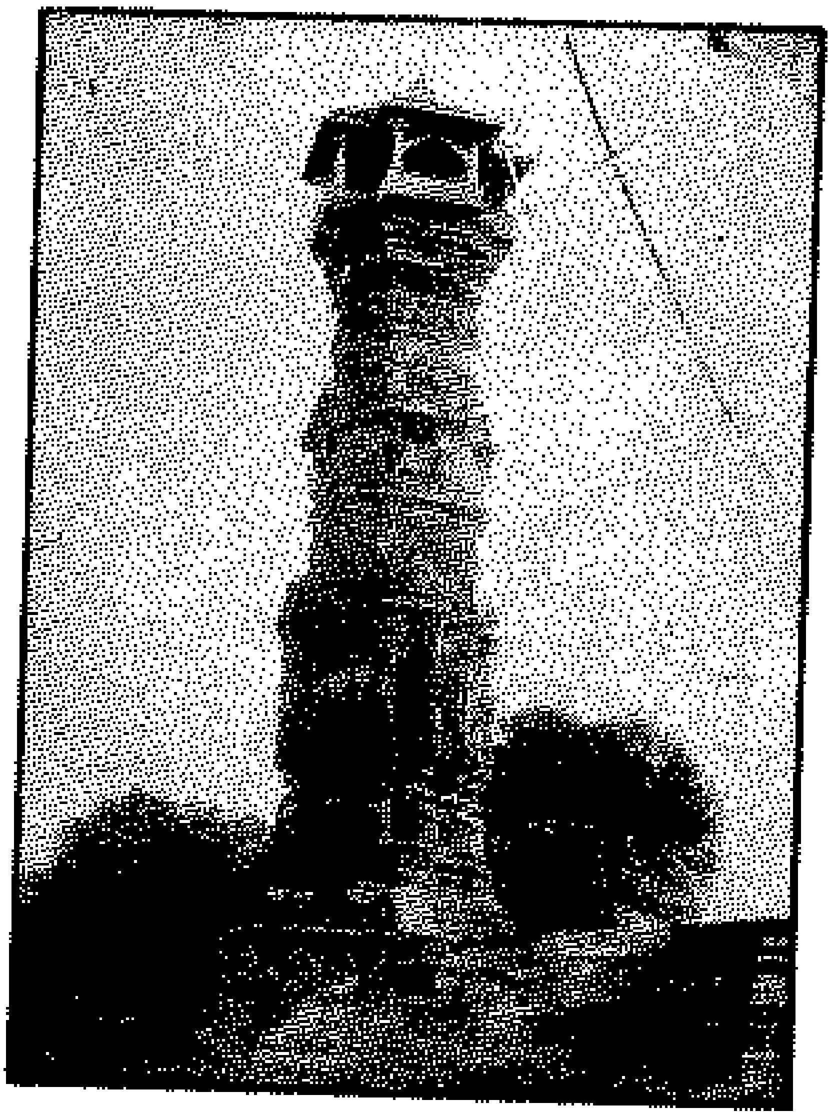

कीर्ति स्तंभ – चित्तौड़गढ़

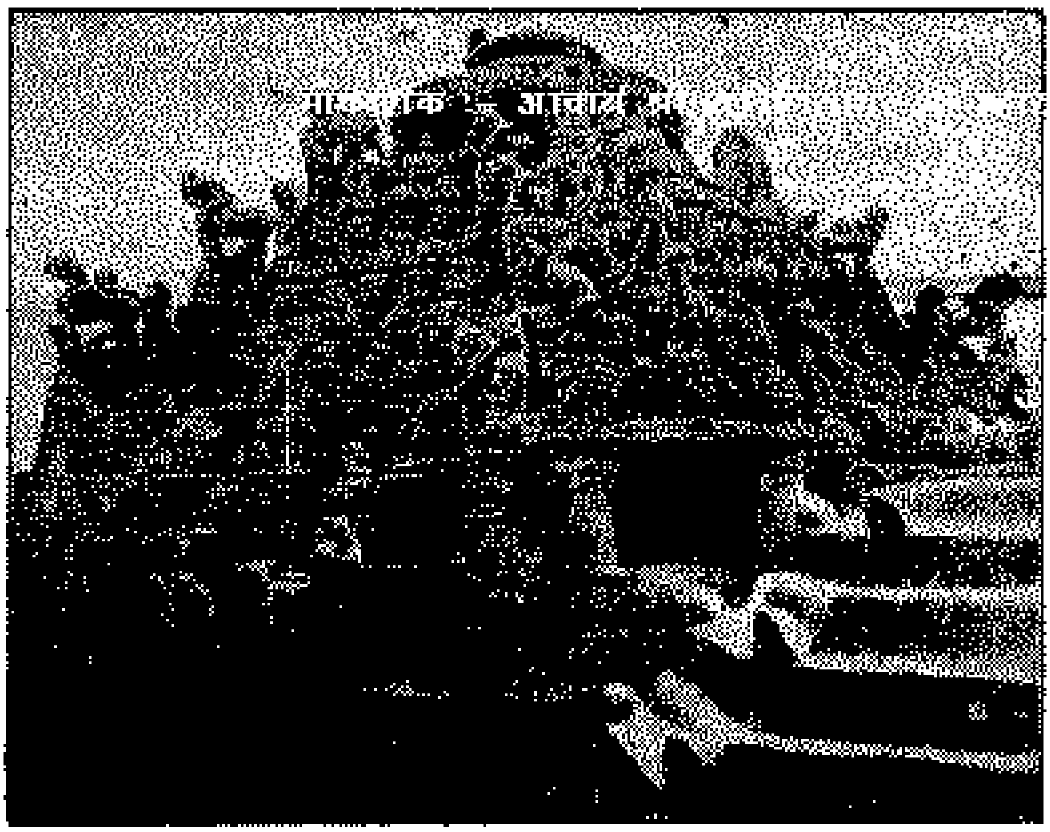

जैसलमेर जैन मंदिर के मंडप की संवरणा

अथ प्रासादमण्डनेऽष्टमः साधारणोऽध्यायः

अथ साधारणोऽध्यायः सर्वलक्षणसंयुतः ।
विश्वकर्मप्रसादेन विशेषेण प्रकथ्यते ॥१॥

श्री विश्वकर्मा के प्रसाद से सर्व लक्षणों वाला साधारण नाम का यह आठवां अध्याय कुछ विशेषरूप से कहा जाता है ॥१॥

शिवलिंग का न्यूनाधिक मान—

[1]मानं न्यूनाधिकं वापि स्वयंभूबाणरत्नजे ।
घटितेषु विधातव्य-मर्चालिङ्गेषु शास्त्रतः ॥२॥

स्वयंभूलिंग, बाणलिंग और रत्नका लिंग, ये मान में न्यूनाधिक हो तो दोष नहीं है। परन्तु घड़ा हुआ शिवलिंग और मूर्त्ति तो शास्त्र में कहे हुए मानानुसार ही होना चाहिये ॥२॥

वास्तुदोष—

बहुलेपमल्पलेपं समसन्धिः शिरोगुरुः ।
सशल्यं पादहीनं तु तच्च वास्तु विनश्यति ॥३॥

अधिक लेपवाला, कम लेपवाला, सांध के ऊपर सांध वाला, ऊपरका हिस्सा मोटा और नीचे पतला, शल्यवाला और कम नींव वाला, ऐसे वास्तु का शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥३॥

निषेधवास्तुद्रव्य—

अन्यवास्तुच्युतं द्रव्य-मन्यवास्तुनि योजयेत् ।
प्रासादे न भवेत् पूजा गृहे तु न वसेद् गृही ॥४॥

किसी मकान आदि का गिरा हुआ ईंट, चूना, पाषाण और लकड़ी आदि वास्तु द्रव्य, यदि मंदिर में लगावें तो देव अपूजित रहें और घरमें लगावे तो मालिक का निवास न रहे, अर्थात् मंदिर और गृह शून्य रहे ॥४॥

---

१. 'मानं' के स्थान पर 'वृषं' होना चाहिये। क्योंकि अपराजित पृच्छा सूत्र० १०६ श्लो० ११ में लिखा है कि—'वृषं न्यूनाधिकं बाणे रत्नजे च स्वयम्भुवि' अर्थात् बाण, रत्न और स्वयंभूलिंग के मंदिर में नंदी का मान न्यूनाधिक भी हो सकता है।

शिवालय उत्थापनदोष—

स्वस्थाने संस्थितं यस्य विप्रवास्तुशिवालयम् ।
अचाल्यं सर्वदेशेषु चालिते राष्ट्रविभ्रमः ॥५॥

अपने स्थान में यथास्थित रहा हुआ और ब्राह्मणों से वास्तु पूजन किया हुआ, ऐसे शिवालय को चलायमान नहीं किया जाता। क्योंकि अचल (चलायमान न हो), को यदि चलायमान किया जाय तो राष्ट्रों में परिवर्त्तन होता है ॥५॥

जीर्णोद्धार का पुण्य—

वापीकूपतडागानि प्रासादभवनानि च ।
जीर्णान्युद्धरते यस्तु पुण्यमष्टगुणं लभेत् ॥६॥

बावडी, कुआं, तालाब, प्रासाद (मंदिर) और भवन, ये जीर्ण हो गये हों तो उनका उद्धार करना चाहिये। जीर्णोद्धार करने से आठ गुना फल होता है ॥६॥

जीर्णोद्धार का वास्तु स्वरूप—

तद्रूपं तत्प्रमाणं स्यात् पूर्वसूत्रं न चालयेत् ।
हीने तु जायते हानि-रधिके स्वजनक्षयः[1] ॥७॥

जीर्णोद्धार करते समय पहले का वास्तु जिस आकार और जिस मानका हो, उसी आकार और उसी मानका रखना चाहिये। अर्थात् पहले के मानसूत्र में परिवर्त्तन नहीं करना चाहिये। प्रथम के मान से कम करे तो हानि होवे और अधिक करे तो स्वजन की हानि होवे ॥७॥

वास्तु द्रव्याधिकं कुर्यान्मृत्काष्ठे शैलजं हि वा ।
शैलजे धातुजं वापि धातुजे रत्नजं तथा ॥८॥

जीर्णोद्धार करते समय प्रथम का वास्तु अल्पद्रव्य का हो तो वह अधिक द्रव्यका बनाना चाहिये। जैसे—प्रथमका वास्तु मिट्टी का हो तो काष्ठ का, काष्ठ का हो तो पाषाण का, पाषाण का हो तो धातु का और धातु का हो तो रत्न का बनाना श्रेयस्कर है ॥८॥

दिङ्मूढ दोष—

पूर्वोत्तरदिशामूढं मूढं पश्चिमदक्षिणे ।
तत्र मूढममूढं वा यत्र तीर्थं समाहितम् ॥९॥

१. 'तु धनक्षयः ।'

पूर्वोत्तर दिशा (ईशान कोन) अथवा पश्चिम दक्षिण दिशा (नैर्ऋत्य कोन) में प्रासाद टेढ़ा हो तो दिङ्मूढ दोष नहीं माना जाता। जैसे तीर्थ स्थान में प्रासाद के मूढ और अमूढ का दोष नहीं माना जाता ॥९॥

"पूर्वपश्चिमदिङ्मूढं वास्तु स्त्रीनाशकं स्मृतम् ।
दक्षिणोत्तरदिङ्मूढं सर्वनाशकरं भवेत् ॥" अप० सू० ५२

पूर्व पश्चिम दिशा का वास्तु अग्नि और वायु कोनमें दिङ्मूढ हो तो स्त्री का विनाश कारक है। दक्षिणोत्तर दिशा का वास्तु भी अग्नि और वायुकोन में दिङ्मूढ हो तो सर्व विनाश कारक है।

दिङ्मूढ का परिहार—

सिद्धायतनतीर्थेषु नदीनां सङ्गमेषु च ।
स्वयम्भूबाणलिङ्गेषु तत्र दोषो न विद्यते ॥१०॥

सिद्धायतन अर्थात् सिद्ध पुरुषों का निर्वाण, अग्नि संस्कार, जल संस्कार अथवा भूमि-संस्कार हुआ हो ऐसे पवित्र स्थानों में, तथा च्यवन, जन्म, दीक्षा ज्ञान और मोक्ष संस्कार हुआ हो, ऐसे तीर्थस्थानों में, नदी के संगम स्थान में, बनाया हुआ प्रासाद तथा स्वयंभू और बाण लिंगों के प्रासाद, ये दिङ्मूढ हों तो दोष नहीं है ॥१०॥

अव्यक्त प्रासाद का चालन—

अव्यक्तं[1] मृण्मयं चाल्यं त्रिहस्तान्तं तु शैलजम् ।
दारुजं पुरुषार्द्धं[2] हि अत ऊर्ध्वं न चालयेत् ॥११॥

यदि अव्यक्त जीर्ण प्रासाद मिट्टी का हो तो गिरा करके फिर बनावें, पाषाण का हो तो तीन हाथ तक और लकड़ी का हो तो आधे पुरुष के मान तक ऊंचा रहा हो तो चलायमान करें। इससे अधिक ऊंचाई में रहा हो तो चलायमान न करें ॥११॥

महापुरुष स्थापित देव—

विषमस्थानमाश्रित्य भग्नं यत्स्थापितं पुरा ।
तत्र स्थाने स्थिता देवा भग्नाः पूजाफलप्रदाः ॥१२॥

प्राचीन महापुरुषोंने जो देव स्थापित किये हैं, वे विषमासन वाले हों; अथवा खंडित हों तो भी पूजनीय हैं। क्यों कि उस स्थान पर देवों का निवास है, इसलिये वे देवमूर्त्तियां पूजन का फल देनेवाली हैं ॥१२॥

१. 'व्यक्तं तु' ऐसा धाराजितपृच्छा सूत्र ११० में पाठ है।

यद्यथा स्थापितं वास्तु तत्तथैव हि कारयेत् ।
अव्यङ्गं चालितं वास्तु दारुणं कुरुते भयम् ॥१३॥

प्राचीन महापुरुषोंने जो वास्तु स्थापित किया है, उसका यदि जीर्णोद्धार किया जाय तो जैसा पहले हो वैसा ही करना चाहिये। जीर्ण वास्तु यदि अंगहीन न हुआ हो तो ऐसे वास्तु को चलायमान करने से बड़ा भयंकर भय उत्पन्न होता है ॥१३॥

अथ तच्चालयेत् प्राज्ञ–जीर्णं व्यङ्गं च दूषितम् ।
आचार्यशिल्पिभिः प्राज्ञैः शास्त्रदृष्टया समुद्धरेत ॥१४॥

यदि प्राचीन वास्तु जीर्ण हो गया हो अथवा अंगहीन होकर दोषवाला हो गया हो तो उसका विद्वान् आचार्य और शिल्पियों की सलाह लेकर शास्त्रानुसार उद्धार करना चाहिये ॥१४॥

जीर्णवास्तु पातन विधि—

स्वर्णजं रौप्यजं वापि कुर्यान्नागमथो वृषम् ।
तस्य शृङ्गेण दन्तेन पतितं पातयेत् सुधीः ॥१५॥

इति जीर्णोद्धार विधिः।

जीर्णोद्धार के आरंभ के समय सोना अथवा चांदी का हाथी अथवा वृषभ बनावें। उस हाथी के दांत से अथवा वृषभ के शृंग से जीर्णवास्तु को गिरावे। उसके बाद बुद्धिमान शिल्पी सब गिरा देवें ॥१५॥

महादोष—

मण्डलं जालकं चैव कीलकं सुषिरं तथा ।
छिद्रं सन्धिश्च काराश्च महादोषा इति स्मृताः ॥१६॥

देवालय में चूना उतर जाने से मंडलाकार लकीरें दीखती हों, मकड़ी के जाले लगे हों, कीले लगी हों, पोलाण हो गया हों, छिद्र पड़ गये हों, सांध दीख पड़ती हों और कारागृह बन गया हो, तो ये महादोष माने गये हैं ॥१६॥

शिल्पिकृत महादोष—

"दिङ्मूढो नष्टच्छन्दश्च आयहीनः शिरोगुरुः ।
ज्ञेया दोषास्तु चत्वारः प्रासादाः कर्मदारुणाः ॥" अप० सू० ११०

यदि प्रासाद दिङ्मूढ हो गया हो, नष्टछंद हो अर्थात् यथा स्थान प्रासाद के अंगोपांग न हो, आय हीन हो और ऊपर का भाग भारी व नीचे का पतला हो तो उन्हें प्रासाद के चार भयंकर महादोष शिल्पिकृत माना है।

भिन्न और अभिन्न दोष—

भिन्नदोषकरं यस्मात् प्रासादमठमन्दिरम् ।
मुषाभिर्जालकैर्द्वारै रश्मिवातैः प्रभेदितम् ॥१७॥

प्रासाद (देवालय), मठ (आश्रम) और मंदिर (गृह), इनका गर्भगृह यदि मूषा (लंबा अलिंद) से, जालियों से अथवा दरवाजे से आते हुए सूर्य की किरणों से वेधित होता हो तो भिन्न दोष माना जाता है ॥१७॥

अपराजितपृच्छा सूत्र ११० में कहा कि—

"मूषाभिजालकैर्द्वारै-र्गर्भो यत्र न भिद्यते ।
अभिन्नं कथ्यते तत्र प्रासादो वेश्म वा मठः ॥"

प्रासाद, गृह और मठ का गर्भगृह मूषा, जालि और द्वार से आते हुए सूर्य किरणों से भेदित न होता हो तो वह अभिन्न कहा जाता है।

देवों के भिन्नदोष—

ब्रह्मविष्णुशिवार्काणां भिन्नं दोषकरं नहि ।
जिनगौरीगणेशानां गृहं भिन्नं विवर्जयेत् ॥१८॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य, इनके प्रासादों में भिन्नदोष हो तो वे दोष कारक नहीं है। परंतु जिनदेव, गौरी और गणेश के प्रासादों में भिन्न दोष हो तो दोष कारक है, इस लिये इन्हें भिन्न दोष वाले प्रासाद नहीं बनावें ॥१८॥

अपराजितपृच्छा सूत्र ११० में अन्य प्रकार से कहा है कि—

"ब्रह्माविष्णुरवीणां च शम्भोः कार्या यदृच्छया ।
गिरिजाया जिनादीनां मन्वन्तरभुवां तथा ॥
एतेषां च सुराणां च प्रासादा भिन्नवर्जिताः ।
प्रासादमठवेश्मान्यभिन्नानि शुभदानि हि ॥"

ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और शिव, इनके प्रासाद भिन्न अथवा अभिन्न अपनी इच्छानुसार बनावें। परन्तु गौरीदेवी, जिनदेव और मन्वंतर में होने वाले देव, इनके प्रासाद भिन्न दोष से रहित बनावें। प्रासाद, मठ और घर ये भिन्न दोष रहित बनाना शुभ है।

व्यक्ताव्यक्त प्रासाद—

व्यक्ताव्यक्तं गृहं कुर्याद् भिन्नाभिन्नस्य मूर्त्तिकम् ।
यथा स्वामिशरीरं स्यात् प्रासादमपि तादृशम् ॥१९॥

इति भिन्नदोषाः ।

उपरोक्त भिन्न और अभिन्न दोषवाली देवमूर्तियों के लिये व्यक्त और अव्यक्त प्रासाद बनावें । अर्थात् भिन्न दोष रहित देवों के लिये प्रकाश वाले और भिन्न दोषवाले देवों के लिये अंधकारमय प्रासाद बनावें । जैसे स्वामी अपने शरीर के अनुकूल गृह बनाता है, वैसे देवों के अनुकूल प्रासाद बनाना चाहिये ॥१९॥

अपराजित पृच्छा सूत्र ११० में कहा है कि—

"व्यक्ताव्यक्तं लयं कुर्यादभिन्नभिन्नमूर्त्तयोः ।
मूर्तिलक्षणजं स्वामी प्रासादं तस्य तादृशम् ॥"

भिन्न दोषों से रहित शिव आदि की देव मूर्तियों के लिये व्यक्त (प्रकाशवाले) प्रासाद बनावें और भिन्न दोषवाली गौरी आदि की देव मूर्तियों के लिये अव्यक्त (अंधकारमय) प्रासाद बनावें ।

महामर्मदोष—

[1]भिन्नं चतुर्विधं ज्ञेय-मष्टधा मिश्रकं मतम् ।
मिश्रकं पूजितं तत्र भिन्नं वै दोषकारकम् ॥२०॥
छन्दभेदो न कर्त्तव्यो जातिभेदोऽपि वा पुनः ।
उत्पद्यते महामर्म जातिभेदकृते सति ॥२१॥

भिन्नदोष चार प्रकार के और मिश्रदोष आठ प्रकार के हैं । उनमें मिश्रदोष पूजित (शुभ) हैं और भिन्नदोष दोषकारक हैं । छंदभेद-जैसे छंदों में गुरु लघु यथास्थान न होने से छंद दूषित होता है, वैसे प्रासाद की अंगविभक्ति नियमानुसार न होनेसे प्रासाद दूषित होता है । जातिभेद-प्रासाद की अनेक जातियों में से पीठ आदि एक जाति की और शिखर आदि दूसरी जाति का बनाया जाय तो जातिभेद होता है । ऐसा जातिभेद करने से बड़ा मर्मदोष उत्पन्न होता है ॥२०-२१॥

१. भिन्नदोष जानने के लिये देखो अपराजित पृच्छा सूत्र ११० और मिश्रदोष जानने के लिये देखो अप० सूत्र ११४ श्लो० १ से ६ ।

अन्यदोष फल—

द्वारहीने हनेच्चक्षु–र्नालीहीने धनक्षयः ।
अपदे स्थापिते स्तम्भे महारोगं विनिर्दिशेत् ॥२२॥

द्वार मान में हीन हो तो नेत्र की हानि, नाली (जलमार्ग) हीन हो तो धन का क्षय और स्तंभ अपदमें रखा जाय तो महारोग होता है ॥२२॥

स्तम्भव्यासोदये हीने कर्त्ता तत्र विनश्यति ।
प्रासादे पीठहीने तु नश्यन्ति गजवाजिनः ॥२३॥

स्तंभ का मान विस्तार में अथवा उदय में हीन हो तो कर्त्ता का विनाश होता है। प्रासाद की पीठ मानमें हीन हो तो हाथी घोड़ा आदि वाहनों की हानि होती है ॥२३॥

रथोपरथहीने तु प्रजापीडां विनिर्दिशेत् ।
कर्णहीने सुरागारे फलं क्वापि न लभ्यते ॥२४॥

प्रासाद के रथ और उपरथ आदि अंग मानमें हीन हो तो प्रजा को पीड़ा होती है। यदि कोना मानमें हीन हो तो पूजन का फल कभी भी नहीं मिलता ॥२४॥

जङ्घाहीने हरेद् बन्धून् कर्तृकारापरादिकान् ।
शिखरे हीनमाने तु पुत्रपौत्रधनक्षयः ॥२५॥

प्रासाद की जंघा प्रमाण से हीन हो तो करने कराने वाले और दूसरे की हानि होती है। जो शिखर प्रमाण से न्यून हो तो पुत्र, पौत्र और धनकी हानि होती है ॥२५॥

अतिदीर्घे कुलच्छेदो ह्रस्वे व्याधिर्विनिर्दिशेत् ।
तस्माच्छास्त्रोक्तमानेन सुखदं सर्वकामदम् ॥२६॥

शिखर यदि मान से अधिक लंबा हो तो कुल की हानि होती है और मान से छोटा होने से रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये शास्त्र में कहे हुए मानके अनुसार हो प्रासाद बनावें तो वह सर्व इच्छित फलको देनेवाला होता है ॥२६॥

जगत्यां रोपयेच्छालां शालायां चैव मण्डपम् ।
मण्डपेन च प्रासादो ग्रस्तो वै दोषकारकः ॥२७॥

इति दोषाः ।

जगती में शाला (चौकी मंडप) बनाना, उस शाला में मंडप और मंडप में प्रासाद ग्रस्त हो तो दोषकारक है ॥२७॥

छाया भेद—

प्रासादोच्छ्रायविस्तारा–ज्जगती वामदक्षिणे ।
छायाभेदा न कर्त्तव्या यथा लिङ्गस्य पीठिका ॥२८॥

प्रासाद के उदय और विस्तार के अनुसार बायीं और दाहिनी ओर जगती शास्त्रमान के अनुसार रखना चाहिये। ऐसा न करें तो छायादोष होता है, क्योंकि जैसे शिवलिंग की पीठिका रूप जगती है, वैसे प्रासाद रूप लिंग की जगतीरूप पीठिका है ॥२८॥

देवपुर, राजमहल और नगर का मान—

जगत्यां त्रिचतुःपञ्च–गुणं देवपुरं त्रिधा ।
एकद्विवेदसाहस्रै–र्हस्तैः स्याद् राजमन्दिरम् ॥२९॥
कलाष्टवेदसाहस्रै–र्हस्तै राजपुरं समम् ।
दैर्घ्ये तुल्यं सपादांशं सार्धांशेनाधिकं शुभम् ॥३०॥

जगती में तीन, चार अथवा पांच गुणा देवपुर का मान है। एक, दो अथवा चार हजार हाथ का राजमहल का मान है और सोलह आठ अथवा चार हजार हाथ का राजपुर (राजधानी वाला नगर) का मान है। ये हरेक का तीन २ प्रकार का मान जानें। लंबाई में विस्तार के बराबर अथवा सवाया तथा डेढा मान का रखना शुभ है ॥२९–३०॥

राजनगर में देवस्थान—

द्वादश त्रिपुराणि स्यु–र्देवस्थानानि चत्वरे ।
षट्त्रिंशत् षड्भिर्वृद्धया यावदष्टोत्तरं शतम् ॥३१॥
पुरं प्रासादगृहैः स्यात् सौधैर्जालगवाक्षकैः ।
कीर्त्तिस्तम्भैर्जलारामै–र्गढैर्मण्डपैश्च[1] शोभितम् ॥३२॥

इति देवपुरराजपुराणि ।

राजनगर के चौरास्ते में बारह त्रिपुर (छत्तीस) देवस्थान हैं। छत्तीस से छह २ बढ़ाते हुए एकसौ आठ तक बढ़ावें, उतने देवस्थान हैं। यह नगर देव प्रासादों से, जाली और गवाक्षवाले राजमहलों से और गृहों से कीर्त्तिस्तंभों से, कुआं, बावड़ी आदि जलाशयों से, किला और मंडपों से शोभित होता है ॥३१–३२॥

1. 'गेहैः।'

आश्रम और मठ—

प्रासादस्योत्तरे याम्ये तथाग्नौ पश्चिमेऽपि वा ।
यतीनामाश्रमं कुर्यान्मठं तद्द्वित्रिभूमिकम् ॥३३॥

प्रासाद के उत्तर अथवा दक्षिण दिशा में, तथा अग्निकोन में या पिछले भाग में यतियों का आश्रम तथा ऋषियों का मठ, दो या तीन मंजिल बनावें ॥३३॥

द्विशालमध्ये पट्टदारुः पट्टशालाग्रे शोभिता ।
मत्तवारणमग्रे च तदूर्ध्वे पट्टभूमिका ॥३४॥

आश्रम के दोशाला के मध्य में पट्टदारु (आमने सामने की दीवार में दो दो स्तंभ और उसके ऊपर एक २ एक २ पाट, ऐसा पट्टदारु कहा जाता है) रक्खें । द्विशाला के आगे सुशोभित पट्टशाला (बरामदा) बनावें और उसके आगे कटहरा बनावें । उसके ऊपर पट्टभूमिका (चंद्रशाला-खुली छत) रक्खें ॥३४॥

स्थान विभाग—

कोष्ठागारं च वायव्ये वह्निकोणे महानसम् ।
पुष्पगेहं तथेशाने नैऋत्ये पात्रमायुधम् ॥३५॥
सत्रागारं च पुरतो वारुण्यां च जलाश्रयम् ।
मठस्य[1] पुरतः कुर्याद् विद्याव्याख्यानमण्डपम् ॥३६॥

इति मठः ।

मठ के वायुकोने में धान्य का कोठार, अग्निकोने में रसोड़ा, ईशान कोने में पुष्पगृह (पूजोपकरण), नैऋत्य कोने में पात्र और आयुध, आगे के भाग में यज्ञशाला और पश्चिम दिशामें जलस्थान बनावें । एवं मठ के आगे पाठशाला और व्याख्यान मंडप बनावें ॥३५-३६॥

प्रतिष्ठा मुहूर्त—

पूर्वोक्तः सप्तपुण्याह-प्रतिष्ठा सर्वसिद्धिदा ।
रवौ[2] सौम्यायने कुर्याद् देवानां स्थापनादिकम् ॥३७॥

प्रथम अध्ययन के श्लोक ३६ में जो सात पुण्य दिन कहे गये हैं। उनकी प्रतिष्ठा सर्वसिद्धि को देनेवाली है। जब सूर्य उत्तरायन में हो तब देवों की प्रतिष्ठा आदि शुभ कार्य करना चाहिये ॥३६॥

---

१. 'मठस्योपरितः ।' २. 'रवेः' ।

प्रतिष्ठा के नक्षत्र—

प्रतिष्ठा चोत्तरामूल आर्द्रायां च पुनर्वसौ ।
पुष्ये हस्ते मृगे स्वातौ रोहिण्यां श्रुतिमैत्रभे ॥३८॥

तीन उत्तरा नक्षत्र, मूल, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशीर्ष, स्वाति, रोहिणी, श्रवण और अनुराधा, ये नक्षत्र देव प्रतिष्ठा के कार्य में शुभ हैं ॥३८॥

प्रतिष्ठा में वर्जनीय तिथि—

तिथिरिक्तां कुजं धिष्ण्यं क्रूरविद्धं विधुं तथा ।
दग्धातिथिं च गण्डान्तं चरभोपग्रहं त्यजेत् ॥३९॥

रिक्तातिथि, मंगलवार, क्रूरग्रह से वेधित अथवा युत नक्षत्र और चंद्रमा, दग्धातिथि, नक्षत्र, मास, तिथि और लग्न आदिका गंडांतयोग, चर राशि और उपग्रह ये सब प्रतिष्ठा कार्य में वर्जनीय हैं ॥३९॥

सुदिने शुभनक्षत्रे लग्ने सौम्ययुतेक्षिते ।
अभिषेकः प्रतिष्ठा च प्रवेशादिकमिष्यते ॥४०॥

शुभदिनमें, शुभनक्षत्रमें, शुभलग्नमें, शुभग्रह लग्न में हों अथवा लग्न को देखते हों, ऐसे समय में राज्याभिषेक, देवप्रतिष्ठा और गृह प्रवेश आदि शुभकार्य करना चाहिये ॥४०॥

प्रतिष्ठा मण्डप—

प्रासादाग्रे तथैशान्ये उत्तरे मण्डपं शुभम् ।
त्रिपञ्चसप्तनन्दैका–दशविश्वकरान्तरे ॥४१॥
मण्डपः स्यात् करैरष्ट–दशार्ककलामितैः ।
षोडशहस्ततः कुण्ड-वशादधिक इष्यते ॥४२॥
स्तम्भैः षोडशभिर्युक्तं तोरणादिविराजितम् ।
मण्डपे वेदिका मध्ये पञ्चाष्टनवकुण्डकम् ॥४३॥

प्रासाद के आगे, तथा ईशानकोने में अथवा उत्तर दिशा में प्रतिष्ठा का मंडप बनाना शुभ है। यह मंडप तीन, पांच, सात, नव, ग्यारह अथवा तेरह हाथ तक प्रासाद से दूर रखना चाहिये। तथा आठ, दस, बारह अथवा सोलह हाथ के मान का समचोरस बनाना चाहिये। एवं कुण्डों की विशालता के कारण सोलह हाथ से बड़ा भी मंडप कर सकते हैं। यह मंडप

सोलह स्तंभ वाला और तोरणों से शोभायमान बनावें। तथा मंडप के मध्य में वेदिका और पांच, आठ अथवा नव यज्ञ कुण्ड बनावें ॥४१ से ४३॥

यज्ञकुण्ड का मान—

हस्तमात्रं भवेत् कुण्डं मेखलायोनिसंयुतम् ।
आगमैर्वेदमन्त्रैश्च होमं कुर्यात् विधानतः ॥४४॥

तीन मेखला और योनि से युक्त ऐसा एक हाथ के मानका यज्ञकुण्ड बनावें। उसमें आगम और वेद के मंत्रों से विधिपूर्वक होम करें ॥४४॥

आहुति संख्या से कुण्डमान—

अयुते हस्तमात्रं स्यात् लक्षार्द्धे तु द्विहस्तकम् ।
त्रिहस्तं लक्षहोमे स्यात् दशलक्षे चतुष्करम् ॥४५॥
त्रिंशल्लक्षे पञ्चहस्तं कोट्यर्द्धे षट्करं मतम् ।
अशीतिलक्षेऽद्रिकरं कोटिहोमे कराष्टकम् ॥४६॥
ग्रहपूजाविधाने च कुण्डमेककरं भवेत् ।
मेखलात्रितयं वेद-रामयुग्माङ्गुलैः क्रमात् ॥४७॥*

दस हजार आहुति के लिये एक हाथ का, पचास हजार आहुति के लिये दो हाथ का, एक लाख आहुति के लिये तीन हाथ का, दस लाख आहुति के लिये चार हाथ का, तीस लाख आहुति के लिये पांच हाथ का, पचास लाख आहुति के लिये छह हाथ का, अस्सी लाख आहुति के लिये सात हाथ का और एक करोड़ आहुति देना हो तो आठ हाथ का कुण्ड बनावें। ग्रहपूजा आदि के विधान में एक हाथ के मान का कुण्ड बनावें। कुण्ड की तीन मेखला क्रमशः चार, तीन और दो अंगुल के मान की रक्खें ॥४५ से ४७॥

दिशानुसार कुण्डों की आकृति—

"प्राच्यांश्चतुष्कोणभगेन्दुखण्ड-त्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि ।
अष्टास्रिशक्रेश्वरयोस्तु मध्ये, वेदास्रि वा वृत्तमुशन्ति कुण्डम् ॥"२२॥
इति मंडपकुंडसिद्धौ

पूर्व दिशा में समचोरस, अग्निकोण में योन्याकार, दक्षिण दिशा में अर्द्धचन्द्र, नैऋ-र्त्यकोण में त्रिकोण, पश्चिमदिशा में गोल, वायुकोण में छह कोण, उत्तर में अष्टदल पद्माकार

* विशेष जानने के लिये देखो अपराजितपृच्छा सूत्र १४५।

और ईशानकोणमें अष्टकोण, ये आठ पूर्वदिशासे ईशानकोण तक आठ दिक्पालों के कुण्ड हैं। तथा पूर्व और ईशान के मध्य भाग में नवां आचार्य कुण्ड गोल अथवा समचोरस बनावें।

'विशेष जानने के लिये देखें मंडपकुंडसिद्धि आदि ग्रंथ।'

मंडल—

एकद्वित्रिकरं कुर्याद् वेदिकोऽपरि मण्डलम् ।
ब्रह्मविष्णुरवीणां च सर्वतोभद्रमिष्यते ॥४८॥

वेदिकाके ऊपर एक, दो अथवा तीन हाथ के मानका मंडल बनावें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य की प्रतिष्ठा में सर्वतोभद्र नामका मंडल बनावें ॥४८॥

भद्रं तु सर्वदेवानां नवनाभिस्तथा त्रयम् ।
लिङ्गोद्भवं शिवस्यापि लतालिङ्गोद्भवं तथा ॥४९॥

सब देवों की प्रतिष्ठा में भद्र नाम का मंडल, तथा नवनाभो अथवा तीन नाभि वाला लिंगोद्भव मंडल बनावें। शिव की प्रतिष्ठा में लिंगोद्भव तथा लतालिङ्गोद्भव नाम का मंडल बनावें ॥४९॥

भद्रं च गौरीतिलकं देवीनां पूजने हितम् ।
अर्धचन्द्रं तडागेषु चापाकारं तथैव च ॥५०॥

सब देवियों की पूजन प्रतिष्ठा मे भद्र और गौरीतिलक नाम का मंडल बनावें। तथा तालाव की प्रतिष्ठा में अर्धचंद्र चापाकार मंडल बनावें ॥५०॥

टङ्काभं स्वस्तिकं चैव वापीकूपेषु पूजयेत् ।
पीठिकाजलपट्टेषु योन्याकारं तु कामदम् ॥५१॥

बावडी और कुओं की प्रतिष्ठा में टंकाभ और स्वस्तिक मंडल का पूजन करें। पीठिका और जलपट्ट की प्रतिष्ठा में योनि के आकार का मंडल पूजने से सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥५१॥

गजदन्तं महादुर्गे प्रशस्तं मण्डलं यजेत् ।
टङ्काभं चतुरस्रं च गजदन्तं महायतम् ॥५२॥

बड़े किले की प्रतिष्ठा में गजदंत नामका मंडल पूजन करना प्रशस्त है। टंकाभ मंडल का आकार चोरस है और गजदंत मंडल का आकार लंबा है ॥५२॥

विख्यातं सर्वतोभद्रं ज्ञेयमन्योऽन्यलोकतः ।
पूर्वादितोरणं प्लक्ष-यज्ञाङ्गवटपिप्पलैः ॥५३॥

सब मंडलों में सर्वतोभद्र नामका मंडल प्रसिद्ध है, उसका तथा अन्य मंडलों का स्वरूप अन्यशास्त्र (अपराजितपृच्छा सूत्र १४८) से जानें। यज्ञमंडप में पूर्वादि दिशाओं में अनुक्रम से पीपला, गूलर, बरगद और पीपल के पत्तों का तोरण बांधें ॥५३॥

ऋत्विजसंख्या—

द्वात्रिंशत् षोडशाष्टौ च ऋत्विजो वेदपारगान् ।
कुलीनानङ्गसम्पूर्णान् यज्ञार्थमभिमन्त्रयेत् ॥५४॥

यज्ञ करने वाले बत्तीस, सोलह अथवा आठ ऋत्विज आमंत्रित होना चाहिये। ये सब वेदों के ज्ञाता हों, कुलवान् हों और अंगहीन न हों ॥५४॥

देवस्नान विधि—

मण्डपस्य त्रिभागेन चोत्तरे स्नानमण्डपम् ।
स्थण्डिलं वालुकं कृत्वा शय्यायां स्नापयेत् सुरम् ॥५५॥
पञ्चगव्यैः कषायैश्च वल्कलैः क्षीरवृक्षजैः ।
स्नापयेत् पञ्चकलशैः शतवारं जलेन च ॥५६॥

मंडप की चारों दिशा में तीन २ भाग करें, अर्थात् मंडप का नव भाग करें। (आठ दिशा के आठ और एक मध्य वेदी का भाग जानें)। इनमें उत्तर दिशा के भाग में स्नान मंडप बनावें। उसमें रेतीका शुद्ध स्थंडिल (भूमि) बनाकर उसके ऊपर शय्या में देव की स्थापना करें। पीछे पंचगव्य से, कषाय वर्ग की औषधियों से और क्षीरवृक्षों की छालों के चूर्ण से स्नात्र-जल तैयार करें, उससे पांच २ कलश एकसौ बार भर करके देवको स्नान करावें ॥५५–५६॥

वेदमन्त्रैश्च वादित्रै-र्गीतमङ्गलनिःस्वनैः ।
वस्त्रेणाच्छादयेद् देवं वेद्यन्ते मण्डपे न्यसेत् ॥५७॥

स्नान क्रिया के समय वेदमंत्रों के उच्चारणों से, वाजींत्र की ध्वनियों से और मांगलिक गीतों से आकाश ध्वनिमान करें। स्नान के बाद देवको वस्त्रसे आच्छादित करके, पीछे ईशानकोन की वेदी के ऊपर स्थापित करें ॥५७॥

देवशयन—

तल्पमारोपयेद् वेद्या-मुत्तराङ्गं न्यसेत् ततः ।
कलशं तु शिरोदेशे पादस्थाने कमण्डलुम् ॥५८॥

ईशानकोन की वेदी के ऊपर देवका शय्यासन रक्खें। उनके चरण उत्तर दिशा में रक्खें। सिर भाग के पास कलश और चरण के स्थान के पास कमंडलु रक्खें ॥५८॥

व्यजनं दक्षिणे देवे दर्पणं वामतः शुभम् ।
रत्नन्यासं ततः कुर्याद् दिक्पालादिकपूजनम् ॥५९॥

देवकी दाहिनी ओर पंखा और बायीं ओर दर्पण रखना शुभ है। पीछे आठ दिशाओं में रत्न को स्थापित करके दिक्पाल आदि की पूजा करें ॥५९॥

आग्नेय्यां गणेशं विद्या-दीशानेग्रहमण्डलम् ।
नैर्ऋत्ये वास्तुपूजा च वायव्ये मातरः स्मृताः ॥६०॥

अग्निकोन में गणेश, ईशानकोन में नवग्रह मंडल, नैर्ऋत्य कोन में वास्तुपूजा और वायव्यकोन में मातृदेवता की स्थापना करें ॥६०॥

रत्नन्यास—

वज्रं वैडूर्यकं मुक्ता-मिन्द्रनीलं सुनीलकम् ।
पुष्परागं च गोमेदं [1]प्रवालं पूर्वतः क्रमात् ॥६१॥

वज्र (हीरा), वैडूर्य, मोती, इन्द्रनील, सुनील, पुष्पराग, गोमेद और प्रवाल, ये आठ रत्न पूर्वादि सृष्टिक्रम से रक्खें ॥६१॥

धातुन्यास—

सुवर्णं रजतं ताम्रं कांस्यं रीतिं च सीसकम् ।
वङ्गं लोहं च पूर्वादौ सृष्ट्या धातूनिह न्यसेत् ॥६२॥

सोना, चांदी, तांबा, कांसी, पीतल, सीसा, कलई और लोह, ये आठ धातु पूर्वादि सृष्टिक्रम से रक्खें ॥६२॥

औषधिन्यास—

*वज्री वह्निः सहदेवी विष्णुकान्तेन्द्रवारुणी ।
शंखिनी ज्योतिष्मती चैवेश्वरी तान् क्रमान् न्यसेत् ॥६३॥

*अपराजितपृच्छा सूत्र १४६ श्लो० १५ में 'वचा' पाठ है।

1. 'चन्द्रं पूर्वादिषु न्यसेत्' इति पाठान्तरे।

वज्री (वज्रदंती), नद्दि (तिलक), सहदेवी, विष्णुकान्ता, इन्द्रवारुणी, शंखाहुली, ज्योतिष्मती (मालकांगनी) और शिवलिंगी, ये आठ औषधियां पूर्वादि दिशाओं में सृष्टिक्रम से रक्खें ॥६३॥

धान्यन्यास—

यवो व्रीहिस्तथा कङ्गु-र्जूर्णाह्वा च तिलैर्युताः ।
शाली मुद्गाः समाख्याता गोधूमाश्च क्रमेण तु ॥६४॥

जव, व्रीहि, कंगु, जुआर, तिल, शाली, मूंग और गेहूं, ये आठ धान्य पूर्वादि दिशाओं में सृष्टिक्रम से रक्खें।

आचार्य और शिल्पिओं का सम्मान—

यद्देवाभरणं पूजा वस्त्रालङ्कारभूषणम् ।
तत्सर्वं शिल्पिने दद्याद् आचार्याय तु याज्ञिकम् ॥६५॥

देवसंस्कार के लिये जो वस्त्र और अलंकार आदि आभूषण चढाया जाता है, वे सब शिल्पिको देना चाहिये और आचार्य को यज्ञ संबंधी सब वस्तु देनी चाहिये ॥६५॥

ततो महोत्सवं कुर्यान्नृत्यगीतैरनेकशः ।
नैवेद्यारात्रिकं पूजा-मङ्गन्यासादिकं तथा ॥६६॥

पीछे अनेक प्रकार के नृत्य और गीत पूर्वक महोत्सव करें, नैवेद्य चढावें, आरती करें और अंगन्यास (मुद्रा न्यास) आदि करें ॥६६॥

क्षीरं क्षौद्रं घृतं खण्डं पक्वान्नानि बहून्यपि ।
षड्रसस्वादुभक्ष्याणि सन्मानं परिकल्पयेत् ॥६७॥

दूध, शहद, घी, खांड और अनेक प्रकार के पकवान, तथा षड्रस के स्वाद वाले भोजन पदार्थ, ये सन्मान पूर्वक देव के आगे रखने चाहिये ॥६७॥

विप्राणां सम्प्रदायैश्च वेदमन्त्रैस्तथागमैः ।
सकलीकरणं जीवन्यासं कृत्वा प्रतिष्ठयेत् ॥६८॥

पीछे ब्राह्मण अपने सम्प्रदाय के अनुसार वेद मंत्रों से तथा आगम मंत्रों से सकलीकरण करके देवमें जीवन्यास करें। पीछे प्रतिष्ठित करें ॥६८॥

प्रासाददेव न्यास—

प्रासादे देवतान्यासं स्थावरेषु पृथक् पृथक् ।
खरशिलायां वाराहं पीठ्यां नागकुलानि च ॥६९॥

प्रासाद के थरों और अंगोपांगों में अलग २ देवों का न्यास करके पूजन करें। खरशिला में वाराह देव और भीट के थर में नागदेव का न्यास करें ॥६९॥

अकुम्भे जलदेवांश्च पुष्पके किंनरांस्तथा ।
[1]नन्दिनं जाड्यकुम्भे च कर्णाल्यां स्थापयेद्धरिम् ॥७०॥

कुम्भ के थर में जलदेव, पुष्पकंठ के थर में किन्नरदेव, जाड्यकुम्भ में नंदीदेव, और कर्णिका के थर में हरिदेव का न्यास करें ॥७०॥

गणेशं गजपीठे स्या-दश्वपीठे तथाश्विनौ ।
नरपीठे नरांश्चैव धर्मां च खुरके यजेत् ॥७१॥

गजपीठ में गणेश, अश्वपीठ में दोनों अश्विनीकुमार, नरपीठ में नरदेव और खुरा के थर में पृथ्वीदेवी का न्यास करके पूजन करें ॥७१॥

भद्रे संध्यात्रयं [2]कुम्भे पार्वतीं कलशे स्थिताम् ।
कपोताल्यां च गान्धर्वान् मञ्चिकायां सरस्वतीम् ॥७२॥

भद्र के कुम्भ में तीन संध्यादेवी, कलश के थर में पार्वतीदेवी, केवाल के थर में गांधर्वदेव और मांची के थर में सरस्वती देवी का न्यास करें ॥७२॥

जङ्घायां च दिक्पाला-निन्द्रमुद्गमे संस्थितम् ।
सावित्रीं भरणीदेशे शिरावट्यां च देविकाम् ॥७३॥

जंघा के थर में दिक्पाल, उद्गम के थर में इन्द्र, भरणी के थर में सावित्री और शिरावटी के थर में धाराधार देवी का न्यास करे ॥७३॥

विद्याधरान् कपोताल्या-मन्तराले सुरांस्तथा ।
पर्जन्यं कूटच्छाद्ये च ततो मध्ये प्रतिष्ठयेत् ॥७४॥

केवाल के थर में विद्याधर, अंतराल के थर में किन्नरादि सुर और छज्जा के थरमें पर्जन्य (मेघ) देव, इनका न्यास करें। अब भीतर के मध्य भाग में देवों का न्यास कहते हैं ॥७४॥

१. 'नन्दिनो'। २. 'सङ्घारं कुम्भके' अप० सू० १५७ श्लो० ८।

शाखयोश्चन्द्रसूर्यौ च त्रिमूर्तिश्चोत्तरङ्गके ।
उदुम्बरे स्थितं यक्ष-मश्विनावर्द्धचन्द्रके ॥७५॥

द्वारशाखाओं में चंद्र और सूर्य, उत्तरंग में त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और शिव), देहली में यक्षों और अर्धचंद्र (शंखावटी) में दोनों अश्विनीकुमारों का न्यास करें ॥७५॥

कौलिकायां धराधारं क्षितिं चोत्तानपट्टके ।
स्तम्भेषु पर्वतांश्चैव-माकाशं च करोटके ॥७६॥

कौलिका में धराधर, उत्तानपट्ट (बड़ा पाट) में क्षिति, स्तंभ में पर्वत और घूमट में आकाश, इन देवों का न्यास करें ॥७६॥

मध्ये प्रतिष्ठयेद् देवं मकरे जाह्नवीं तथा ।
शिखरस्योरुश्रृङ्गेषु पञ्च पञ्च प्रतिष्ठयेत् ॥७७॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्य ईश्वरी च सदाशिवः ।
शिखरे चेश्वरं देवं शिखायां च सुराधिपम् ॥७८॥

गर्भगृह में स्वदेव, मगर मुखवाली नाली में गंगाजी, शिखर के उरुश्रृंगों में ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, पार्वती और सदाशिव, इन पांच २ देवों का न्यास करके पूजन करें। शिखर में ईश्वर देवका और शिखामें सुराधिप (इन्द्र) का न्यास करें ॥७७-७८॥

ग्रीवायामम्बरं देव-मण्डके च निशाकरम् ।
पद्माक्षं पद्मपत्रे च कलशे च सदाशिवम् ॥७९॥

शिखर की ग्रीवा में अंबरदेव, श्रृंगों में तथा आमलसार में निशाकर (चंद्रमा), पद्मपत्र और पद्मशिला में पद्माक्ष देव, और कलश में सदाशिव, इन देवों का न्यास करें ॥७९॥

सद्यो वामस्तथाघोर-स्तत्पुरुष ईश एव च ।
कर्णादिगर्भपर्यन्तं पञ्चाङ्गे तान् प्रतिष्ठयेत् ॥८०॥

इति स्थावर प्रतिष्ठा ।

सद्य, वामन, अघोर, तत्पुरुष और ईश, इन पांच देवों का कोने से लेकर गर्भपर्यन्त पांच अंगों में (कर्ण, प्रतिरथ, रथ, प्रतिभद्र और मुखभद्र में) न्यास करें ॥८०॥

प्रतिष्ठितदेव का प्रथम दर्शन—

प्रथमं देवताद्दष्टे-र्दर्शयेदन्नधान्यहितम् ।
चित्रकुमारिकां वास्तु-ततो लोकान् प्रदर्शयेत् ॥८१॥

प्रतिष्ठा के दिन रात्रि में देवालय बंध होने के बाद प्रातःकाल खोलने के समय देवका प्रथम दर्शन ब्राह्मण कुमारी करे, बाद में अन्य सब लोग दर्शन करें ॥८१॥

सूत्रधार पूजन—

'इत्येवं विविधं कुर्यात् सूत्रधारस्य पूजनम् ।
भूवित्तवस्त्रालङ्कारै-र्गोमहिष्यश्च वाहनैः ॥८२॥
अन्येषां शिल्पिनां पूजा कर्त्तव्या कर्मकारिणाम् ।
स्वाधिकारानुसारेण वस्त्रैस्ताम्बूलभोजनैः ॥८३॥

अच्छी तरह विधि पूर्वक देव के प्रतिष्ठित होने के बाद भूमि, धन, वस्त्र और अलंकारों से तथा गाय, भैंस और घोड़ा आदि वाहनों से सूत्रधार की सम्मान पूर्वक पूजा करें। एवं काम करने वाले अन्य शिल्पिओं की भी उनके योग्यतानुसार वस्त्र, तांबूल और भोजन आदि से सम्मान पूर्वक पूजा करें ॥८२-८३॥

देवालयय निर्माण का फल—

काष्ठपाषाणनिर्माण-कारिणो यत्र मन्दिरे ।
भुंक्तेऽसौ च तत्र सौख्यं शङ्करस्त्रिदशैः सह ॥८४॥

काष्ठ अथवा पाषाण आदिका प्रासाद जो बनवाता है, वह देवलोक में महादेव तथा अन्य देवों के साथ सुखको भोगता है ॥८४॥

सूत्रधार का आशिर्वाद—

पुण्यं प्रासादजं स्वामी प्रार्थयेत् सूत्रधारतः ।
सूत्रधारो वदेत् स्वामिन् ! अक्षयं भवतात् तव ॥८५॥

इति सूत्रधारपूजा ।

देवालय बनवाने वाला स्वामी सूत्रधार से प्रासाद बंधवाने के पुण्य की प्रार्थना करें, तब सूत्रधार आशीर्वाद देवें कि—'हे स्वामिन् देवालय बंधवाने का तुम्हारा पुण्य अक्षय हो' ॥८५॥

आचार्य पूजन—

आचार्यं पूजनं कृत्वा वस्त्रस्वर्णधनैः सह ।
दानं दद्याद् द्विजातिभ्यो दीनान्धदुर्बलेषु च ॥८६॥

१. 'इत्यनन्तरतः' ।

सर्वेषां धनमाधारः प्राणीनां जीवनं परम् ।
वित्ते दत्ते प्रतुष्यन्ति मनुष्याः पितरः सुराः ॥८७ ॥८७॥

इति प्रतिष्ठाविधिः ।

प्रतिष्ठाका कार्य समाप्त होने के बाद वस्त्र और सुवर्ण आदि धन से आचार्य की पूजा करें। पीछे ब्राह्मणों को तथा दीन, अंध और दुर्बल मनुष्यों को दान देवें। क्योंकि सब प्राणियों का आधार धन हैं, और यही प्राणियों का श्रेष्ठ जीवन है। धन का दान देने से मनुष्य, पितृदेव और अन्य देव संतुष्ट होते हैं ॥८६–८७॥

जिनदेव प्रतिष्ठा—

प्रतिष्ठा वीतरागस्य जिनशासनमार्गतः ।
नवकारैः सूरिमंत्रैश्च सिद्धकेवलिभाषितैः ॥८८॥

वीतराग देव की प्रतिष्ठा जैन शासन में बतलाई हुई विधि के अनुसार, सिद्ध हुए केवलज्ञानियों ने कहे हुए नवकारमंत्र और सूरिमंत्रों के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिये ॥८८॥

ग्रहाः सर्वज्ञदेवस्य पादपीठे प्रतिष्ठिताः ।
येनानन्तविभेदेन मुक्तिमार्ग उदाहृताः ॥८९॥

जिनानां मातरो यक्षा यक्षिण्यो गौतमादयः ।
सिद्धाः कालत्रये जाताश्चतुर्विंशतिमूर्त्तयः ॥९०॥

सर्वज्ञदेव के पादपीठ (पबासन) में नवग्रह स्थापित करें। ये जिनदेव अनन्त भेदों से मुक्ति मार्ग के अनुगामी कहे गये है। जिनदेव की माता, यक्ष, यक्षिणी और गौतम आदि गणधर आदि की मूर्त्तियां, तथा तीन काल में सिद्ध होनेवाले चौवीस २ जिनदेव की मूर्त्तियां हैं ॥८९–९०॥

इति स्थाप्या जिनावासे त्रिधाकारं गृहं तथा ।
सांवर्णं शिखरं [1]मन्दा-र्कं त्वष्टापदादिकम् ॥९१॥

ये मूर्त्तियां जिनालय में स्थापित करें। जिनालय समवसरण वाला, सवरणा वाला, शिखर वाला, गुम्बद वाला और अष्टापद वाला बनाया जाता है ॥९१॥

१. 'नन्दीश्वरं।'

प्रासादो वीतरागस्य पुरमध्ये सुखावहः ।
नृणां कल्याणकारी स्याच्चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥६२॥

इति जिनप्रतिष्ठा ।

वीतरागदेव का प्रासाद नगर में हो तो सुखकारक है, तथा मनुष्यों का कल्याण करने वाला है। इसलिये चारों दिशा में ये बनाने चाहियें ॥६२॥

जलाश्रय प्रतिष्ठा—

माघादिपञ्चमासेषु वापीकूपादिसंस्कृतम् ।
तडागस्य चतुर्मास्यां कुर्यादाषाढमार्गयोः ॥६३॥
असंस्कृतं जलं देवाः पितरो न पिबन्ति तत् ।
संस्कृते तृप्तिमायाति तस्मात् संस्कारमाचरेत् ॥६४॥

बावड़ी और कुआं आदिकी प्रतिष्ठा मीन संक्रांति का मास छोड़कर माघ आदि पांच मास में करें। तालाव की प्रतिष्ठा चौमासे के चार मास आषाढ़ और मार्गशीर्ष, ये छह मास में करें। जलाश्रयों के जल का संस्कार न किया जाय तो उसका जल पितृदेव पीते नहीं हैं। संस्कार किये जल से ही पितृदेव तृप्त होते हैं। इसलिये जल का संस्कार अवश्य करना चाहिये ॥६३-६४॥

जलाश्रय बनवाने का पुण्य—

जीवनं वृक्षजन्तूनां करोति यो जलाश्रयम् ।
इहे वा स लभेत्सौख्य-मुख्यां स्वर्गे च मानवः ॥६५॥

जल, वृक्ष और सब जीवों का जीवन है। इसलिये जो मनुष्य जलाश्रय बनवाता है, वह मनुष्य जगत में धनधान्य से पूर्ण ऐहिक सुखों को, तथा स्वर्ग के सुखों को प्राप्त करता है और मोक्ष पाता है ॥६५॥

वास्तुपुरुषोत्पत्ति—

पुरान्धकवधे रुद्र-ललाटात् पतितः क्षितौ ।
स्वेदस्तस्मात् समुद्भूतं भूतमत्यन्तं दुस्सहम् ॥६६॥
गृहीत्वा सहसा देवै-र्न्यस्तं भूमावधोमुखम् ।
जानुनी कोणयोः पादौ रक्षोदिशि शिवे शिरः ॥६७॥

प्राचीन समय में जब महादेव ने अंधक नाम के दैत्य का विनाश किया, उस समय परिश्रम से महादेव के ललाट में से पसीना की बिन्दु पृथ्वी के ऊपर पड़ी। इस बिन्दु से एक अत्यन्त भयंकर भूत उत्पन्न हुआ। उसको देवों ने शीघ्र ही पकड़ करके पृथ्वी के ऊपर इस प्रकार से औंधा गिरा दिया, कि उसकी दोनों जानु और हाथ की दोनों कोन्ही वायु और अग्नि कोने में, चरण नैर्ऋत्य कोने में और मस्तक ईशान कोने में रहा ॥९६-९७॥

चत्वारिंशच्च ताः पञ्च वास्तुदेहे स्थिताः सुराः ।
देव्योऽष्टौ बाह्यगास्तेषां वसनाद्वास्तुरुच्यते ॥९८॥

इस औंधे पड़े हुए वास्तुपुरुष के शरीर पर पैंतालीस देव स्थित हो गये और उसके चारों कोने पर आठ देवियां भी स्थित हो गईं। इस प्रकार तरेपन (५३) देव उस भूत के शरीर पर निवास करते हैं, इसलिये उसको वास्तु पुरुष कहते हैं ॥९८॥

अधोमुखेन विज्ञप्तौ त्रिदशान् विहितो बलिम् ।
तेनैव बलिना शान्तिं करोति हानिमन्यथा ॥९९॥
प्रासादभवनादीनां प्रारम्भे परिवर्त्तने ।
वास्तुकर्मसु सर्वेषु पूजितः सौख्यदो भवेत् ॥१००॥

अधोमुख करके रहा हुआ वास्तु पुरुष देवों को विनति करता है कि—जो मनुष्य मेरे ऊपर बैठे हुए देवों को विधिपूर्वक बलि देवेगा, तो उस बलिके प्रभाव से मैं उसको शान्ति प्रदान करूंगा और बलि नहीं देने पर तो हानि करूंगा। इसलिये प्रासाद और भवन आदि के सब वास्तु कर्म के प्रारम्भ से सम्पूर्ण होने तक सब वास्तु कर्म में वास्तु पूजन करने से सुखशांति होवेगी ॥९९-१००॥

एकपदादितो वास्तु-र्यावत्पदसहस्रकम् ।
द्वात्रिंशन्मण्डलानि स्युः क्षेत्रतुल्याकृतीनि च ॥१०१॥

एक पदसे लेकर एक हजार पद तक का वास्तु बनाने का विधान है। वास्तुपूजन के बत्तीस मंडल हैं, वे क्षेत्र की आकृति के अनुसार आकृति वाले हैं ॥१०१॥ A

एकाशीतिपदो वास्तु-श्चतुःषष्टिपदोऽथवा ।
सर्ववास्तुविभागेषु पूजयेन्मण्डलद्वयम् ॥१०२॥

A सविस्तार जानने के लिये देखें। अपराजित पृच्छा सूत्र ५७ और ५८ वां।

वास्तु पूजन के बत्तीस मंडलों में से इक्यासीपद का और चौसठ पद का, ये दो मंडल पूजने चाहिये ॥१०२॥*

वास्तुपुरुष के ४५ देव—

ईशो मूर्धनि पर्जन्यो दक्षिणकर्णमाश्रितः ।
जयः स्कन्धे महेन्द्राद्याः पञ्च दक्षिणबाहुगाः ॥१०३॥
¹महेन्द्रादित्यसत्याश्च भृश आकाशमेव च ।

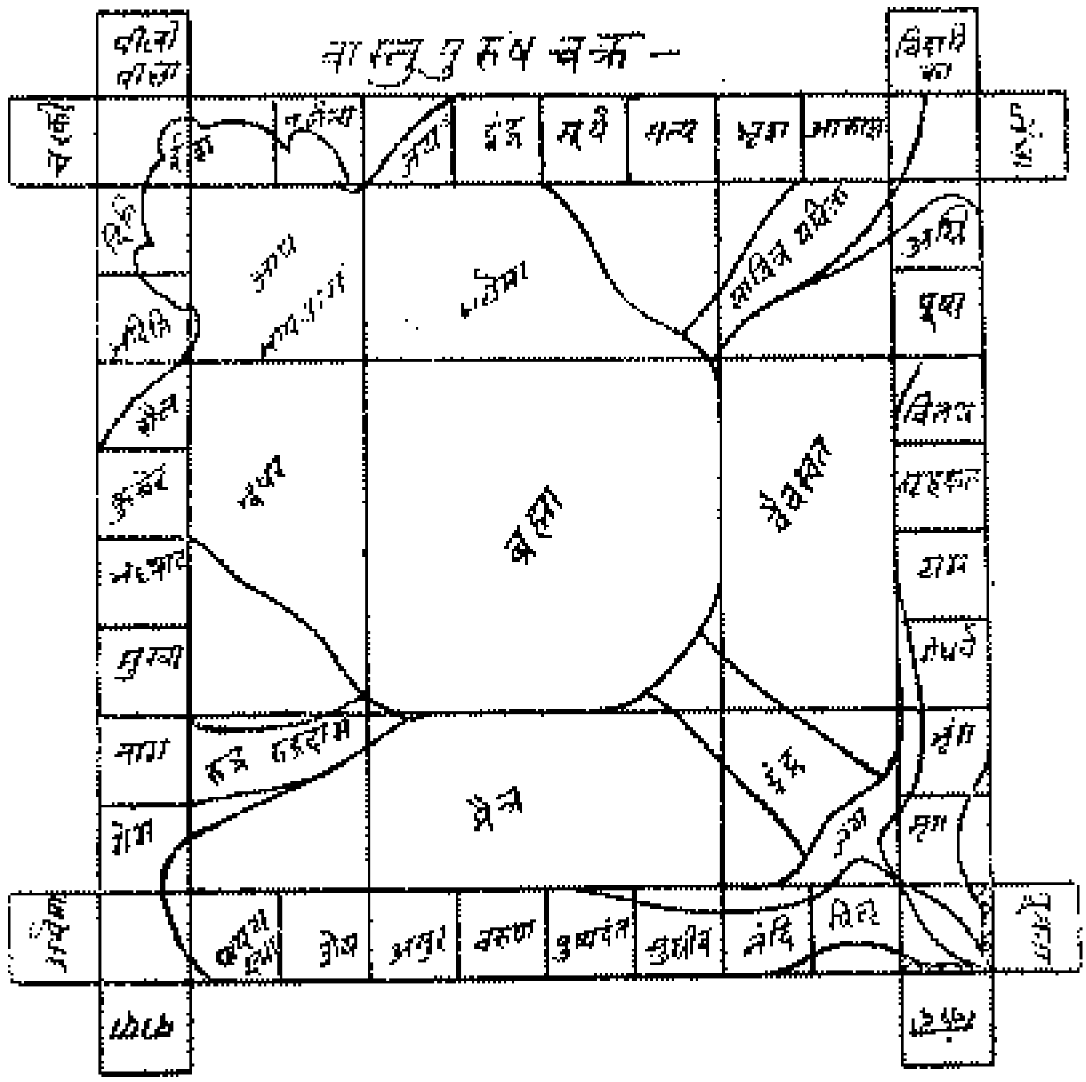

वास्तुपुरुष के मस्तक पर ईशदेव, दाहिने कान पर पर्जन्यदेव, दाहिने स्कंध पर जयदेव और दाहिनी भुजा पर इन्द्र आदि पांच—इन्द्र, सूर्य, सत्य भृश और आकाश देव स्थित हैं ॥१०३॥

वह्निर्जानुनि पूषाद्याः सप्त पादनलीस्थिताः ॥१०४॥

*विशेष जानने के लिये देखें राजवल्लभ मंडन अध्याय २.

१. 'महेन्द्रः सूर्यः सत्यश्च ।'

पूषाथ वितथश्चैव गृहक्षतो यमस्तथा ।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः सप्त सुरा इति ॥१०५॥

अग्निकोण में जानुके ऊपर अग्नि देव और दाहिने पैर की नलीके ऊपर पूषा आदि सात देव—पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गान्धर्व, भृंगराज और मृग, ये सात देव स्थित हैं ॥१०४–१०५॥

पादयोः पितरस्तस्मात् सप्त पादनलीस्थिताः ।
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः ॥१०६॥
[1]असुरशोषयक्ष्माश्च रोगो जानुनि संस्थितः ।
नागो मुख्यश्च भल्लाटः सोमो गिरिश्च बाहुगाः ॥१०७॥

दोनों पैरके ऊपर पितृदेव, बायें पैरकी नली पर दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदंत, जलाधिप (वरुण), असुर, शोष, और पापयक्ष्मा ये सात देव स्थित हैं। नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर और गिरि (शैल), ये पांच देव बायीं भुजा पर स्थित हैं ॥१०६–१०७॥

अदितिः स्कन्धदेशे च वामे कर्णे दितिः स्थितः ।
द्वात्रिंशद्बाह्यगा देवा नाभिपृष्ठे स्थितो विधिः ॥१०८॥

बायें स्कंध पर अदिति देव और बायें कान पर दितिदेव स्थित है। इस प्रकार बत्तीस देव वास्तुपुरुष के बाह्य अंगों पर हैं। मध्य नाभि के पृष्ठ भाग में ब्रह्मा स्थित है ॥१०८॥

अर्यमा दक्षिणे वामे स्तने तु पृथिवीधरः ।
विवस्वानऽथ मित्रश्च दक्षवामोरुगावुभौ ॥१०९॥

दाहिने स्तन पर अर्यमा और बायें स्तन पर पृथ्वीधर देव स्थित है। दाहिनी ऊरु पर विवस्वान् और बायीं ऊरु पर मित्रदेव स्थित है ॥१०९॥

आपस्तु गलके वास्तो-रापवत्सो हृदि स्थितः ।
[2]सावित्री सविता तद्वत् करं दक्षिणमाश्रितौ ॥११०॥

वास्तुपुरुष के गले पर आपदेव, हृदय के ऊपर आपवत्स देव स्थित हैं। दाहिने हाथ पर सावित्री और सविता ये दो देवियां स्थित हैं ॥११०॥

इन्द्र इन्द्रजयो मेढ्रे रुद्रोऽसौ वामहस्तके ।
रुद्रदासोऽपि तत्रैव इति देवमयं वपुः ॥१११॥

१. 'शोष।' २. 'सावित्र'।

मेढू (लिंग) स्थान पर इन्द्र और इन्द्रजय देव स्थित हैं। बायें हाथ पर रुद्र और रुद्रदास देव स्थित हैं। इस प्रकार कुल पैंतालीस देवमय वास्तुपुरुष का शरीर है ॥१११॥

वास्तुमंडल के कोने की आठ देवियां—

ऐशान्ये चरकी बाह्ये पीलीपीछा च पूर्वदिक् ।
विदारिकाग्निकोणे च जम्भा याम्यदिशाश्रिता ॥११२॥
नैऋत्ये पूतना स्कन्दा पश्चिमे वायुकोणके ।
पापराक्षसिका सौम्येऽर्यमैवं सर्वतोऽर्चयेत् ॥११३॥

वास्तुमंडल के बाहर ईशानकोने में उत्तर दिशा में चरकी और पूर्व में पीलीपीच्छा, अग्निकोने में पूर्व में विदारिका और दक्षिण में जम्भा देवी, नैऋत्यकोने में दक्षिण में पूतना और पश्चिम में स्कन्दा, वायुकोने में पश्चिम में पापराक्षसिका और उत्तर में अर्यमा देवी का न्यास करके पूजन करे ॥११२-१३॥

देवीः क्रूरान् यमादींश्च माषान्नैः सुरयामिषैः ।
अपरान् घृतपक्वान्नैः सर्वान् स्वर्णसुगन्धिभिः ॥११४॥

इति वास्तुपुरुषविन्यासः ।

देवियों को और यम आदि क्रूर देवों को माषान्न, सुरा और आमिष से और बाकी के सब देवों को घृत, पक्वान्न, सुवर्ण और सुगंधित पदार्थों से पूजना चाहिये ॥११४॥

शास्त्रप्रशंसा—

एकेन शास्त्रेण गुणाधिकेन,
विना द्वितीयेन पदार्थसिद्धिः ।
तस्मात् प्रकारान्तरतो विलोक्य,
मणिर्सुवर्णाढ्योऽपि सहायकाङ्क्षी ॥११५॥

इस ग्रंथ के कर्त्ता श्रीमंडनसूत्रधार का कहना है कि—शिल्पशास्त्र अनेक हैं। उनमें यह एक ही शास्त्र अधिक गुणवाला होने पर भी दूसरे शिल्पशास्त्र देखे बिना पदार्थ की सिद्धि नहीं होती, इसलिये प्रकारान्तर से दूसरे शिल्पग्रन्थ भी देखने चाहिये। जैसे—अकेला मणि अधिक गुणवाला होने पर भी इतनी शोभा नहीं देता जितनी सुवर्णादि अन्य पदार्थों के साथ मिलाने से देता है। इसी प्रकार शिल्प के अनेक शास्त्र देखने से शिल्पी शिल्पशास्त्र का विद्वान् होता है ॥११५॥

अन्तिममंगल—

श्रीविश्वकर्मगणनाथमहेशचण्डी—
श्रीविश्वरूपजगदीश्वरसुप्रसादात् ।
प्रासादमण्डनमिदं रुचिरं चकार,
श्रीमण्डनो गुणवतां भुवि सूत्रधारः ॥११६॥

इति श्रीसूत्रधारमण्डनविरचिते वास्तुशास्त्रे प्रासादमण्डने
अष्टमोऽध्यायः समाप्तः । सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः ।

श्री विश्वकर्मा, गणपति, महेश, चंडीदेवी और विश्वस्वरूप श्री जगदीश्वर की कृपा से जगत के विद्वानों में सुप्रसिद्ध मंडन नाम का सूत्रधार है। उसने प्रासाद निर्माण विधि का यह प्रासादमंडन नाम का शास्त्र आनंद पूर्वक बनाया ॥११६॥

इति श्री पंडित भगवानदास जैन ने इस प्रासादमंडन के आठवें
अध्याय की सुबोधिनी नामकी भाषाटीका समाप्त की।

॥ श्रीरस्तु ॥

परिशिष्ट नं.–१

केसरी आदि २५ प्रासाद।

(अपराजितपृच्छा सूत्र १५६)

विश्वकर्मोवाच—

सान्धारांश्च ततो वक्ष्ये प्रासादान् पर्वतोपमान् ।
शिखरैर्विविधाकारैर्-नैकाण्डैश्च[1] विभूषितान् ॥१॥

पर्वत के जैसे शोभायमान, अनेक प्रकार के शिखरवाले और अनेक शृंगों से विभूषित, ऐसे सान्धार जातिके प्रासादों को कहता हूं। ऐसा विश्वकर्मा कहता है ॥१॥

आद्यः पञ्चाण्डको ज्ञेयः केसरी नाम नामतः ।
[2]तावदन्तं चतुर्वृद्धि-र्यावदेकोत्तरं शतम् ॥२॥

प्रथम केसरी नामका प्रासाद पांच शृंगो वाला है। पीछे प्रत्येक प्रासाद के ऊपर चार २ शृंग बढाने से पच्चीसवें अंतिम मेरु प्रासाद के ऊपर एक सौ एक शृंग होजाता है ॥२॥

पच्चीस प्रासादों का नाम—

केसरी सर्वतोभद्रो नन्दनो नन्दशालिकः ।
नन्दीशो मन्दरश्चैव श्रीवत्सश्चामृतोद्भवः ॥३॥
हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ।
इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ॥४॥
वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोज्ज्वलः ।
ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभस्तथा ॥५॥
मेरुः प्रासादराजः स्याद् देवानामालयो हि सः ।
संयोगेन च सान्धारान् कथयामि यथार्थतः ॥६॥

---

१. 'राण्डकैर्नैकभूषितान् ।' २. 'तावन्तश्चतुरो वृद्धिः ।'

केसरी, सर्वतोभद्र, नन्दन, नन्दशालिक, नन्दीश, मंदर, श्रीवत्स, अमृतोद्भव, हिमवान्, हेमकूट, कैलाश, पृथिवीजय, इन्द्रनील, महानील, भूधर, रत्नकूटक, वैडूर्य, पद्मराग, वज्रक, मुकुटोज्ज्वल, ऐरावत, राजहंस, गरुड, वृषभ और मेरु ये पचीस प्रासाद सांधारजाति के हैं। उसका अनुक्रमसे यथार्थ वर्णन किया जाता है ॥३ से ६॥

[1]दशहस्तादधस्तान्न प्रासादो भ्रमसंयुतः ।
षट्त्रिंशान्तं निरन्धारा धाद्ये वेदादिहस्ततः ॥७॥

यदि प्रासाद का मान दस हाथ से न्यून न हो तो, वह प्रासाद भ्रम (परिक्रमा) वाला बना सकते है। एवं चार हाथ से छत्तीस हाथ तक के मान का प्रासाद बिना भ्रमका भी बना सकते हैं ॥७॥

पञ्चविंशतिः [2]सान्धाराः प्रयुक्ता वास्तुवेदिभिः ।
भ्रमहीनास्तु ये कार्याः शुद्धच्छन्देषु नागराः ॥८॥

वास्तुशास्त्र के विद्वानों ने ये सान्धार (परिक्रमा वाले) पचीस प्रासाद शुद्ध नागर जाति के कहे हैं, वे भ्रम रहित भी बना सकते हैं ॥८॥

१–केसरीप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे अष्टएकविभाजिते ।
भागभागं भ्रमभित्ति-र्द्विभागो देवतालयः ॥९॥

सान्धार जाति के प्रासाद की समचोरस भूमि के आठ २ भाग करें, उनमें से एक भाग की भ्रमणी, एक २ भाग को दो दीवार और दो भागका गभारा बनाना चाहिये ॥९॥

निरन्धारे पदा भित्ति-रर्धे गर्भं प्रकल्पयेत् ।
मध्यच्छन्दश्च वेदास्रो बाह्ये कुम्भायतं शृणु ॥१०॥

यदि प्रासाद निरंधार बनाना हो तो प्रासाद के मान के चौथे भागकी दीवार और आधे मानका गभारा बनाना चाहिये। जैसे–आठ हाथ के मानका प्रासाद है, तो उसका चौथा भाग दो २ हाथ की दीवार और चार हाथ का गभारा बनावें। मध्य में गभारा समचोरस रक्खें। अब गभारा के बाहर कुंभा की ऊंचाई के मानको कहता हूं ॥१०॥

१. 'दशहस्तादधो नास्ति ।'

२. गभारेके चारों तरफ फेरी देने के लिये परिक्रमा बनी होवे ऐसे प्रासादों को सांधार प्रासाद कहा जाता है और परिक्रमा बनी हुई न होवे तो निरंधार प्रासाद कहा जाता है।

क्षेत्रार्धे च भवेद् भद्रं भद्रार्धे कर्णविस्तरः ।
कर्णस्यार्धप्रमाणेन कर्तव्यो भद्रनिर्गमः ॥११॥

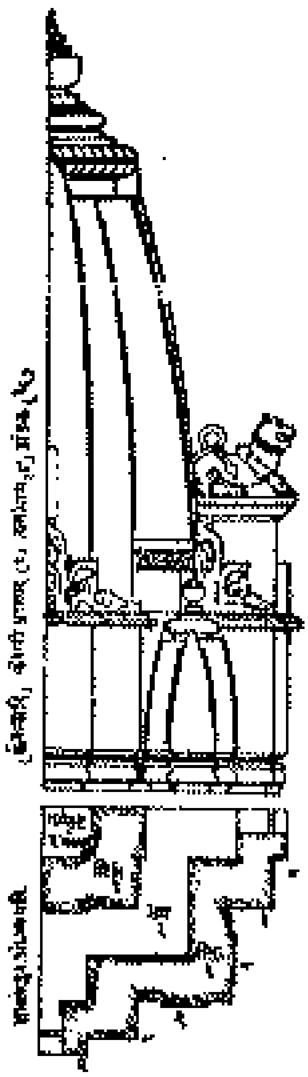

प्रासाद की भूमिके नाप से आधा भद्रका विस्तार रक्खें। इससे आधे मानका कोणा का विस्तार रक्खें। कोणे के आधे मान का भद्रका निर्गम रक्खें ॥११॥

चतुष्कर्णेषु ख्यातानि श्रीवत्सशिखराणि च ।
रथिकोद्गमे च पञ्चैव केशरी गिरिजाप्रियः ॥१२॥

इति केसरीप्रासादः ॥१॥

प्रासाद के चारों कोणे के ऊपर एक २ श्रीवत्स शृंग चढावें, तथा भद्रके ऊपर रथिका और उद्गम बनावें। इस प्रकार का केसरी नामका प्रासाद पार्वती देवी को प्रिय है ॥१२॥

शृंग संख्या—चार कोणे ४ और एक शिखर एवं कुल ५ शृंग।

२—सर्वतोभद्रप्रासाद—

क्षेत्रे विभक्ते दशधा गर्भः षोडशकोष्ठकैः ।
भित्तिं भ्रमं च भित्तिं च भागभागं प्रकल्पयेत् ॥१३॥

प्रासाद की समचोर भूमिका दस २ भाग करें। उसमें से मध्य गभारा कुल सोलह भाग का रक्खें। बाकी एक भाग की दीवार, एक भाग की भ्रमणी और एक भागकी दूसरी बाहर की दीवार रक्खें ॥१३॥

द्विभागः कर्ण इत्युक्तो भद्रं षड्भागिकं तथा ।
निर्गमं चैकभागेन भागिका पार्श्वशोभना ॥१४॥

दो २ भाग का कोणा और छभागका भद्र का विस्तार रक्खें। भद्र का निर्गम एक भाग रक्खें और भद्र के दोनों तरफ एक २ भाग की एक २ कोणी बनावें ॥१४॥

कर्णिका चार्धभागेन भागार्धं भद्रनिर्गमम् ।
भागत्रयं च विस्तारे मुखभद्रं विधीयते ॥१५॥

भद्र के दोनों तरफ आधे २ भाग की एक २ कणिका भी बनाना—इस का और कोणीय। का निर्गम आधा भाग और भद्र का निर्गम आधा भाग, इस प्रकार कुल एक भाग भद्र का निर्गम जानें। भद्रका विस्तार छ भाग रखना ऊपर लिखा है, उसमें से दो कोणी और

दो कर्णिका का तीन भाग छोड़ करके बाकी तीन भाग रहे, उतना मुखभद्र का विस्तार रक्खें ॥१५॥

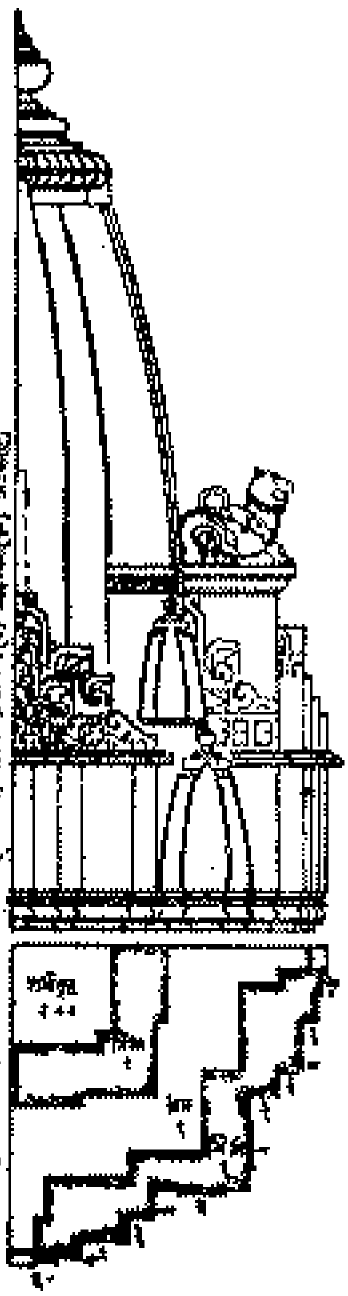

भद्रे वै तूद्गमाः पञ्च कर्णेऽष्टशृङ्गकानि च ।
श्रीवत्सशिखरं कार्यं घण्टाकलशसंयुतम् ॥१६॥

इति सर्वतोभद्रप्रासादः ॥२॥

भद्रके ऊपर पांच २ उद्गम करें। कोणे के ऊपर दो २ एवं कुल आठ शृंग चढ़ावें आमलसार और कलश वाला श्रीवत्स शिखर बनावें ॥१६॥

शृंगसंख्या—प्रत्येक कोण पर २-२ और एक शिखर एवं कुल ९ शृंग।

३—नंदनप्रासाद—

श्रीवत्सं भद्रमारूढं रथिकोद्गमभूषिते ।
नन्दने नन्दति स्वामी दुरितं हरति ध्रुवम् ॥१७॥

इति नन्दनप्रासादः ॥३॥

यह नन्दन प्रासाद का मान और स्वरूप सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुसार जानें। फर्क इतना कि—भद्र के गवाक्ष और उद्गम के ऊपर एक २ उरुशृंग चढ़ावें। इसको बनानेवाला स्वामी आनन्द में रहता है और सब पापों का नाश करता है ॥१७॥

शृंगसंख्या—चार कोणे ८, चार भद्रे ४ और एक शिखर, एवं कुल १३ शृंग।

४—नंदिशालप्रासाद—

तस्यैवं भद्रोर्ध्वे शृङ्गं भद्रं तत्पालुरूपतः ।
नन्दिशालो गुणैर्युक्तः स्वरूपो लक्षणान्वितः ॥१८॥

इति नन्दिशालप्रासादः ॥४॥

इस नन्दिशालप्रासाद का तलमान और स्वरूप नन्दन प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष इतना कि—भद्र के ऊपर एक २ उरुशृंग अधिक चढ़ावें तो यह नन्दिशाल प्रासाद सब गुणों से युक्त अच्छे लक्षणवाला सुन्दर बनता है ॥१८॥

शृंगसंख्या-कोणे ८, भद्रे ८ और एक शिखर, एवं कुल १७ शृंग।

५–नन्दीशप्रासाद—

त्रिभागं च भवेद् भद्रं भद्रार्धं प्ररथस्तथा ।
कर्णे शृङ्गद्वयं भद्रे एकैकं प्ररथे तथा ॥१९॥

इति नन्दीशप्रासादः ॥५॥

यह नन्दीशप्रासाद का मान और स्वरूप सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—छः भाग का भद्र है, उसके बदले तीन भाग का भद्र और डेढ़ २ भाग का प्रतिरथ बनावें। कोणे के ऊपर दो २, भद्र के ऊपर एक २ और प्रतिरथ के ऊपर एक २ शृंग चढ़ावें ॥१९॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे ८, भद्रे ४ और एक शिखर, एवं कुल २१ शृंग।

६–मंदरप्रासाद—

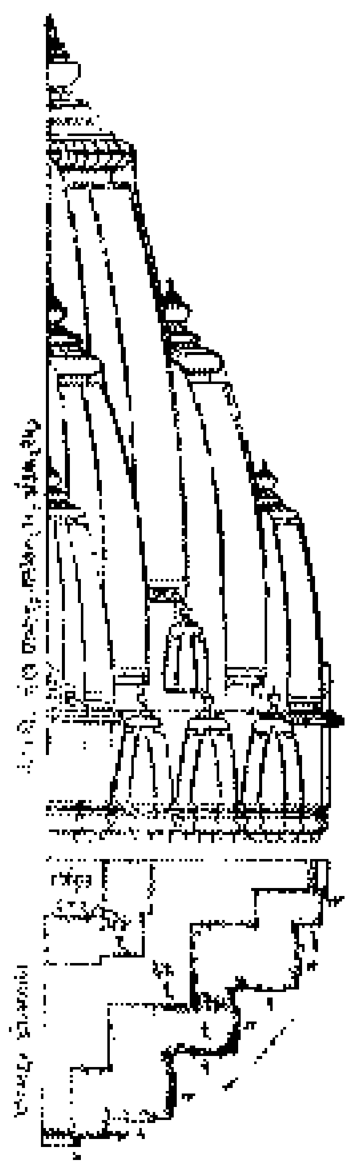

द्वादशांशस्तु विस्तारो मूलगर्भस्तदर्धतः ।
भागभागं तु कर्तव्या द्वे भित्ती चान्धकारिका ॥२०॥
कर्णप्ररथभद्रार्धं कारयेद् द्विद्विभागतः ।
प्ररथः समनिष्कासो भद्रं भागेन निर्गमम् ॥२१॥
कर्णे द्वे भद्रके द्वे च चैकं प्रतिरथे तथा ।
सघण्टा कलशा रेखा रथिकोद्गमभूषिताः ॥२२॥

इति मन्दरप्रासादः ॥६॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करें। उनमें से छः भाग का गभारा बनावें, तथा एक २ भाग की दोनों दीवार और एक २ भाग की भ्रमणी (परिक्रमा) बनावें। गभारे के बाहर के भाग में कोणा, प्ररथ और भद्रार्ध ये सब दो २ भाग का रक्खें। उसका निर्गम समदल रक्खें और भद्रका निर्गम एक भाग रक्खें। कोणे के ऊपर दो २ शृंग, भद्रके ऊपर दो २ उरुशृंग और प्रतिरथ के ऊपर एक २ शृंग चढ़ावें। आमलसार, कलश, रेखा, गवाक्ष और उद्गम, ये सब शोभायमान बनावें ॥२० से २२॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्ररथे ८ भद्रे ८ और एक शिखर, एवं कुल २५ शृंग।

७–श्रीवृक्षप्रासाद—

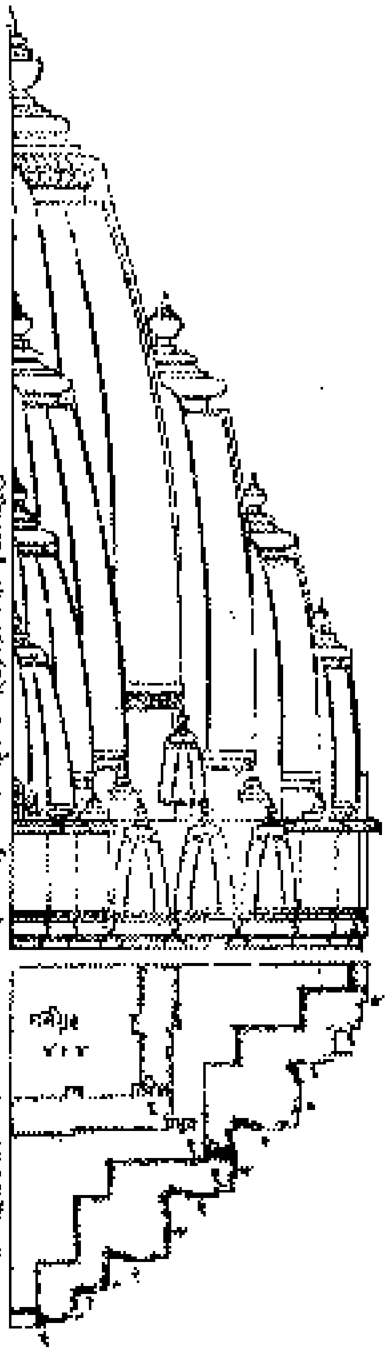

चतुर्दशांशविस्तारे गर्भश्चाष्टांशविस्तरः ।
भागभागं भ्रमो भित्ति-र्बाह्यभित्तिस्तु भागिका ॥२३॥
कर्णे शृङ्गद्वयं कुर्या-च्छिखरं चाष्टविस्तरम् ।
प्रत्यः कर्णमानेन तिलकं शृङ्गकोपरि ॥२४॥
नन्दिकायां च तिलकं भद्रे शृङ्गत्रयं भवेत् ।
श्रीवृक्षस्तु समाख्यातः कर्त्तव्यस्तु श्रियः पतेः ॥२५॥

इति श्रीवृक्षप्रासादः ॥७॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका चौदह भाग करें। उनमें से आठ भागका गभारा, एक भागकी दीवार, एक भागकी भ्रमणी और एक भागकी बाहर की दीवार, इस प्रकार भीतर का मान होता है। बाहर का मान मंदर प्रासाद के अनुसार होता है। विशेष इतना कि—दो भाग का कोणा, दो भागका प्रतिरथ, एक भागकी नंदी, और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। कोणेके ऊपर दो शृंग, प्रतिरथ के ऊपर एक शृंग और एक तिलक चढ़ावें। शिखर का विस्तार आठ भाग का रक्खें। नंदीके ऊपर एक २ तिलक रक्खें। भद्रके ऊपर तीन २ उरुशृंग चढ़ावें। ऐसा श्रीवृक्षप्रासाद का स्वरूप है, वह विष्णु के लिये बनावें ॥२३ से २५॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्रतिरथे ८, भद्रे १२, एक शिखर, एवं कुल २९ शृंग। तिलक संख्या–प्रतिरथे ८ और नंदीपर ८ एवं कुल १६ तिलक।

८–अमृतोद्भवप्रासाद—

कर्णे शृङ्गत्रयं कुर्यात् प्रत्यः पूर्वकल्पितः ।
अमृतोद्भवनामोऽसौ प्रासादः सुरपूजितः ॥२६॥

इति अमृतोद्भवप्रासादः ॥८॥

यह प्रासाद का तलमान और स्वरूप श्रीवृक्षप्रासाद के अनुसार जानें। विशेष इतना कि—कोणा के ऊपर तीन शृङ्ग चढ़ावें, बाकी प्रतिरथ आदि के ऊपर श्रीवृक्ष प्रासाद की तरह जानें। ऐसा अमृतोद्भवप्रासाद देवों से पूजित है ॥२६॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्रतिरथे ८, भद्रे १२, एक शिखर, एवं कुल ३३ शृंग, तिलक संख्या—प्रतिरथे ८ और नन्दी पर ८, कुल १६ तिलक।

९—हिमवान् प्रासाद—

द्वे द्वे शृङ्गे प्रतिरथे त्वमृतोद्भवसंस्थितौ ।
हिमवान् द्वे उरुशृङ्गे पूज्यः सुरनरोरगैः ॥२७॥

इति हिमवान् प्रासादः ॥९॥

यह प्रासाद का तलमान और स्वरूप अमृतोद्भव प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—पढरे के ऊपर तिलक के बदले शृंग अर्थात् दो शृंग चढ़ावें और भद्रके ऊपर से एक उरुशृंग कम करके दो उरुशृंग रक्खें। ऐसा हिमवान् नामका प्रासाद देव, मनुष्य और नाग-कुमारों से पूजित है ॥२७॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, भद्रे ८, एक शिखर, एवं कुल ३७ शृंग और तिलक ८ नंदी के ऊपर।

१०—हेमकूट प्रासाद—

उरुशृङ्गत्रयं भद्रे नन्दिका तिलकान्विता ।
हेमकूटस्तदा नाम प्रकर्त्तव्यस्त्रिमूर्त्तिके ॥२८॥

इति हेमकूटप्रासादः ॥१०॥

यह प्रासादका तलमान और स्वरूप हिमवान् प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—भद्र के ऊपर तीसरा उरुशृंग और नंदी के ऊपर दूसरा तिलक चढ़ावें। यह हेमकूट नामका प्रासाद ब्रह्मा, विष्णु और महेश, यह त्रिमूर्ति के लिये बनावें ॥२८॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, भद्रे १२, एक शिखर, एवं कुल ४१ शृंग और १६ तिलक नन्दी के ऊपर।

११—कैलास प्रासाद—

नन्दिकाप्रान्ततः शृङ्गं रेखाश्च तिलकोत्तमाः ।
कैलासस्य तदा नाम ईश्वरस्य सदा प्रियः ॥२९॥

इति कैलासप्रासादः ॥११॥

यह प्रासाद का मान और स्वरूप हेमकूट प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—नन्दी के ऊपर दो तिलक हैं, उसके बदले एक शृंग और उसके ऊपर एक तिलक चढ़ावें।

तथा कोणे के ऊपर तीन शृंग हैं, उसके बदले दो शृंग और उसके ऊपर तिलक चढ़ाना चाहिये। ऐसा कैलाश नामका प्रासाद ईश्वर को हमेशा प्रिय है ॥२९॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, भद्रे १६, नंदी पर ८, भद्रे १२, एक शिखर, एवं कुल ४५ शृंग और तिलक ८ कोने और ८ नन्दी के ऊपर।

१२—पृथिवीजय प्रासाद—

रेखोर्ध्वे तिलकं त्यक्त्वा शृङ्गं तत्रैव कारयेत् ।
पृथ्वीजयस्तदा नाम कर्त्तव्यः सर्वदैवते ॥३०॥

इति पृथ्वीजयप्रासाद: ॥१२॥

यह प्रासाद का तलभाग और स्वरूप कैलासप्रासादकी तरह जानें। विशेष यह है कि—कोणेके ऊपर का तिलक हटाकर के उसके बदले शृंग चढ़ावें। ऐसा पृथ्वीजय नामका प्रासाद सब देवों के लिये बनावें ॥३०॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्रतिरथे १६, नंदी के ऊपर ८, भद्रे १२, एक शिखर, एवं कुल ४९ शृंग और तिलक ८ नंदी के ऊपर।

१३—इन्द्रनीलप्रासाद—

षोडशांशकविस्तारे द्विभागः कर्णविस्तरः ।
नन्दिका चैकभागेन द्व्यंशः प्रतिरथस्तथा ॥३१॥
पुनर्नन्दी भवेद् भागं भद्रं वेदांशविस्तरम् ।
समस्तं समनिष्कासं भद्रे भागो विनिर्गमः ॥३२॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का सोलह भाग करें। उसमें से दो भाग का कोण, एक भागकी नन्दी, दो भागका प्रतिरथ, एक भाग की दूसरी नन्दी और दो भागका भद्रार्ध बनावें। ये सब अंगोका निर्गम समदल और भद्रका निर्गम एक भाग रक्खें ॥३१-३२॥

चतुष्टयांशको गर्भो वेष्टितो भीत्तिभागतः ।
बाह्यभीत्तिर्भवेद् भागा द्विभागा च भ्रमन्तिका ॥३३॥

सोलह भाग में गभारे का विस्तार आठ भाग (समचोरस ६४ भाग) करें गभारे की दीवार एक भाग, भ्रमणी दो भाग और बाहर की दीवार एक भाग रक्खें ॥३३॥

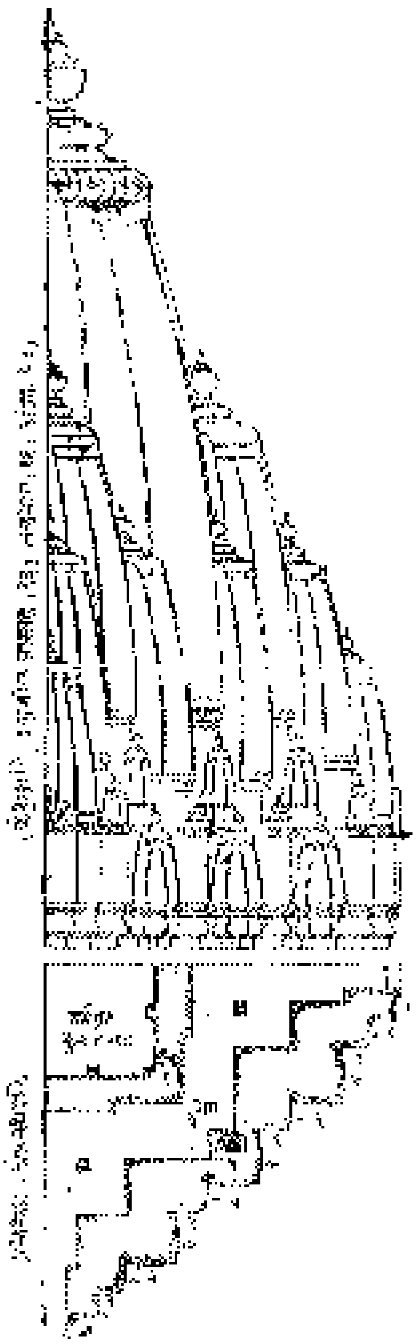

कर्णे शृङ्गद्वयं कार्यं शिखरं सूर्यविस्तरम् ।
नन्दिकायां तु तिलकं प्रत्यङ्गं च द्विभागिकम् ॥३४॥
शृङ्गद्वयं प्रतिरथे उरुशृङ्गं षडंशकम् ।
[1]शृङ्गद्वयं नन्दिकाया-मुरःशृङ्गं युगांशकम् ॥३५॥
द्विभागं भद्रशृङ्गं तु शृङ्गार्धे चैव निर्गमः ।
कर्णे प्रतिरथे चैव ह्युदकान्तरभूषितम् ॥३६॥
इन्द्रनीलस्तदा नाम इन्द्रादिसुरपूजितः ।
वल्लभः सर्वदेवानां शिवस्यापि विशेषतः ॥३७॥

इति इन्द्रनीलप्रासादः ॥१३॥

कोणे के ऊपर दो शृंग चढ़ावें। शिखर का विस्तार बारह भाग रखें। नन्दी के ऊपर एक तिलक चढ़ावें और दो भाग के विस्तार वाला प्रत्यंग चढ़ावें। प्रतिरथ के ऊपर दो शृंग चढ़ावें। पहला उरुशृंग छः भाग विस्तार में रखें। नन्दी के ऊपर एक शृंग चढ़ावें। दूसरा उरुशृंग विस्तार में चार भाग का और तीसरा उरुशृंग विस्तार में दो भाग का रखें। इन उरुशृंगों का निर्गम विस्तार से आधा रखें। कोणा और प्रतिरथ उदकान्तर वाला बनावें। ऐसा इन्द्रनील प्रासाद इन्द्रादि देवों से पूजित है, यह सब देवों को और विशेष कर शिवजी को प्रिय है ॥३४ से ३७॥

शृंग संख्या—कोणे ८, प्रतिरथे १६, भद्र नन्दी के ऊपर ८, भद्रे १२, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ५३ शृंग और तिलक ८ कर्ण नन्दी पर।

१४–महानील प्रासाद––

कर्णे नन्दी (कर्णनन्द्यां ?) तथा शृङ्गं रेखोर्ध्वे तिलकं तथा ।
महानीलस्तदा नाम कर्त्तव्यः सर्वदैवते ॥३८॥

इति महानीलप्रसादः ॥१४॥

१. 'शृंगद्वयं' अशुद्ध पाठ मालुम होता है। उस स्थान पर 'शृङ्गमेकं' ऐसा पाठ चाहिये जिसे शृंगों की संख्या ठीक मिल जाय।

यह महानील प्रासाद का तलमान और स्वरूप इन्द्रनील प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—कर्णनन्दी के ऊपर से तिलक हटा करके उसके बदले शृंग रक्खें। ऐसा महानील प्रासाद सब देवों के लिये बनावें ॥३८॥

शृंग संख्या—कोणे ४, नंदी पर ८, प्रत्यंग ८, प्रतिरथे १६, नन्दी पर ८ भद्रे १२ और एक शिखर, कुल ५७ शृंग और तिलक ४ कोणे।

१५—भूधरप्रासाद—

> कार्यं शृङ्गं च तिलकं रेखामध्ये प्रशस्यते ।
> भूधरस्य समाख्यातः प्रासादो देवतालयः ॥३९॥

इति भूधरप्रासादः ॥१५॥

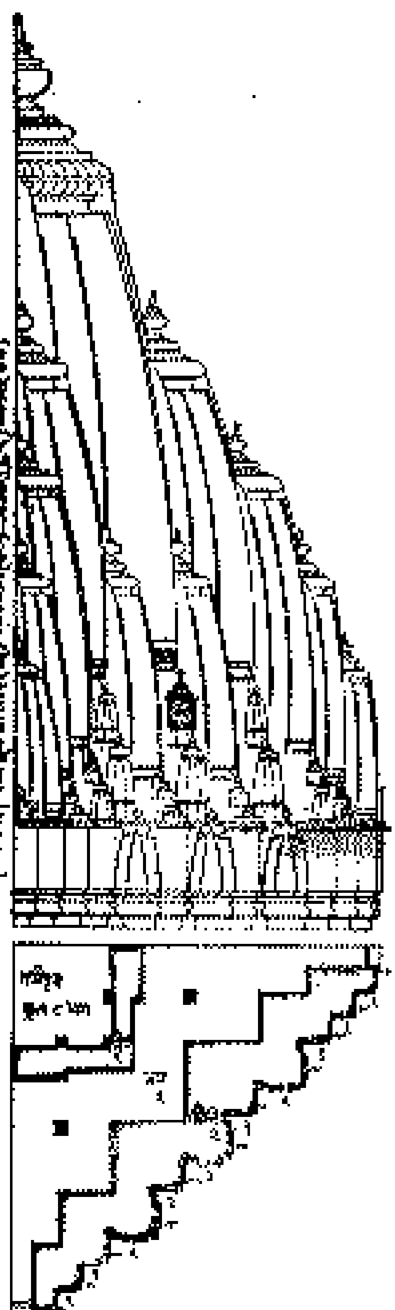

यह प्रासाद का मान और स्वरूप महानील प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह कि—कोणे के ऊपर एक शृंग अधिक चढ़ावें तो यह भूधर नाम का प्रासाद देवोंका स्थानरूप होता है ॥३९॥

शृंग संख्या—कोणे ८, बाकी पूर्ववत् जानें। तिलक ४ कोणे।

१६—रत्नकूटप्रासाद—

> भूधरस्य यथा प्रोक्तं द्विभागं वर्धयेत् पुनः ।
> पूर्ववद्दलसंख्यायां भद्रपार्श्वे द्विनन्दिके ॥४०॥
> द्विभागं बाह्यभित्तिश्च शेषं पूर्वप्रकल्पितम् ।
> तलच्छन्दमिति ख्यात-मूर्ध्वमानमतः शृणु ॥४१॥

यह रत्नकूट प्रासाद का मान और स्वरूप भूधर प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह कि—तल मानमें दो भाग बढ़ावें अर्थात् अठारह भाग करें। तथा भद्र के दोनों तरफ एक २ भाग की दूसरी नन्दी बनावें। और बाहर की दीवार दो भागकी रक्खें। बाकी सब पहले के अनुसार जानें। अब ऊर्ध्वमान सुनिये ॥४०—४१॥

कर्णे द्विशृङ्गं तिलकं शिखरं सूर्यविस्तरम् ।
तिलके द्वे नन्दिकायां प्रत्यङ्गं तु द्विभागिकम् ॥४२॥
शृङ्गत्रयं प्रतिरथे षड्भागा चोरुमञ्जरी ।
तिलके द्वे पुनर्नन्द्या-मुरुशृङ्गं युगांशकम् ॥४३॥
नन्द्यां च शृङ्गतिलके त्रिभागा चोरुमञ्जरी ।
द्विभागं भद्रशृङ्गं च अर्धे चार्धे च निर्गमः ॥४४॥

कोणे के ऊपर दो शृंग और एक तिलक चढ़ावें। शिखर का विस्तार बारह भाग का रक्खें। कर्णनन्दी के ऊपर दो तिलक और दो भाग का प्रत्यंग चढ़ावें। प्रतिरथ के ऊपर तीन शृंग और नंदी के ऊपर दो तिलक चढ़ावें। भद्रनन्दी के ऊपर एक शृंग और एक तिलक चढ़ावें। भद्र के ऊपर चार उरुशृंग चढ़ावें, उनमें पहला उरुशृंग छः भाग, दूसरा चार भाग, तीसरा तीन भाग और चौथा दो भाग का रक्खें। ये उरुशृंगों का निर्गम विस्तार से आधा रक्खें ॥४२ से ४४॥

शृंग संख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, प्रतिरथे २४, भद्र नन्दी पर ८, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ६५ शृंग और तिलक–कोणे ४, कोणी पर १६, प्ररथ नन्दी पर १६ और भद्र नन्दी पर ८, कुल ४४ तिलक।

रत्नकूटस्तदा नाम शिवलिङ्गेषु कामदः ।
प्रशस्तः सर्वदेवेषु राज्ञां तु जयकारणम् ॥४५॥

इति रत्नकूटप्रासादः ॥१६॥

ऊपर कहे हुए स्वरूप वाला रत्नकूट प्रासाद शिवलिंग के लिये बनावें तो सब इच्छित फल को देने वाला है। सब देवों के लिये बनावें तो भी प्रशस्त है और राजाओं को विजय कराने वाला है ॥४५॥

१७–वैडूर्यप्रासाद—

शृङ्गं तृतीयं रेखोर्ध्वे कर्णोर्ध्वं सर्वशोभनम् ।
वैडूर्यश्च तदा नाम कर्तव्यः सर्वदैवते ॥४६॥

इति वैडूर्यप्रासादः ॥१७॥

इस प्रासाद का तलमान और स्वरूप रत्नकूट प्रासाद के अनुसार है। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर से तिलक निकाल करके उसके बदले एक तीसरा शृंग चढ़ावें। सब

शोभायमान बनावें। यह वैडूर्य नाम का प्रासाद सब देवों के लिये बनाना चाहिये ॥४६॥

शृंगसंख्या—कोने १२, प्रत्यंग ८, प्रतिरथे २४, भद्रनंदी पर ८, भद्रे १६ एक शिखर, एवं कुल ६९ शृंग। तिलक संख्या—कर्णनंदी पर १६, प्रतिरथ नंदी पर १६ और भद्रनन्दी पर ८, एवं कुल ४० तिलक।

१८—पद्मरागप्रासाद—

तथैव तिलकं नन्द्यां शृङ्गयुग्मं तु संस्थितम्।
पद्मरागस्तदा नाम सर्वदेवसुखावहः ॥४७॥

इति पद्मरागप्रासादः ॥१८॥

इस प्रासाद का नाम और स्वरूप वैडूर्यप्रासाद की तरह समझें। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर से तीसरा शृंग हटा करके उसके बदले में तिलक चढ़ावें और भद्रनंदी के ऊपर जो एक तिलक और एक शृंग है, उसके बदले दो शृंग रक्खें। ऐसा पद्मराग नाम का प्रासाद सब देवों के लिये सुख कारक है ॥४७॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, प्रतिरथे २४, भद्र नंदी पर १६, भद्रे १६, एक शिखर, एवं कुल ७३ शृंग। तिलक संख्या—कोणे ४, कर्णनन्दी पर १६ प्रतिरथ नंदी पर १६ एवं कुल ३६ तिलक।

१९—वज्रकप्रासाद—

रेखोर्ध्वे च ततः शृंगं कर्त्तव्यं सर्वशोभनम्।
वज्रकश्चेति नामासौ शक्रादिसुरवल्लभः ॥४८॥

इति वज्रकप्रासादः ॥१९॥

इस प्रासाद का नाम और स्वरूप पद्मराग प्रासाद की तरह जानें। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर से तिलक हटा करके उसके बदले में शृंग चढ़ावें। यह वज्रक प्रासाद इन्द्र आदि देवों को प्रिय है ॥४८॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्रत्यंग ८, प्रतिरथे २४, भद्रनंदी पर १६ भद्रे १६, एक शिखर, कुल ७७ शृंग। तिलक संख्या—कर्णनंदी पर १६, प्रतिरथ नन्दी पर १६, कुल ३२ तिलक।

२०—मुकुटोज्ज्वलप्रासाद—

भक्ते विंशतिधा क्षेत्रे द्विभागः कर्णविस्तरः।
सार्धभागं भवेन्नन्दी कर्णवत्प्रतिरथस्तथा ॥४९॥

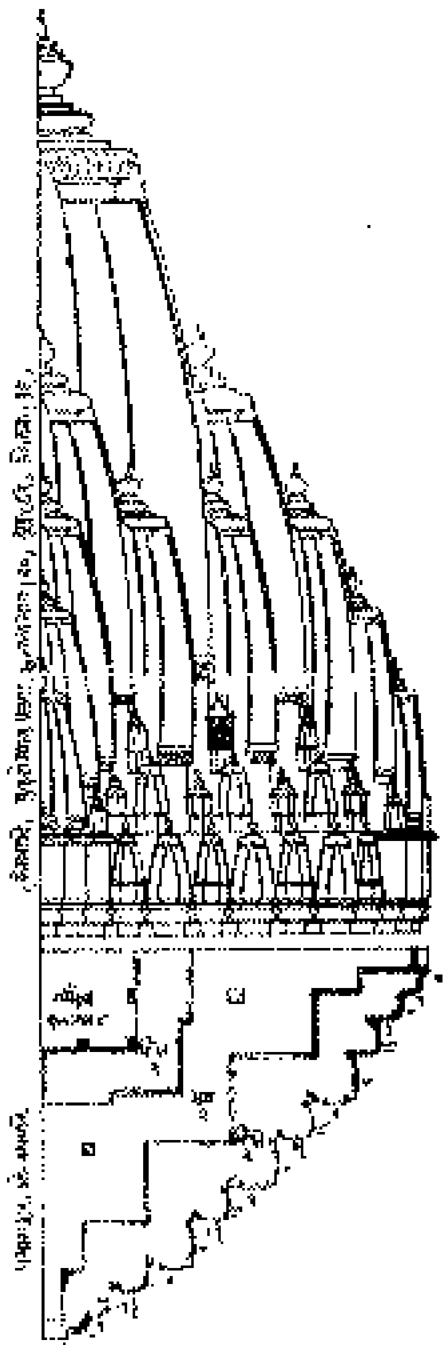

पुनर्नन्दी सार्धभागा भागा वै भद्रनन्दिका ।
वेदांशो भद्रविस्तार एकभागस्तु निर्गमः ॥५०॥
द्विभागा बाह्यभित्तिश्च द्विभागा च भ्रमन्तिका ।
तत्समा मध्यभित्तिश्च गर्भोऽष्टांशैः प्रकल्पितः ॥५१॥

इस प्रासाद की समचोरस भूमिका बीस भाग करें। उनमें से दो भाग का कोणा, डेढ़ भाग की नंदी, दो भाग का प्ररथ, डेढ़ भाग की नंदी, एक भाग की भद्रनन्दी और चार भाग का भद्र का विस्तार रक्खें। भद्र का निर्गम एक भाग का रक्खें। दो भाग बाहर की दीवार, दो भाग की भ्रमणी, दो भाग की गभारे की दीवार और आठ भाग का गभारा रक्खें ॥४९ से ५१॥

कर्णे द्विशृङ्गं तिलकं रेखा द्विसप्तविस्तरा ।
नन्द्यां शृङ्गं च तिलकं प्रत्यङ्गं तदूर्ध्वतः ॥५२॥
शृङ्गत्रयं प्रतिकर्णे सप्तांशा चोरुमञ्जरी ।
नन्द्यां शृङ्गं च तिलक-मुरुशृङ्गं षडंशकम् ॥५३॥
भद्रनन्द्यां तथा शृङ्ग-मिषुभागोरुमञ्जरी ।
भद्रशृङ्गं द्विभागं स मुकुटोज्ज्वल उच्यते ॥५४॥

इति मुकुटोज्ज्वलप्रासादः ॥२०॥

रेखा का विस्तार चौदह भाग का रक्खें। कोणे के ऊपर दो शृंग, और एक तिलक, कर्णनंदी के ऊपर एक शृंग और एक तिलक, ऊपर प्रत्यंग, प्ररथ के ऊपर तीन शृंग, नंदी के ऊपर एक शृंग और एक तिलक, भद्रनन्दी के ऊपर एक शृंग और भद्र के ऊपर चार शृंग चढ़ावें। पहला उरुशृंग सात भाग का, दूसरा उरुशृंग छः भाग का, तीसरा उरुशृंग पांच भाग का और चौथा उरुशृंग दो भाग का रक्खें। ऐसा मुकुटोज्ज्वल प्रासाद है ॥५२ से ५४॥

शृंगसंख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, कर्णनन्दी पर ८, प्ररथे २४, नंदी पर ८, भद्रनन्दी पर ८, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ८१ शृंग। तिलक संख्या—कोणे ४, कर्णनन्दी पर ८, प्ररथनन्दी पर ८ कुल २० तिलक।

२१—ऐरावतप्रासाद—

रेखोर्ध्वे च ततः शृङ्गं कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ।
ऐरावतस्तदा नाम शक्रादिसुरवल्लभः ॥५५॥

इत्यैरावतप्रासादः ॥२१॥

इसका तलमान और स्वरूप मुकुटोज्ज्वल प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर का तिलक हटाकर के उस जगह शृंग रक्खें। यह सब इच्छित फल देनेवाला है। ऐसा ऐरावतप्रासाद इन्द्रादि देवों के लिये प्रिय है ॥५५॥

शृंग संख्या— कोणे १२, नंदी पर ८, प्रत्यंग ८, प्ररथे २४, नंदीपर ८, भद्रनन्दी पर ८, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ८५ शृंग। तिलक संख्या—कर्णनन्दी पर ८, प्रति नन्दी पर ८, कुल १६ तिलक।

२२—राजहंसप्रासाद—

तथैव तिलकं कुर्याद् भद्रकर्णे तु शृङ्गकम् ।
राजहंसः समाख्यातः कर्त्तव्यो ब्रह्ममन्दिरे ॥५६॥

इति राजहंसप्रासादः ॥२२॥

इसका तलमान और स्वरूप ऐरावत प्रसाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर तीसरा शृंग के बदले में एक तिलक चढ़ावें, अर्थात् दो शृंग और एक तिलक चढ़ावें। तथा भद्रनंदी के ऊपर एक शृंग चढ़ावें। ऐसा राजहंस प्रासाद का स्वरूप है, यह ब्रह्मा के लिये बनावें ॥५३॥

शृंग संख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, कर्ण नन्दी पर ८, प्ररथे २४, प्ररथ नंदी के ऊपर ८, भद्रनन्दी के ऊपर १६, भद्रे १६ और एक शिखर, कुल ८९ शृंग। तिलक संख्या—कोणे ४, कर्णनंदी पर ८, प्ररथनंदी पर ८, एवं कुल २० तिलक।

२३—पक्षिराज (गरुड़) प्रासाद—

रेखोर्ध्वे च ततः शृङ्गं कर्त्तव्यं सर्वकामदम् ।
पक्षिराजस्तदा नाम कर्त्तव्यः स प्रियः पतेः ॥५७॥

इति पक्षिराजप्रासादः ॥२३॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप राजहंस प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह कि—कोणे के ऊपर का तिलक हटा कर के उसके बदले शृंग चढ़ावें। ऐसा पक्षिराज प्रासाद विष्णु के लिये बनाना चाहिये ॥५७॥

शृंगसंख्या—कोणे १२, प्रत्यंग ८, कर्णनंदी पर ८, प्ररथे २४, प्ररथनन्दी पर ८, भद्रनंदी पर १६, भद्रे १६ और एक शिखर, एवं कुल ९३ शृंग। तिलक संख्या कर्णनन्दी पर ८ और प्ररथ नन्दी पर ८, एवं कुल १६ तिलक।

२४–वृषभप्रासाद—

द्वाविंशत्या विभक्ते च द्विभागा भित्तिका भवेत् ।
भ्रमणी तत्समा चैव पुनर्भित्तिश्च तत्समा ॥५८॥
शतमूलपदैर्गर्भः कर्तव्यो लक्षणान्वितः ।
कर्णप्रतिरथरथो-परथा द्विद्विविस्तराः ॥५९॥
भद्रनन्दी भवेद् भागं वेदांशो भद्रविस्तरः ।
भागो भद्रे निर्गमः स्या–च्छेषा वै पूर्वकल्पिताः ॥६०॥

यह वृषभ प्रासाद की समचोरस भूमिका बाईस भाग करें। उनमें से दो भाग की बाहर की दीवार, दो भाग की भ्रमणी, दो भाग की गर्भ की दीवार और दस भाग का गभारा रखें। बाहर के अंगों में—कोण, प्रतिरथ, रथ और उपरथ, ये प्रत्येक दो दो भाग के विस्तार वाले रखें। भद्रनन्दी एक भाग की रखें और पूरा भद्र चार भाग का रखें। भद्र का निर्गम एक भाग का रखें। बाकी के सब अंग समदल बनावें ॥५८ से ६०॥

कर्णे द्विशृङ्गं तिलकं शिखरं षोडशांशकम् ।
शृङ्गद्वयं प्रतिरथे प्रत्यङ्गं च त्रिभागिकम् ॥६१॥
रथे शृङ्गत्रयं कुर्या–च्छृङ्गोर्ध्वे चोरुमञ्जरी ।
द्वे द्वे शृङ्गे उपरथे उरुशृङ्गं षडंशकम् ॥६२॥
भद्रनन्द्यां भवेच्छृङ्गं वेदांशा चोरुमञ्जरी ।
द्विभागं भद्रशृङ्गं च कर्तव्यं च मनोरमम् ॥६३॥
सप्तनवत्यण्डकयुक् कर्तव्यो लक्षणान्वितः ।
वृषभो नाम विख्यात ईश्वरस्य सदा प्रियः ॥६४॥

इति वृषभप्रासादः ॥२४॥

शिखर का विस्तार सोलह भाग का करें। कोणों के ऊपर दो शृंग और एक तिलक, प्रत्य ऊपर दो शृंग, उसके ऊपर तीन तीन भाग का प्रत्यंग, रथ के ऊपर तीन शृंग, उपरथ के ऊपर दो दो शृंग, भद्रनन्दी के ऊपर एक शृंग और भद्र के ऊपर चार उरुशृंग चढ़ावें। पहला उरुशृंग आठ भाग का, दूसरा छह भाग का, तीसरा चार भाग का और चौथा दो भाग का रखें। सत्तानवे शृंग वाला और सब लक्षण वाला, ऐसा यह वृषभ नाम का प्रासाद ईश्वर को सर्वदा प्रिय है ॥६१ से ६४॥

शृंग संख्या—कोणे ८, प्रत्यंग ८, प्रत्ये १६ रथे २४, उपरथे १६ भद्रनन्दी पर ८ भद्रे १६ और एक शिखर, एवं कुल ९७ शृंग। तिलक संख्या—४ कोण पर।

२५–मेरुप्रासाद—

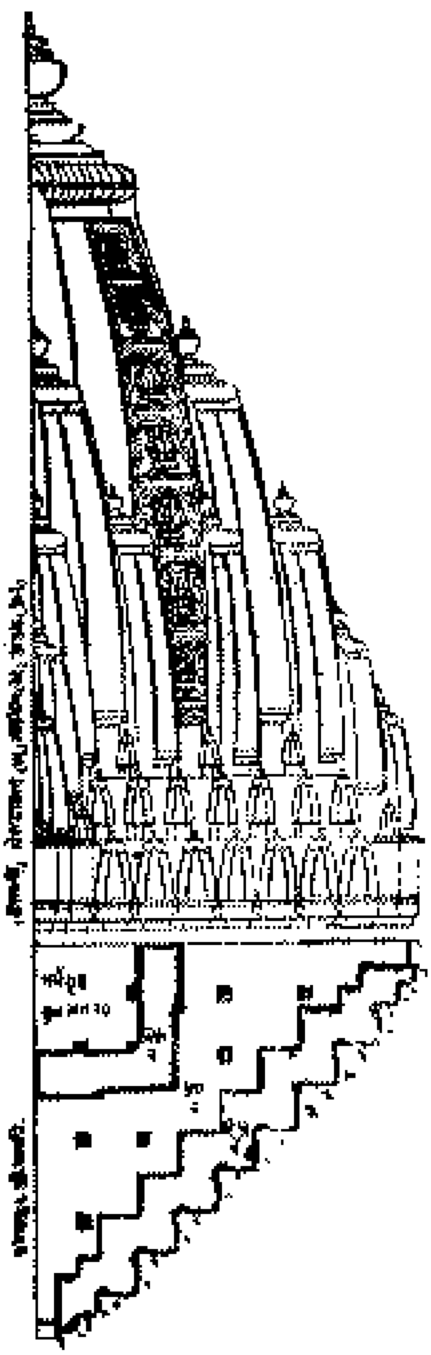

कर्णे शृङ्गत्रयं चैव एकोत्तरशताण्डकः ।
मेरुस्त्वाद्य समाख्यातः कर्तव्यश्च त्रिमूर्तिके ॥६५॥

यह मेरु प्रासाद का मान और स्वरूप वृषभ प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—वृषभ प्रासाद के कोणो के ऊपर का तिलक हटा कर के उसके बदले शृंग चढ़ावें। यह एक सो एक शृंग वाला मेरु प्रासाद ब्रह्मा, विष्णु और महेश के लिये बनावें ॥६५॥

शृंग संख्या—कोणे १२, प्रत्यंग ८, प्ररथे १६, रथे २४, उपरथे १६, भद्रनन्दी के ऊपर ८, भद्रे १६, और एक शिखर, एवं कुल १०१ शृंग।

मेरुप्रासाद की प्रदक्षिणा का फल—

सर्वस्य हेममेरोश्च यत्पुण्यं त्रिप्रदक्षिणैः ।
कृते शैलेष्टकाभिश्च तत्पुण्याल्लभतेऽधिकम् ॥६६॥

सम्पूर्ण सुवर्णमय मेरु की तीन प्रदक्षिणा करने से जो पुण्य होता है, उस पुण्य से भी अधिक पुण्य पाषाण अथवा ईंट के बने हुवे मेरु प्रासाद की प्रदक्षिणा करने से होता है ॥६६॥

हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।
एते देवाः स्थिता मेरौ नान्येषां च कदाचन ॥६७॥

इति श्रीगुर्जरसन्तानगुणकीर्त्तिप्रकाशप्रद्योतकारे श्रीभुवनदेवाचार्यो-
क्तापराजितपृच्छायां केसर्यादिसान्धारप्रासादनिर्णयाधिकारो
नामैकोनपञ्चाशदुत्तरशततमं सूत्रम् ॥

महादेव, ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य, इन देवों को मेरु प्रासाद में प्रतिष्ठित किये जाते हैं। अन्य दूसरे देवों को कभी भी उसमें प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिये ॥६७॥

इति पंडित भगवानदास जैन अनुवादित केसरी आदि
पच्चीस सांधार प्रासाद निर्णयाधिकार समाप्त।

परिशिष्ट नं. २

अथ जिनेन्द्रप्रासादाध्यायः ।

जय उवाच—

शृणु तात ! महादेव ! यन्मया परिपृच्छ्यते ।
प्रासादांश्च जिनेन्द्राणां कथयसि किं मां प्रभो ! ॥१॥

हे महादेव ! पिता मैंने आपको जिनेन्द्र के प्रासादों का वर्णन करने का कहा था, उसको हे भगवन् ! आप सविस्तार कहेंगे ? ॥१॥

किं तलं किञ्च शिखरं किं द्विपञ्चाशदुत्तमाः ।
समोसरणं किं तात ! किं स्यादष्टापदं हि तत् ॥२॥
महीधरो मुनिवरो द्विचारिणी सुशोभिता ।

हे तात ! उत्तम बावन जिनालय किस प्रकार के हैं ? तथा उनके तथा शिखरों की रचना कैसी है ? समवसरण, अष्टापद, महीधर, मुनिवर और शोभायमान द्विचारिणी प्रासादों की रचना कैसी है ? उसका आप वर्णन करें ॥२॥

श्रीविश्वकर्मोवाच—

शृणु वत्स ! महाप्राज्ञ यत्त्वया परिपृच्छ्यते ।
प्रासादांश्च जिनेन्द्राणां कथयाम्यहं तच्छृणु ॥३॥

श्री विश्वकर्मा अपने जयनाम के पुत्र को सम्बोधन करके कहते हैं कि—हे महा बुद्धिमान् पुत्र ! तुमने जिनेन्द्रों के प्रासादों का वर्णन के लिये पूछा, उसको विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनो ॥३॥

प्रासादमध्ये मेरवो भद्रप्रासादनागराः ।
अन्तका द्राविडाश्चैव महीधरा ललितास्तथा ॥४॥

उत्तम जाति के प्रासादों में मेरुप्रासाद, नागर जाति के भद्रप्रासाद, अंतकप्रासाद, द्राविड प्रासाद, महीधर प्रासाद और ललित जाति का प्रासाद, ये उत्तम जाति के प्रासाद हैं ॥४॥

तलनिर्माण—

प्रासाददीर्घतो व्यासो भित्तिबाह्ये सुरालये ।
षोडशांशैर्हरेद् भागं शेषं च द्विगुणं भवेत् ॥५॥
प्रथमे नवमे चैव द्वितीये चतुरो भवेत् ।
अयं विधिः प्रकर्त्तव्यो भागं च द्विर्त्र्यंशं भवेत् ॥६॥

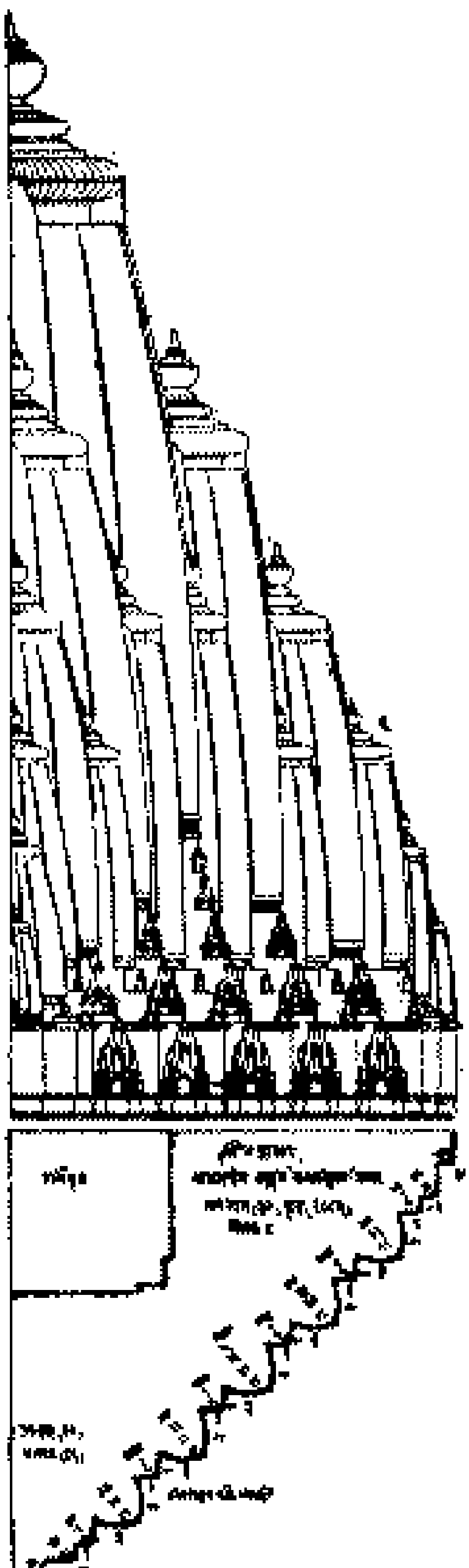

तत्र युक्तिः प्रकर्त्तव्यो प्रासादे सर्वनामतः ।
शिवमुखे मया श्रुतं भाषितं विश्वकर्मणा ॥७॥

मण्डोवर के बाहर के भाग तक प्रासाद की लम्बाई और चौड़ाई का गुणाकार करके उसको सोलह से भाग दे, जो शेष रहे उसको दुगुणा करना..................।

प्रथमा विभक्ति ।

१—कमलभूषण (ऋषभजिनवल्लभ) प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशत्पदभाजिते ।
कर्णभागत्रयं कार्यं प्रतिकर्णस्तथैव च ॥८॥
उपरथस्त्रिभागश्च भद्रार्धं वेदभागिकम् ।
नन्दिका कर्णिका चैव चैकभागा व्यवस्थिता ॥९॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बत्तीस भाग करें, उनमें से तीन भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिरथ, तीन भाग का उपरथ और चार भाग का भद्रार्ध रक्खें। कोणिका और नन्दिका एक २ भाग की रक्खे ॥८–९॥

कर्णे च क्रमचत्वारि प्रतिकर्णे क्रमत्रयम् ।
उपरथे द्वयं ज्ञेयं कर्णिकायां क्रमद्वयम् ॥१०॥
विंशतिरुरुश्रृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि च षोडश ।
कर्णे च केसरी दद्यान्नन्दनं नन्दशालिकम् ॥११॥
प्रथमक्रमो नन्दीश ऊर्ध्वे तिलकशोभनम् ।
कमलभूषणनामोऽयं ऋषभजिनवल्लभः ॥१२॥

इति ऋषभजिनवल्लभः कमलभूषणप्रासादः ॥१॥

कोणे के ऊपर चार[1] क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर तीन क्रम, उपरथ और नन्दिओं के ऊपर दो २ क्रम चढ़ावें चारों दिशा के भद्र के ऊपर कुल बीस उरुशृंग चढ़ावें। तथा सोलह प्रत्यंग कोने पर चढ़ावें। कोणा के ऊपर नीचे से पहला क्रम नन्दिश, दूसरा मन्दशालिक, तीसरा नंदन और चौथा केसरी क्रम चढ़ावें और उसके ऊपर एक शोभायमान तिलक चढ़ावें। ऐसा ऋषभजिन को वल्लभ कमलभूषण नामका प्रासाद है ॥१० से १२॥

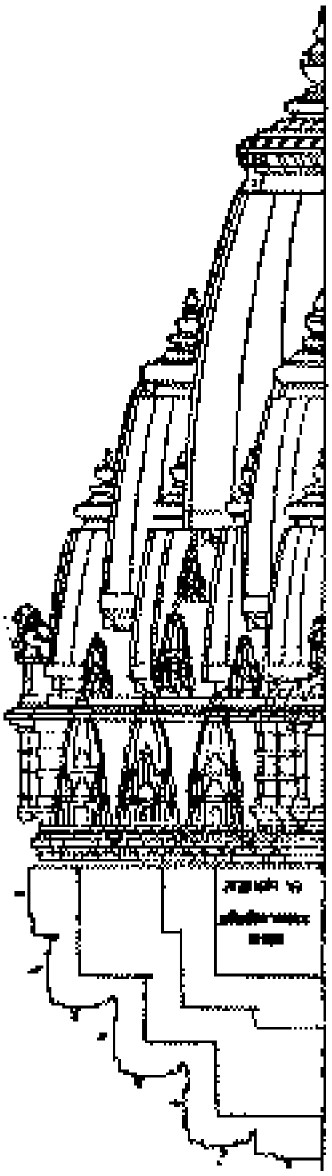

शृंगसंख्या—कोणे २२४, प्रतिकर्णे २८०, उपरथे १७४, नन्दिओं के ऊपर ४३२, भद्रे २०, प्रत्यंग १६, एक शिखर, कुल ११७ शृंग और चार तिलक कोणे के ऊपर।

विभक्ति दूसरी।

२—अजितजिनवल्लभ—कामदायकप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वादशपदभाजिते ।
कर्णभागद्वयं कार्यं प्रतिकर्णस्तथैव च ॥१३॥
[2]भद्रार्धं च द्विभागेन चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ।
कर्णे क्रमत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे क्रमद्वयम् ॥१४॥
अष्टौ चैवोरुशृङ्गाणि अष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
कर्णे च केसरीं दद्यात् सर्वतोभद्रमेव च ॥१५॥
नन्दनमजिते देयं चतुष्कर्णेषु शोभितम् ।
कामदायकप्रासादो ह्यजितजिनवल्लभः ॥१६॥

इति अजितजिनवल्लभः कामदायकप्रासादः ॥२॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करें, उनमें से दो भागका कोणा, दो भाग का प्रतिकर्ण और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। कोणे के ऊपर तीन क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर दो क्रम,

---

१. इस प्रकरण में किसी श्लोक में 'कर्म' और किसी श्लोक में 'क्रम' ऐसे दो प्रकार के शब्दों का प्रयोग प्राचीन प्रतियों में देखने में आता है। मैंने प्रायः कर्म के स्थान पर क्रम शब्द का प्रयोग ठीक समझकर किया है। बाकी दोनों शब्द ठीक हैं। क्रम कहने से शृंगों का अनुक्रम और कर्म (काम) कहने से शृंगों का समूह अर्थ होता है। काम का समूह अर्थ सोने चांदी के वरख बनाने वालों में प्रचलित है। ये लोग १६० वरख के समूह को एक काम बोलते हैं।

२. 'भद्रार्धं सार्धभागेन नन्दी तु चार्धभागिका।' पाठान्तरे।

आठ उरुशृंग और आठ प्रत्यंग कोने पर चढ़ावें। कोणे के ऊपर केसरी, सर्वतोभद्र और नंदन ये तीन क्रम चढ़ावें। ऐसा अजितजिनको वल्लभ कामदायक नाम का प्रासाद है ॥१३ से १६॥

शृंगसंख्या—कोणे १०८, प्रतिकर्णे ११२, भद्रे ८, प्रत्यंग ८ और एक शिखर, कुल २३७ शृंग।

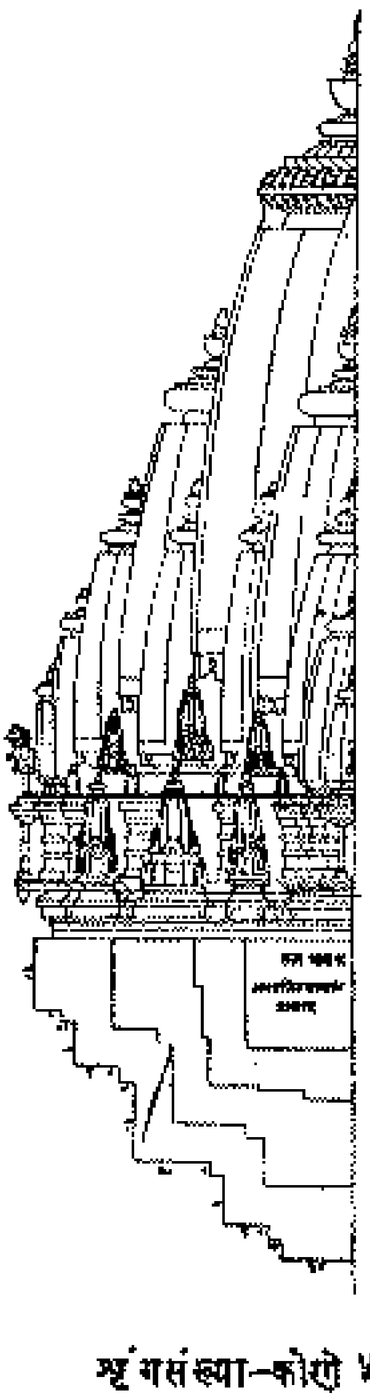

तीसरी विभक्ति।

३—संभवजिनवल्लभ—रत्नकोटिप्रासाद—

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे नवभागविभाजिते।
भद्रार्धं सार्धभागेन चैकभागः प्रतिरथः ॥१७॥
कर्णिका नन्दिका पादा सार्धकर्णो विचक्षण !।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥१८॥
[1]केसरीसर्वतोभद्र–क्रमद्वयं व्यवस्थितम्।
कर्णिकानन्दिकयोश्च [2]शृङ्गमेकैकं कारयेत् ॥१९॥
षोडश उरुशृङ्गाणि चाष्टौ प्रत्यङ्गानि च।
रत्नकोटिश्च नामायं प्रासादः संभवे जिने ॥२०॥

इति संभवजिनवल्लभो रत्नकोटिप्रासादः ॥३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका नव भाग करें। उनमें से डेढ़ भाग का भद्रार्ध, एक भाग का प्रतिरथ, कर्णी और नन्दिका पाव पाव भाग की और कोण डेढ़ भाग का रक्खें। कोणे के ऊपर और प्रतिकर्ण के ऊपर दो दो क्रम केसरी और सर्वतोभद्र चढ़ावें। कर्णी और नन्दिका के ऊपर एक एक शृंग चढ़ावें। चारों दिशा के भद्र के ऊपर सोलह उरुशृंग और आठ प्रत्यंग कोने पर चढ़ावें। ऐसा संभवजिन को वल्लभ रत्नकोटि नाम का प्रासाद है। ॥१७ से २०॥

शृंगसंख्या—कोणे ५६, प्रतिकर्णे ११२, कर्णीपर ८, नंदीपर ८, उरुशृंग १६, प्रत्यंग ८, और एक शिखर, कुल २०९ शृंग।

१. 'प्रथमक्रमकेसरी च द्वितीयं च श्रीवत्सकम्'

२. 'शृङ्गद्वयं च'

४—अमृतोद्भवप्रासाद —

तद्रूपे तत्प्रमाणे च रथे कर्णे तिलकं न्यसेत् ।
अमृतोद्भवनामोऽयं सर्वदेवेभ्यः कारयेत् ॥२१॥

इत्यमृतोद्भवप्रासादः ॥४॥

तल और स्वरूप रत्नकोटि प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—कोण और प्रतिरथ के ऊपर एक एक तिलक भी चढ़ावें। जिससे अमृतोद्भव नाम का प्रासाद होता है। यह सब देवों के लिये बनावें। ॥२१॥

शृंगसंख्या—पूर्ववत् २०९। तिलक संख्या—कोणे ४ प्रतिकर्णे ८ कुल १२।

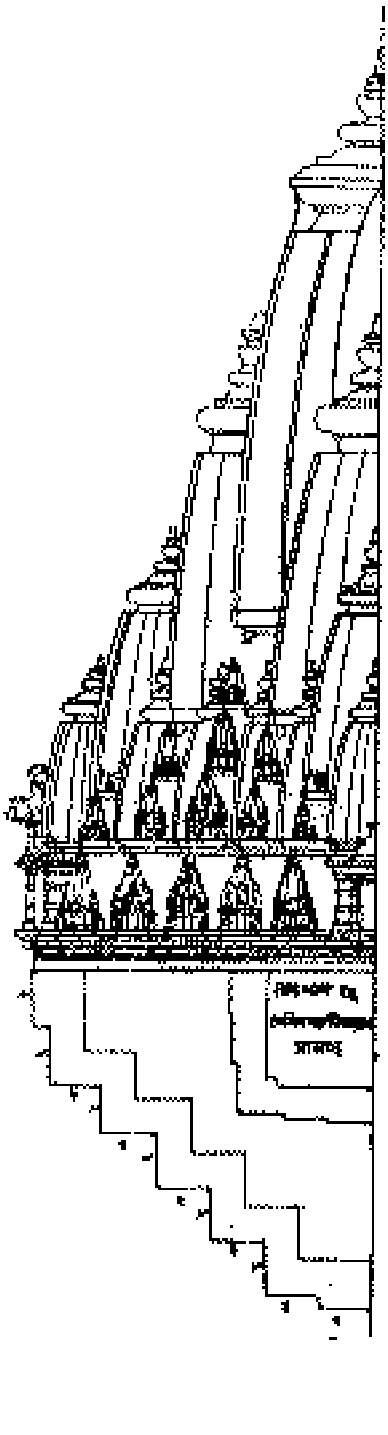

विभक्ति चौथी।

५—अभिनन्दनजिनवल्लभ—क्षितिभूषणप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे षोडशपदभाजिते ।
कर्णभागद्वयं कार्यं प्रतिकर्णस्तथैव च ॥२२॥
उपरथो द्विभागश्च भद्रार्धं द्वयमेव च ।
कर्णे च क्रमचत्वारि प्रतिकर्णे क्रमत्रयम् ॥२३॥
उपरथे क्रमद्वौ च ऊर्ध्वे तिलकशोभितम् ।
द्वादश उरुशृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि च षोडश ॥२४॥
क्षितिभूषणनामोऽयं प्रासादश्चाभिनन्दनः ।

इत्यभिनन्दनजिनवल्लभः क्षितिभूषणप्रासादः ॥५॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग करें। उनमें से दो भाग का कोण, दो भाग का प्रतिरथ, दो भाग का उपरथ और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। कोणे के ऊपर चार क्रम, प्रतिरथ के ऊपर तीन क्रम, उपरथ के ऊपर दो क्रम और एक तिलक चढ़ावें। चारों तरफ के भद्र के ऊपर बारह उरुशृंग और सोलह प्रत्यंग चढ़ावें। ऐसा अभिनंदन जिन वल्लभ क्षितिभूषण नाम का प्रासाद है ॥२२ से २४॥

शृंगसंख्या—कोणे १७६, प्रतिरथे २१६, उपरथे ११२, भद्रे १२, प्रत्यंग १६ एक शिखर, कुल५३३ शृंग। तिलक ८ उपरथे।

विभक्ति पांचवीं ।

६–सुमतिजिनवल्लभ प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥२५॥
कर्णो द्विभागिको ज्ञेयः प्रतिकर्णस्तथैव च ।
निर्गमस्तत्समो ज्ञेयो नन्दिका भागविश्रुता ॥२६॥
भद्रार्धं च द्विभागेन कर्त्तव्यं च चतुर्दिशि ।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥२७॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि तथाष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
नन्दिकायां शृङ्गकूटं सुमतिजिननामतः ॥२८॥

इति सुमतिजिनवल्लभप्रासादः ॥६॥

समचोरस भूमिका चौदह भाग करें, उनमें से दो भाग का कोना, दो भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। कोना और प्रतिरथ का निर्गम समदल रक्खें। कोने के ऊपर दो क्रम, प्रतिरथ के ऊपर दो क्रम, प्रत्येक भद्र के ऊपर चार उरुशृंग, आठ प्रत्यंगशृंग और नन्दी के ऊपर एक श्रीवत्सशृंग तथा एक कूट चढ़ावें। यह सुमतिजिन नाम का प्रासाद है ॥२५ से २८॥

शृंग संख्या–कोने ५६, प्रतिरथे ११२, भद्रे १६, प्रत्यंग, ८, नंदी के ऊपर ८, एक शिखर कुल २०१ शृंग। चार कूट नंदी पर।

विभक्ति छठी ।

७–पद्मप्रभजिन प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे विंशधा प्रतिभाजिते ।
कर्णो भागद्वयं कार्यः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥२९॥
कर्णिका नन्दिका भागा भद्रार्धं चतुर्भागकम् ।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥३०॥
केसरी सर्वतोभद्रं क्रमद्वयं व्यवस्थितम् ।
कर्णिकायां शृङ्गकूटं नन्दिकायां तथैव च ॥३१॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि अष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
पद्मवल्लभनामोऽयं जिनेन्द्रे पद्मनायके ॥३२॥

इति पद्मप्रभजिनप्रासादः ॥७॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का बीस भाग करें। उनमें से दो भाग का कोना, दो भाग का प्रतिरथ, कर्णिका एक भाग, नंदी एक भाग और भद्रार्ध चार भाग का रक्खें। कोना और प्रतिरथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र ये दो क्रम चढ़ावें। कर्णिका और नंदी के ऊपर एक एक श्रृंग और एक एक कूट चढ़ावें, यह पद्मप्रभजिनदेव को वल्लभ ऐसा पद्मवल्लभ नाम का प्रासाद है ॥२९ से ३२॥

श्रृंगसंख्या—कोने ४८, प्रतिरथे ११२, कर्णिका पर ८, नंदी पर ८, भद्रे १६ और प्रत्यंग ८ एक शिखर कुल २०९ श्रृंग और आठ कूट—चार कर्णिका और चार नंदी पर।

८—पद्मरागप्रासाद—

पद्मवल्लभसंस्थाने कर्त्तव्यः पद्मरागकः।
रथोर्ध्वे तिलकं दद्यात् स्वरूपो लक्षणान्वितः ॥३३॥

इति पद्मरागप्रासादः ॥८॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप ऊपर के पद्मवल्लभ प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—प्ररथ के ऊपर एक एक तिलक भी चढ़ावें, जिसे पद्मराग नाम का प्रासाद होता है ॥३३॥

९—पुष्टिवर्द्धनप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यः कर्णोर्ध्वे तिलकं न्यसेत्।
पुष्टिवर्द्धननामोऽयं तुष्टिं पुष्टिं विवर्धयेत् ॥३४॥

इति पुष्टिवर्द्धन प्रासादः ॥९॥

इस प्रासाद का मान और स्वरूप पद्मराग प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि कोणे के ऊपर एक एक तिलक भी चढ़ाने से तुष्टि पुष्टि को बढ़ाने वाला पुष्टिवर्द्धन नाम का प्रासाद होता है ॥३४॥

विभक्ति सातवीं।

१०—सुपार्श्वजिनवल्लभप्रासाद—

दशभागीकृते क्षेत्रे कर्णोऽस्य च द्विभागिकः।
प्रतिकर्णः सार्धभागो निर्गमे तत्समं भवेत् ॥३५॥
भद्रार्धं च सार्धभागं कपिले भद्रमानयोः।
निर्गमं पदमानेन चतुर्दिक्षु च योजयेत् ॥३६॥

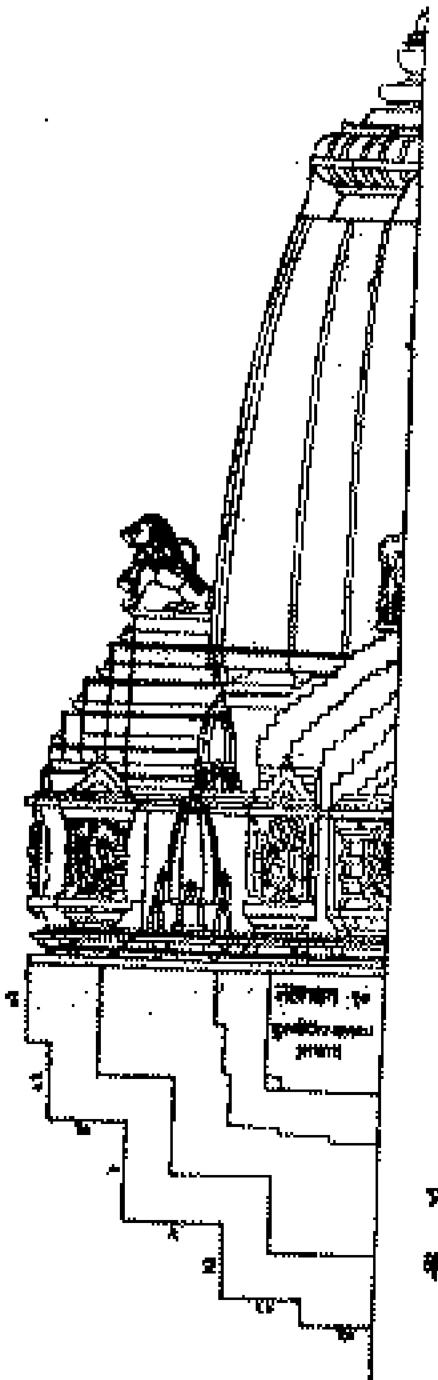

कर्णे क्रमद्वयं कार्यं रथे भद्रे तथोद्गमः ।
सुपार्श्वनामो विज्ञेयः प्रासादराजः सुखावहः ॥३७॥

इति सुपार्श्वजिनवल्लभप्रासादः ॥१०॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का दस भाग करें। उन में से दो भाग का कोण, डेढ़ भाग का प्रतिकर्ण बनावें। ये दोनों अंग समचोरस निकलता रक्खें। भद्रार्ध डेढ़ भाग का रक्खें, उसके दोनों बगल में दो कपिला भद्र के मान की बनावें। भद्र का निकाला एक भाग का रक्खें। कोणे के ऊपर दो क्रम चढ़ावें, तथा प्रतिकर्ण और भद्र के ऊपर डोढीया (उद्गम) बनावें। ऐसा प्रासादराज सुपार्श्वनाम का है, यह सुख देने वाला है ॥ ३५ से ३७ ॥

शृंगसंख्या—कोणे ५६, एक शिखर कुल ५७ शृंग।

११—श्रीवल्लभप्रासाद—

रथोर्ध्वे शृङ्गमेकं तु भद्रे चैवं चतुर्दिशि ।
श्रीवल्लभस्तदा नाम प्रासादो जिनवल्लभः ॥३८॥

इति श्रीवल्लभप्रासादः ॥११॥

सुपार्श्वजिन वल्लभ प्रासाद के प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक शृंग और भद्र के ऊपर एक एक उरुशृंग चढ़ाने से श्री वल्लभनाम का प्रासाद होता है, यह जिन देव को प्रिय है। ॥३८॥

शृंग संख्या-कोणे ५६, प्रतिकोणे ८, भद्रे ४, एक शिखर, कुल ६९ शृंग।

विभक्ति आठवीं।

१२—चन्द्रप्रभवल्लभ शीतलप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशत्पदभाजिते ।
पञ्चभागो भवेत् कर्णः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥३९॥
भद्रार्धं च चतुर्भागं नन्दिका कर्णिका पदा ।
समदलं च कर्तव्यं चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ॥४०॥

श्रीवत्सं केसरीं चैव सर्वतोभद्रमेव च ।
कर्णे चैव प्रदातव्यं रथे चैवं तु सत्तमम् ॥४१॥
नन्दिका कर्णिकायां च द्वे द्वे शृङ्गे च विन्यसेत् ।
भद्रे चैवोरुश्चत्वारि प्रत्यङ्गं जिनमेव च ॥४२॥
शीतलो नाम विज्ञेयः सुश्रियं च विवर्धकः ।
चन्द्रप्रभस्य प्रासादो विज्ञेयश्च सुखावहः ॥४३॥

इति चन्द्रप्रभवल्लभः शीतलप्रासादः ॥१२॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का बत्तीस भाग करें। उन में से पांच भाग का कोण, पांच भाग का प्रतिकर्ण, चार भाग का भद्रार्ध, कोणी और नन्दिका एक एक भाग की रक्खें। ये सब अंग समचोरस बनावें। कोण और उपरथ के ऊपर श्रीवत्स, केसरी और सर्वतोभद्र शृंग चढ़ावें। कोणी और नन्दिका के ऊपर दो दो श्रीवत्सशृंग, भद्र के ऊपर चार चार उरुशृंग चढ़ावें और चोबीस प्रत्यंग चढ़ावें। ऐसा शीतल नाम का प्रासाद लक्ष्मी को बढ़ाने वाला है और चन्द्रप्रभजिन को प्रिय है और सुख कारक है ॥३९ से ४३॥

शृंगसंख्या—कोणे ६० प्रतिकर्णे १२०, कोणीपर १६, नंदी पर १६, भद्रे १६, प्रत्यंग २४, एक शिखर, कुल २५३ शृंग।

१३—श्रीचन्द्र प्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्णयो रथोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
श्रीचन्द्रो नाम विज्ञेयः सुरराजसुखावहः ॥४४॥

इति श्रीचन्द्रप्रासादः ॥१३॥

शीतलप्रासाद के प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक तिलक भी चढ़ावें तो श्रीचंद्र नाम का प्रासाद होता है, यह इन्द्र को सुखकारक है ॥४४॥

शृंग संख्या पूर्ववत् २५३ और तिलक ८ प्रतिकर्णे।

१४—हितुराजप्रासाद—

नन्दिका कर्णिकायां च ऊर्ध्वे तिलकं शोभनम् ।
हितुराजस्तदा नाम सुविधिजिनवल्लभः ॥४५॥

इति सुविधिजिनवल्लभः हितुराजप्रासादः ॥१४॥

ऊपर के श्रीचन्द्रप्रासाद की कोणी और नन्दी के ऊपर एक २ तिलक चढाने से सुविधि-जिनवल्लभ ऐसा हितुराज नाम का प्रासाद होता है ॥४५॥

शृंगसंख्या पूर्ववत् २५३। तिलक–कोणी पर ८, प्रतिकर्ण पर ८, नन्दी पर ८, कुल २४।

विभक्ति नववीं।

१५–पुष्पदंतप्रासाद–

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते।
भद्रार्धं त्रिपदं वत्स! रथौ कर्णश्च तत्समः ॥४६॥
निर्गमस्तत्प्रमाणेन सर्वशोभासमन्वितम्।
रथे कर्णे तथा भद्रे द्वे शृङ्गे तिलकं न्यसेत् ॥४७॥
पुष्पदन्तस्तदा नाम सुविधिजिनवल्लभः।
कार्यः सुविधिनाथाय धर्मार्थकाममोक्षदः ॥४८॥

इति पुष्पदंतप्रासादः ॥१५॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का चौबीस भाग करें, इन में से कोण, प्रतिरथ, उपरथ और भद्रार्ध, ये सब तीन तीन भाग का रक्खें। और निर्गम में ये सब समदल रक्खें। भद्र के ऊपर दो उरुशृंग चढावें। कोना, प्रतिरथ और उपरथ ये तीनों के ऊपर दो दो शृंग और एक एक तिलक चढाने से पुष्पदंत नाम का प्रासाद होता है। यह सुविधि जिन को वल्लभ है। ऐसा प्रासाद बनाने से धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥४६ से ४८॥

शृंग संख्या–कोणे ८, प्रतिकर्णे १६ उपरथे १६, भद्रे ८ एक शिखर कुल ४९ शृंग। तिलक संख्या–कोणे ४ प्रतिकर्णे ८, उपरथे ८ कुल २० तिलक।

विभक्ति दसवीं।

१६–शीतलजिनप्रासाद–

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते।
कर्णश्चैव समाख्यात-श्चतुर्भागश्च विस्तृतः ॥४९॥
प्रतिरथस्त्रयभागो भद्रार्धे भूतभागिकम्।
रथे कर्णे च शृङ्गैकं तदूर्ध्वे तिलकं द्वयम् ॥५०॥

द्वादश उरःश्रृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि ततोऽष्टभिः ।
शीतलश्च तदा नाम प्रासादो जिनवल्लभः ॥५१॥

इति शीतलजिनप्रासादः ॥१६॥

प्रासाद की सम चोरस भूमिका चौबीस भाग करें। उनमें से चार भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिरथ और पांच भाग का भद्रार्ध बनावें। कोण और प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक श्रृंग और दो दो तिलक, चारों भद्र के उपर कुल बारह उरुश्रृंग, तथा आठ प्रत्यंग चढ़ावें। ऐसा शीतल नाम का प्रासाद शीतल जिनको प्रिय है ॥४८ से ५१॥

श्रृंगसंख्या—कोणे ४, प्रतिकर्णे ८, भद्रे १२, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ३३ श्रृंग। तिलक—कोणे ८, प्रतिकर्णे १६, कुल २४ तिलक।

१७ कीर्त्तिदायकप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रमाणो च कर्त्तव्यः पूर्वमानतः ।
कर्णोर्ध्वे च द्वयं श्रृङ्गे प्रासादः कीर्त्तिदायकः ॥५२॥

इति कीर्त्तिदायकप्रासादः ॥१७॥

ऊपर के शीतल जिन प्रासाद के कोणे के ऊपर का एक तिलक कम करके उसके बदले श्रृंग चढ़ाने से कीर्त्तिदायक नाम का प्रासाद होता है ॥५२॥

श्रृंगसंख्या—कोणे ८, प्रतिकर्णे ८, भद्रे १२, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ३७ श्रृंग। तिलक—कोणे ४, प्रतिकर्णे १६।

१८—मनोहरप्रासाद—

[1]कर्णे सप्त प्रतिकर्णे पञ्च मनोहरदायकः ।
तन्मानं च प्रकर्त्तव्यः स्वरूपो लक्षणान्वितः ॥५३॥

इति मनोहरप्रासादः ॥१८॥

ऊपर के प्रासाद के अनुसार मान और स्वरूप जानें। विशेष यह है कि—कोणे के ऊपर एक केसरी क्रम और दो श्रीवत्सश्रृंग, तथा प्रतिकर्ण के ऊपर एक केसरी क्रम चढ़ाने से मनोहर नाम का प्रासाद होता है ॥५३॥

श्रृंगसंख्या—कोणे २८, प्रतिकर्णे ४०, भद्रे १२, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ८९ श्रृंग।

१. 'कर्णे सदृशं प्रतिकर्णे प्रासादश्च मनोहरः।' पाठान्तरे।

विभक्ति ग्यारहवीं ।

१९—श्रेयांसजिनवल्लभप्रासाद—

[1]षोडशांशः प्रकर्त्तव्यः कर्णस्त्रयं रथस्त्रयम् ।
भद्रार्धं [2]द्विपदं वत्स ! चतुर्दिक्षु नियोजयेत् ॥५४॥
निर्गमं पदमानेन स्वहस्ताङ्गुलमानतः ।
शृङ्गं च तिलकं कर्णे रथे भद्रे चैवोद्गमः ॥५५॥
श्रेयांसवल्लभो नाम प्रासादश्च मनोहरः ।

इति श्रेयांसजिनवल्लभप्रासादः ॥१९॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग करें। उनमें तीन भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिकर्ण और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। इसके अंगों का निकाला प्रासाद के पद के अनुसार हस्तांगुल मान का रक्खें। अर्थात् जितने हाथ का प्रासाद हो, उतने अंगुल निकलता रक्खें। कोण और प्रतिकोण के ऊपर एक एक शृंग और एक एक तिलक चढावें। तथा भद्र के ऊपर उद्‌गम बनावें। ऐसा श्रेयांस जिनवल्लभ नाम का सुंदर प्रासाद है ॥५४ से ५५॥

शृंगसंख्या—कोणे ४, प्रतिकोणे ८, एक शिखर, कुल १३ शृंग। तिलक संख्या—कोणे ४ प्रतिकर्णे ८।

२०—मुकुलप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रमाणे च शृङ्गचत्वारि भद्रके ॥५६॥
मुकुलो नाम विज्ञेयो प्रासादो जिनवल्लभः ।

इति मुकुलप्रासादः ॥२०॥

मान और प्रमाण ऊपर के प्रासाद के अनुसार जानें। विशेष यह है कि—भद्र के ऊपर एक एक शृंग चढाने से मुकुल नाम का प्रासाद होता है। वह जिन देव को प्रिय है ॥५६॥

शृंग संख्या—कर्णे ४, प्रतिकर्णे ८ भद्रे ४, एक शिखर, कुल १७। तिलक १२।

२१—कुलनंदनप्रासाद—

उरःशृङ्गाष्टकं कुर्यात् प्रासादः कुलनन्दनः ॥५७॥

श्रेयांसजिनवल्लभ प्रासाद के भद्र के ऊपर आठ उरुशृंग चढाने से कुलनन्दन नाम का प्रासाद होता है ॥५७॥

शृंग संख्या—कोणे ४, रथे ८, भद्रे ८, एक शिखर, कुल २१ शृंग। तिलक १२

१. 'अष्टावर्गाश।' २. 'त्रिपदं।'

विभक्ति बारहवीं ।

२२—वासुपूज्यजिनप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वाविंशपदभाजिते ।
पदानां तु चतुर्भागाः कर्णो चैवं तु कारयेत् ॥५८॥
कोणिका पदमानेन प्रतिरथस्त्रिभागकः ।
नन्दिका भागमानेन भद्रार्धं च द्विभागिकम् ॥५९॥
कर्णे क्रमत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे क्रमद्वयम् ।
त्रिकूटं नन्दीकर्णे च ऊर्ध्वे तिलकशोभनम् ॥६०॥
भद्रे शृङ्गत्रयं कार्यं—मष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
वासुपूज्यस्तदा नाम वासुपूज्यस्य वल्लभः ॥६१॥

इति वासुपूज्यजिनप्रासादः ॥२२॥

समचोरस भूमि के बाईस भाग करें। उन में चार भाग का कोण, कर्णनंदी एक भाग, तीन भाग का प्रतिरथ, भद्रनन्दी एक भाग और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। कोणे के ऊपर तीन क्रम, प्रतिकर्ण के ऊपर दो क्रम, कोणी और नंदी के ऊपर त्रिकूट शृंग और उसके ऊपर तिलक, भद्र के ऊपर तीन तीन उरुशृंग और आठ प्रत्यंग चढ़ावें। ऐसा वासुपूज्य नामका प्रासाद वासुपूज्य जिन को प्रिय है ॥५८ से ६१॥

शृंग संख्या—कोणे १०८, प्रतिरथे ११२, कर्णनंदी पर ८, भद्रनंदी पर ८, भद्रे १२ प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल २५७ शृंग। तिलक-१६ दोनों नंदी के ऊपर।

२३—रत्नसंजयप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्तव्यः कर्णोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
रत्नसंजयनामोऽयं गृहराजसुखावहः ॥६२॥

इति रत्नसञ्जयप्रासादः ॥२३॥

वासुपूज्यप्रासाद के कोणे के क्रम के ऊपर एक तिलक चढ़ाने से रत्नसंजय नाम का प्रासाद होता है। यह प्रासाद राजसुख कारक है ॥६२॥

शृंग संख्या पूर्ववत् २५७ और तिलक २०—कोणे ४, दोनों नन्दी पर १६।

२४—धर्मदप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रमाणे च चतुर्थमुरुशृङ्गकम् ।
धर्मदस्तस्य नामायं पुरे वै धर्मवर्धनः ॥६३॥

इति धर्मदप्रासादः ॥२४॥

रत्नसंजयप्रासाद के भद्र के ऊपर चौथा एक उरुशृंग अधिक चढ़ाने से धर्मद नामका प्रासाद होता है, वह नगर में धर्म को बढाने वाला है ॥६३॥

शृंगसंख्या–कोणे १०८ प्रतिरथे ११२, कोणी पर ८, नंदी पर ८, भद्रे १६ प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल २६१ शृंग। तिलक पूर्ववत् २०।

विमलजित तेरहवाँ।

२५–विमलवल्लभप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते।
पदेन त्रयभागेन कर्णस्तत्र विधीयते ॥६४॥
तद्वत्त्रेयः प्रतिकर्णः कोणिका नन्दिका पदा।
भद्रार्धं तु चतुर्भागं निर्गमं भागमेव च ॥६५॥
समनिर्गमं रथं ज्ञेयं कर्तव्यं चतुरो दिशि।
कर्णे शृङ्गत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे [1]द्वयमेव च ॥६६॥
नन्दिका कोणिकायां च शृङ्गकूटं सुशोभितम्।
भद्रे चैवोरुचत्वारि चाष्टौ प्रत्यङ्गानि च ॥६७॥
विमलवल्लभनामोऽयं प्रासादो विमलप्रियः।

इति विमलजिनवल्लभप्रासादः ॥२१॥

समचोरस भूमि का चौबीस भाग करें। उन में तीन भाग का कोण, तीन भाग का प्रतिकर्ण, कोणिका और नंदिका एक एक भाग, और चार भाग का भद्रार्ध बनावें। भद्र का निर्गम एक भाग रक्खें। रथ और कर्ण का निर्गम समदल रक्खें। कोणे के ऊपर तीन शृंग, प्रतिकर्ण के ऊपर दो शृंग, नंदिका और कोणिका के ऊपर एक एक शृंग और एक एक कूट, भद्र के ऊपर चार उरुशृंग और आठ प्रत्यंग चढावें। यह विमलजिनवल्लभ नामका प्रासाद विमलजिन को प्रिय है ॥६४ से ६७॥

शृंगसंख्या–कोणे १२, प्रतिरथे १६, कोणी पर ८, नंदी पर ८, भद्रे १६, प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल ६९ शृंग। कूट १६।

२६–मुक्तिदप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्तव्यो रथे तिलकं दापयेत् ॥६८॥

1. 'त्रयमेव च।'

कर्णिकायां च द्वे शृङ्गे प्रासादो जिनवल्लभः ।
मुक्तिदो नाम विज्ञेयो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥६९॥

इति मुक्तिदप्रासादः ॥२६॥

विमलजिनवल्लभ नाम के प्रतिरथ ऊपर एक एक तिलक और दोनों नंदीयों के ऊपर कूट के बदले शृंग चढावें। जिससे मुक्तिद नामका प्रासाद होता है, यह जिनदेव को प्रिय है और वैभवादि भोगसामग्री और मुक्ति को देने वाला है ॥६९॥

शृंग संख्या---कोणे १२, प्रतिरथे १६, कोणी पर १६, नंदी पर १६, भद्रे १६, प्रत्यंग ८, एक शिखर, कुल ८५, शृंग और तिलक ८ प्रतिरथ पर।

विभक्ति चौदहवीं।

२७—अनन्तजिनप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे विंशतिपदभाजिते ।
त्रीणि त्रीणि ततस्त्रीणि नन्दी पदेति भद्रके ॥७०॥
निर्गमं पदमानेन त्रिषु स्थानेषु भद्रके ।
कर्णे क्रमत्रयं कार्यं रथोर्ध्वे तत्समं भवेत् ॥७१॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि नन्दिकायां क्रमद्वयम् ।
अनन्तजिनप्रासादो धनपुण्यश्रियं लभेत् ॥७२॥

इत्यनन्तजिनप्रासादः ॥२७॥

प्रासाद को समचोरस भूमिका बीस भाग करें। उनमें तीन भाग का कोना, तीन भाग का उपरथ, तीन भाग का भद्रार्ध और भद्रनन्दी एक भाग मानें। इन अंगों का निकाला एक भाग का रक्खें। कोण और रथ ऊपर तीन तीन क्रम, भद्र के ऊपर चार उरुशृंग और भद्र नन्दी के ऊपर दो क्रम चढ़ावें। ऐसा अनन्तजिनप्रासाद धन, पुण्य और लक्ष्मी को देने वाला है ॥७० से ७२॥

शृंग संख्या—कोणे १०८, प्ररथे २१६, नंदी पर ११२, भद्रे १६, एक शिखर, कुल ४५३ शृंग।

२८—सुरेन्द्रप्रासाद—

अनन्तस्य संस्थाने रथोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
सुरेन्द्रो नाम विज्ञेयः सर्वदेवेषु वल्लभः ॥७३॥

इति सुरेन्द्रनामप्रासादः ॥२८॥

अनन्तजिन प्रासाद के प्ररथ के ऊपर एक २ तिलक चढ़ाने से सुरेन्द्र नाम का प्रासाद होता है, यह सर्व देवों के लिए प्रिय है ॥७३॥

शृंग संख्या—पूर्ववत् ४५३ और तिलक ८ प्ररथे।

विभक्ति पन्द्रहवीं।

२९—धर्मनाथजिनप्रासाद—

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे चाष्टाविंशतिभाजिते।
कर्णं रथं च भद्रार्धं युगभागं विधीयते ॥७४॥
निर्गमं तत्प्रमाणेन द्विभागा नन्दीकोणिका।
केसरी सर्वतोभद्रं रथे कर्णे च दापयेत् ॥७५॥
तदूर्ध्वे तिलकं देयं सर्वशोभान्वितं कृतम्।
नन्दिका कर्णिकायां च शृङ्गोर्ध्वे शृङ्गमुत्तमम् ॥७६॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि चाष्टौ प्रत्यङ्गानि च।
धर्मदो नाम विख्यातः पूरे धर्मविवर्धनः ॥७७॥

इति धर्मनाथजिनप्रासादः ॥२९॥

प्रासाद की समचोरस भूमि का अट्ठावीस भाग करें। उनमें चार भाग का कोण, चार भाग का प्ररथ, चार भाग का भद्रार्ध, एक भाग की कोणी, और एक भाग की भद्रनंदी बनावें। ये सब अंग समदल रक्खें। कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र ये दो क्रम चढावें और उसके ऊपर शोभायमान एक एक तिलक चढ़ावें। कोणी और नन्दी के ऊपर दो दो शृंग चढ़ावें। भद्र के ऊपर चार उरुशृंग और आठ प्रत्यंग चढावें। ऐसा धर्म को देने वाला धर्मद नाम का प्रासाद नगर में धर्म को बढाने वाला है ॥७४ से ७७॥

शृंग संख्या—कोणे ५६, प्ररथे ११२, कोणी पर १६, नंदी पर १६, भद्रे १६, प्रत्यंग, ८ एक शिखर, कुल २२५ शृंग और तिलक ४ कोणे और ८ प्ररथे कुल १२।

३०—धर्मवृक्षप्रासाद—

तद्रूपे तत्प्रमाणे च कर्तव्यः सर्वकामदः।
रथोर्ध्वे च कृते शृङ्गे धर्मवृक्षोऽयं नामतः ॥७८॥

इति धर्मवृक्षप्रासादः ॥३०॥

धर्मनाथ प्रासाद के प्ररथ के ऊपर तिलक के बदले में एक एक शृंग चढ़ाने से धर्मवृक्ष नाम का प्रासाद होता है ॥६८॥

शृंग संख्या—कोणे ५६ प्ररथे १२०, कोणी पर १६, नंदी पर १६ भद्रे १६, प्रत्यंग ८ एक शिखर, कुल २३३ और तिलक ४ कोणे।

विभक्ति सोलहवीं।

३१–शान्तिजिन अथवा श्रीलिंग प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
कर्णो भागद्वयं कार्यः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥७९॥
भद्रार्धं सार्धभागेन नन्दिका चार्धभागिका ।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिकर्णे तथैव च ॥८०॥
नन्दिकायां शृङ्गकूट-मुरुशृङ्गाणि द्वादश ।
शान्तिनामश्च विज्ञेयः सर्वदेवेभ्यः कारयेत् ॥८१॥
श्रीलिङ्गं च तदा नाम श्रीपतिषु सुखावहः ।

इति शान्तिवल्लभः श्रीलिङ्गप्रासादः ॥३१॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करें। उनमें दो भाग का कोण, दो भाग का प्रतिकर्ण, डेढ़ भाग का भद्रार्ध और आधे भाग की भद्रनंदी करें। कोण और प्रतिकर्ण के ऊपर दो दो क्रम, भद्रनंदी के ऊपर एक शृंग और एक कूट, चारों भद्रों के ऊपर बारह उरुशृंग चढ़ावें। ऐसा शांति नामका प्रासाद जानें, यह सब देवों के लिये बनावें। इसका दूसरा नाम श्रीलिङ्ग प्रासाद है, वह विष्णु के लिये सुखदायक है ॥७९ से ८१॥

शृंगसंख्या—कोणे ५६, प्ररथे ११२ भद्रनंदी पर ८, भद्रे १२, एक शिखर, कुल १८९ शृंग और ८ कूट नंदी पर।

३२–कामदायक प्रासाद—

उरुशृङ्गं पुनर्दद्यात् प्रासादः कामदायकः ॥८२॥

इति कामदायकः ॥३२॥

शांतिनाथ प्रासाद के भद्र के ऊपर एक उरुशृंग अधिक चढ़ाने से कामदायक प्रासाद होता है ॥८२॥

शृंग संख्या—भद्रे १६ बाकी पूर्ववत् कुल—१९३ शृंग।

विभक्ति सत्रहवीं।

३३—कुंथुजिनवल्लभ कुमुदप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चाष्टभागविभाजिते।
कर्णः स्यादेकभागश्च प्रतिकर्णस्तथैव च ॥८३॥
नन्दिका चैव भागार्धा त्रिपदं भद्रविस्तरम्।
निर्गमं पदमानेन स्थापयेच्च चतुर्दिशि ॥८४॥
कर्णे च केसरीं दद्यात् तदूर्ध्वे तिलकं न्यसेत्।
तत्सदृशं प्रतिकर्णे नन्द्यां तु तिलकं न्यसेत् ॥८५॥
भद्रे च शृंगमेकं तु कुमुदो नाम नामतः।
वल्लभः सर्वदेवानां जिनेन्द्रकुंथुवल्लभः ॥८६॥

इति कुंथुनाथवल्लभः कुमुदप्रासादः ॥३३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका आठ भाग करें। उनमें कोण और प्रतिकर्ण एक एक भाग का, भद्रार्ध डेढ़ भाग और भद्रनन्दी आधा भाग बनावें। भद्र का निर्गम एक भाग रक्खें, इस प्रकार चारों दिशा में व्यवस्था करें। कोण और प्रतिकर्ण के ऊपर एक एक केसरी शृंग और उसके ऊपर एक एक तिलक चढ़ावें। भद्रनंदी के ऊपर तिलक और भद्र के ऊपर एक उरुशृंग चढ़ावें। यह कुमुदनामका प्रासाद सर्वदेवों की और कुंथुजिनदेव को वल्लभ है ॥८३ से ८६॥

शृंगसंख्या—कोणे २०, प्ररथे ४०, भद्रे ४, एक शिखर, कुल ६५ शृंग। तिलक संख्या—कोणे ४, प्ररथे ८, और नन्दी पर ८, कुल २० तिलक।

३४—शक्तिदप्रासाद—

तद्रूपं च प्रकर्तव्यं रथे तिलकं दापयेत्।
शक्तिदो नाम विज्ञेयः श्रीदेवीषु सुखावहः ॥८७॥

इति शक्तिदप्रासादः ॥३४॥

कुमुदप्रासाद के प्ररथ के ऊपर एक २ तिलक अधिक चढ़ाने से शक्तिद नाम का प्रासाद होता है। वह लक्ष्मीदेवी को सुखकारक है ॥८७॥

शृंगसंख्या—पूर्ववत् ६५ और तिलक–कोणे ४, प्ररथे १६, नंदी पर ८ कुल २८।

३५–हर्षणप्रासाद—

कर्णोर्ध्वे शृङ्गं दातव्यं प्रासादो हर्षणस्तथा ।

इति हर्षणप्रासादः ॥३५॥

शक्तिद प्रासाद के कोणे के ऊपर एक २ शृंग अधिक चढ़ाने से हर्षण नामका प्रासाद होता है।

शृंगसंख्या—कोणे २४, प्ररथे ४०, भद्रे ४, एक शिखर, कुल ६९ शृंग। तिलक पूर्ववत् २८।

३६–भूषणप्रासाद—

कर्णोर्ध्वे तिलकं दद्यात् प्रासादो भूषणस्तथा ॥८८॥

इति भूषणप्रासादः ॥३६॥

हर्षणप्रासाद के कोणे के ऊपर एक तिलक अधिक चढ़ावे तो भूषण नामका प्रासाद होता है ॥८८॥

शृंगसंख्या—पूर्ववत् ६९ और तिलक ३२।

त्रिभक्ति अठारहवाँ।

३७–अरनाथजिनवल्लभ–कमलकन्दप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चाष्टभागविभाजिते ।
कर्णो द्विभागिको ज्ञेयो भद्रार्धं च द्विभागिकम् ॥८९॥
कर्णे च शृङ्गमेकं तु केसरी च विधीयते ।
भद्रे चैवोद्गमः कार्यो जिनेन्द्रे चारनाथके ॥९०॥
इति त्वं विद्धि भो वत्स ! प्रासादो जिनवल्लभः ।
कमलकन्दनामोऽयं जिनशासनमार्गतः ॥९१॥

इति अरनाथजिनवल्लभः कमलकन्दप्रासादः ॥३७॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका आठ भाग करें। उनमें दो भाग का कोण और दो भाग का भद्रार्ध बनावें। कोणे के ऊपर एक २ केसरी शृंग चढ़ावें और भद्र के ऊपर उद्गम बनावें। ऐसा अरनाथ जिन के लिये कमलकन्द नाम का प्रासाद है वत्स ! तू जान ॥८९ से ९१॥

शृङ्गसंख्या—कोणे २०, एक शिखर, कुल २१ शृंग।

३८—श्रीशैलप्रासाद—

कर्णे च तिलकं ज्ञेयं श्रीशैल ईश्वरप्रियः ।

इति श्रीशैलप्रासादः ।।३८।।

कमलकन्द प्रासाद के कोणे के ऊपर एक २ तिलक भी चढ़ाने से श्रीशैल नाम का प्रासाद होता है, वह ईश्वर को प्रिय है।

शृंगसंख्या—पूर्ववत् २१ और तिलक ४ कोणे।

३९—अरिनाशन प्रासाद—

भद्रे चैवोरुचत्वारि प्रासादस्त्वरिनाशनः ।।९२।।

इत्यरिनाशनप्रासादः ।।३९।।

श्रीशैलप्रासाद के भद्र के ऊपर एक २ उरुशृंग चढ़ाने से अरिनाशन नामका प्रासाद होता है ।।९२।।

शृंगसंख्या—कोण २०, भद्रे ४, एक शिखर, कुल २५ शृंग और तिलक ४ कोणे।

विभक्ति उन्नीसवीं।

४०—श्रीमल्लिजिनवल्लभ—महेन्द्रप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वादशपदभाजिते ।
कर्णो भागद्वयं कार्यः प्रतिरथश्च सार्धकः ।।९३।।
सार्धभागकं भद्रार्धं चार्धा नन्दीद्वयं भवेत् ।
कर्णे क्रमद्वयं कार्यं प्रतिरथे तथैव च ।।९४।।
द्वादश उरुश्रृङ्गाणि स्थापयेच्च चतुर्दिशि ।
महेन्द्रनामः प्रासादो जिनेन्द्रमल्लिवल्लभः ।।९५।।

इति मल्लिजिनवल्लभो महेन्द्रप्रासादः ।।४०।।

प्रासाद की समचोरस भूमिका बारह भाग करें। उनमें दो भाग का कोण, डेढ़ भागका प्रतिरथ, डेढ़ भागका भद्रार्ध, कर्णनंदी और भद्रनन्दी आधे २ भाग की करें। प्रतिरथ और कोणे के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र, ये दो क्रम और भद्र के ऊपर बारह उरुशृंग चढ़ावें। ऐसा महेन्द्र नामका प्रासाद मल्लिजिनेन्द्र को वल्लभ है ।।९३ से ९५।।

शृंगसंख्या—कोणे ५६, प्ररथे ११२, भद्रे १२, एक शिखर, कुल १८१ शृंग।

४१—मानवेन्द्रप्रासाद—

रथोर्ध्वे तिलकं दद्यान्मानवेन्द्रोऽथ नामतः ।

इति मानवेन्द्रप्रासादः ॥४१॥

महेन्द्रप्रासाद के प्रतिरथ के ऊपर एक २ तिलक भी चढ़ावें तो मानवेन्द्र नामका प्रासाद होता है। शृंगसंख्या पूर्ववत् १८१ और तिलक ८ प्ररथे।

४२—पापनाशनप्रासाद—

कर्णोर्ध्वे तिलकं दद्यात् प्रासादः पापनाशनः ॥६६॥

इति पापनाशनप्रासादः ॥४२॥

मानवेन्द्रप्रासाद के कोणे के ऊपर एक २ तिलक भी चढ़ावें तो पापनाशन नामका प्रासाद होता है ॥६६॥

शृंगसंख्या पूर्ववत् १८१। तिलक-कोणे ४, और प्ररथे ८ कुल १२ तिलक।

विभक्ति बोसवीं।

४३—मानसतुष्टि नामका मुनिसुव्रतप्रासाद—

चतुस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ।
बाहुद्वयं रथं कर्णं भद्रार्धं त्रयभागिकम् ॥६७॥
श्रीवत्सं केसरीं देयं कर्णे रथे क्रमद्वयम् ।
द्वादशैवोरुशृङ्गाणि स्थापयेच्च चतुर्दिशि ॥६८॥
मानसतुष्टिनामोऽयं प्रासादो मुनिसुव्रतः ।

इति मानसतुष्टि नाम मुनिसुव्रतप्रासादः ॥४३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका चौदह भाग करें। उनमें दो भागका कोण, दो भागका प्ररथ और तीन भागका भद्रार्ध करें। कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और श्रीवत्स ये दो क्रम चढ़ावें। तथा भद्र के ऊपर कुल बारह उरुशृंग चढ़ावें। ऐसा मानसतुष्टि नामका मुनिसुव्रत प्रासाद है ॥६७-६८॥

शृंगसंख्या—कोणे २४, प्ररथे ४८, भद्रे १२, एक शिखर, कुल ८५ शृंग।

४४—मनोल्याचन्द्र प्रासाद—

तद्रूपे रथे तिलकं मनोल्याचन्द्रो नामतः ॥६९॥

इति मनोल्याचन्द्रप्रासादः ॥४४॥

मानसतुष्टिप्रासाद के प्ररथ के ऊपर एक २ तिलक चढ़ावें तो मनोल्याचन्द्र नामका प्रासाद होता है ॥९९॥

शृंगसंख्या पूर्ववत् ८५ और तिलक ८ प्ररथे।

४५–श्रीभवप्रासाद—

> मनोल्याचन्द्रसंस्थाने कर्णे न्यसेत् द्विकेसरीम् ।
> श्रीभवनामो विज्ञेयः कर्त्तव्यस्च त्रिमूर्तये ॥१००॥

इतिश्रीभवनामप्रासादः ॥४५॥

मनोल्याचंद्र प्रासाद के कोणे के ऊपर शृंगों के बदले में दो केसरी शृंग चढ़ावे तो श्रीभवनामका प्रासाद होता है। वह त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) के लिये बनावें ॥१००॥

शृंगसंख्या—कर्णे ४०, प्ररथे ४८, भद्रे १२, एक शिखर, कुल १०१ शृंग, तिलक ८ प्ररथे।

विभक्ति इक्कीसवीं A।

४६–नमिनाथजिनप्रासाद—

> चतुरस्रीकृते क्षेत्रे षोडशपदभाजिते ।
> कर्णो भागत्रयं कार्यः प्रतिकर्णो द्विभागिकः ॥१०१॥
> भद्रार्धं त्रिभागं ज्ञेयं चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ।
> क्रमद्वयं रथे कर्णे ऊर्ध्वं तिलकशोभनम् ॥१०२॥
> भद्रे चैवोरुचत्वारि स्थापयेच्च चतुर्दिशि ।
> नमिशृङ्गस्च नामायं प्रासादो नमिवल्लभः ॥१०३॥

इति नमिजिनवल्लभप्रासादः ॥४६॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका सोलह भाग करें। उनमें तीन भाग का कोण, दो भागका प्रतिरथ और तीन भाग का भद्रार्ध करें। कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र, ये दो क्रम और भद्र के ऊपर चारों दिशा में चार चार उरुशृंग चढ़ावें। ऐसा नमिशृंग नामका प्रासाद श्री नमिनाथ जिनको प्रिय है ॥१०१ से १०३॥

शृंगसंख्या—कोणे ५६, प्ररथे ११२, भद्रे १६, एक शिखर, कुल १८५ शृंग। तिलक—कोणे ४ प्ररथे ८ कुल १२ तिलक।

विभक्ति इक्कीसवीं B ।

४७–सुमतिकीर्त्तिप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे षड्विंशपदभाजिते ।
कर्णो भागाश्च चत्वारः प्रतिकर्णस्तथैव च ॥१०४॥
भद्रं दिग्भागिकं ज्ञेयं चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ।
कर्णे क्रमत्रयं कार्यं प्रतिकर्णे क्रमद्वयम् ॥१०५॥
द्वादशैवोरुशृङ्गाणि प्रत्यङ्गानि द्वात्रिंशकम् ।
मन्दिरं प्रथमं कर्म सर्वतोभद्रमेव च ॥१०६॥
केसरी तृतीयं कर्म ऊर्ध्वे मञ्जरी शोभिता ।
सुमतिकीर्त्तिनामोऽयं नमिनाथस्य वल्लभः ॥१०७॥

इति नमिजिनवल्लभः सुमतिकीर्त्तिप्रासादः ॥४७॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका छव्वीस भाग करें। उनमें चार भाग का कोण, चार भाग का प्ररथ और दस भाग का पूरा भद्र करें। कोणे के ऊपर तीन क्रम, प्ररथ के ऊपर दो क्रम, भद्र के ऊपर कुल बारह उरुशृंग और बत्तीस प्रत्यंग चढ़ावें। उसके ऊपर शिखर शोभायमान करें, ऐसा सुमतिकीर्त्ति नामका प्रासाद श्रीनमिनाथ जिनको प्रिय है ॥१०४ से १०७॥

शृंगसंख्या—कोणे १५६, प्ररथे ११२, भद्रे १२, प्रत्यंग ३२, एक शिखर, कुल ३१३ शृंग। यदि प्ररथ के ऊपर मंदिर और सर्वतोभद्र ये दो क्रम रखा जाय तो शृंगसंख्या—कोणे १५६, प्ररथे २७२, भद्रे १२, प्रत्यंग ३२, एक शिखर, कुल ४७३ शृंग।

४८–सुरेन्द्रप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्यो रथे शृङ्गं च दापयेत् ।
सुरेन्द्र इति नामायं प्रासादः सुरवल्लभः ॥१०८॥

इति सुरेन्द्रनामप्रासादः ॥४८॥

सुमतिकीर्त्ति प्रासाद के प्ररथके ऊपर एक शृंग अधिक चढ़ावे तो सुरेन्द्र नामका प्रासाद होता है, वह देवों को प्रिय है ॥१०८॥

शृंगसंख्या—कोणे १५६, प्ररथे २८०, भद्रे १२, प्रत्यंग ३२, एक शिखर कुल ४८१ शृंग।

४९-राजेन्द्रप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्त्तव्य उरुश्रृङ्गाणि[1] षोडश ।
पूजनाल्लभते राज्यं स्वर्गे चैवं महीतले ॥१०९॥

इति राजेन्द्रप्रासाद: ॥४९॥

सुरेन्द्रप्रासाद के भद्रके ऊपर बारह के बदले सोलह उरुश्रृंग चढ़ाने से राजेन्द्र नामका प्रासाद होता है। उसका पूजन करने से पृथ्वी के ऊपर और स्वर्ग में राज्य प्राप्त होता है ॥१०९॥

श्रृंगसंख्या—भद्रे १६ बाकी पूर्ववत्, कुल ४८५ श्रृंग ।

विभक्ति बाईसवीं ।

५०–नेमेन्द्रेश्वर प्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे द्वाविंशपदभाजिते ।
बाहुरिन्दुयुग्मरूप-द्वीन्दुभागाः क्रमेण च ॥११०॥
भद्रार्धं च द्वयं भागं स्थापयेत्तु चतुर्दिशि ।
केसरी सर्वतोभद्रं कर्णे चैवं क्रमद्वयम् ॥१११॥
केसरी तिलकं चैव रथोर्ध्वे तु प्रकीर्त्तितम् ।
कर्णिकानन्दिकायां च श्रृङ्गं च तिलकं न्यसेत् ॥११२॥
भद्रे चैवोरुचत्वारि प्रत्यङ्गानि च षोडश ।
नेमेन्द्रेश्वरनामोऽयं प्रासादो नेमिवल्लभः ॥११३॥

इति नेमेन्द्रेश्वरप्रासाद: ॥५०॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका बाईस भाग करें। उनमें दो भाग का कोण, एक भागकी कोणी, दो भागका प्रतिकर्ण, एक भाग कोणी, दो भाग का उपरथ, एक भागकी नन्दी और दो भाग का भद्रार्ध रक्खें। कोणी के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र, ये दो क्रम, प्रतिकर्ण और उपरथ के ऊपर केसरी क्रम और एक तिलक, कोणी और नंदियों के ऊपर एक श्रृंग और एक तिलक, भद्र के ऊपर चार २ उरुश्रृंग, और सोलह प्रत्यंग चढावें। ऐसा नेमेन्द्रेश्वर नाम का प्रासाद श्री नेमिनाथजिनदेव को प्रिय है ॥११० से ११३॥

१. 'उरुश्रृङ्गं च पञ्चकम्' । पाठान्तरे ।

शृंग संख्या—कोणे ५६, कोणीपर ८, प्ररथे ४०, कोणीपर ८, उपरथे ४०, नंदी पर ८, भद्रे १६, प्रत्यंग १६, एक शिखर कुल १६१ शृंग। तिलक संख्या—प्ररथे ८, उपरथे ८, कर्णनंदी पर ८, प्ररथनंदी पर ८, भद्रनंदी पर ८, कुल ४० तिलक।

५१—यतिभूषणप्रासाद—

तत्तुल्यं तत्प्रमाणं च रथे शृङ्गं च दापयेत्।
वल्लभः सर्वदेवानां प्रासादो यतिभूषणः ॥११४॥

इति यतिभूषणप्रासादः ॥५१॥

नेमेद्रेश्वर प्रासाद के प्ररथ और उपरथ ऊपर के तिलक के बदले एक एक शृङ्ग चढाने से यतिभूषण नाम का प्रासाद होता है, वह सब देवों को प्रिय है ॥११४॥

शृंगसंख्या—प्ररथे ४८, उपरथे ४८ बाकी पूर्ववत् कुल २०१ शृंग। तिलक कुल २४ तीनों नन्दी पर।

५२—सुपुष्पप्रासाद—

तद्रूपं तत्प्रमाणं च रथे दद्याच्च केसरीम्।
सुपुष्पो नाम विज्ञेयः प्रासादः सुरवल्लभः ॥११५॥

इति सुपुष्पनामप्रासादः ॥५२॥

यतिभूषण प्रासाद के प्ररथ और उपरथ ऊपर के शृंग के बदले में एक एक केसरी क्रम चढ़ाने से सुपुष्प नामका प्रासाद होता है। वह देवों को प्रिय है ॥१०५॥

शृंग सख्या—परथे ८०, ऊपरथे ८० बाकी पूर्ववत कुल २७३ शृंग। तिलक २४ पूर्ववत्

विभक्ति तेईसवीं।

५३—पार्श्ववल्लभप्रासाद—

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे [1]षड्विंशपदभाजिते।
कर्णास्तु गर्भपर्यन्तं विभागानां तु लक्षणम् ॥११६॥
वेदरूपगुणेन्दवो[2] भद्रार्धं तु चतुष्पदम्।
श्रीवत्सं केसरीं चैव रथे कर्णे च दापयेत् ॥११७॥

१. 'षड्विंशति भाजिते' पाठान्तरे। २. 'द्वय'।

कर्णिकायां ततः शृङ्गं-मष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
भद्रे चैवोरुचत्वारि प्रासादः पार्श्ववल्लभः ॥११८॥

इति श्री पार्श्ववल्लभप्रासाद ॥५३॥

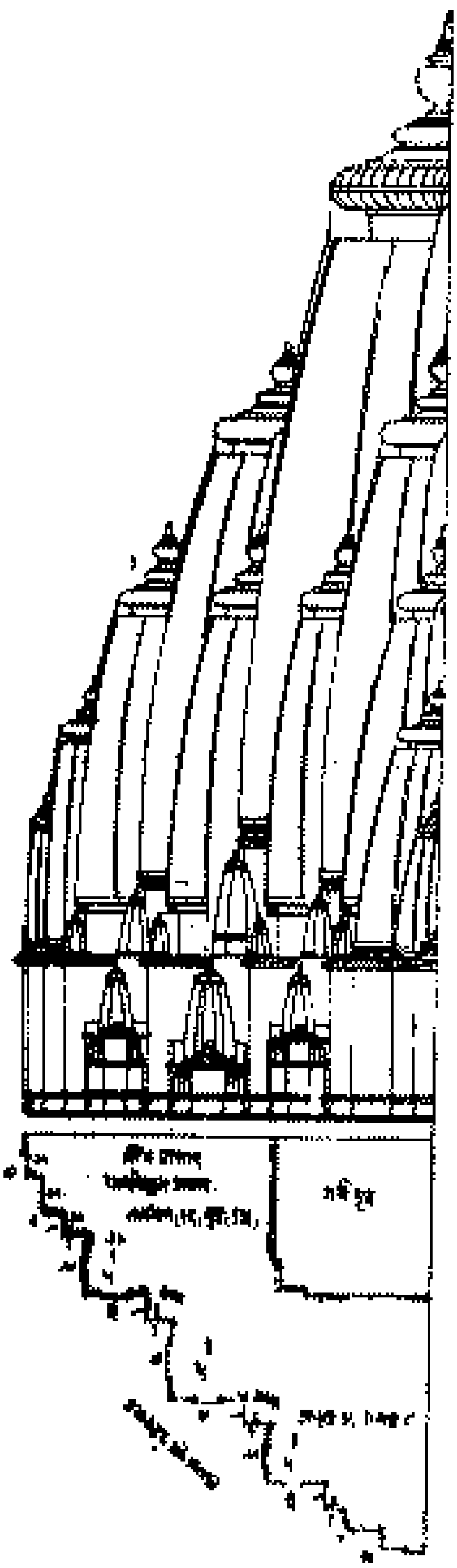

प्रासाद की समचोरस भूमिका छव्वीस भाग करें। उन में चार भाग का कोण, एक भाग की कोणी, तीन भाग का प्रतिरथ, एक भाग की नन्दी और भद्रार्ध चार भाग का रक्खें। कोण और प्ररथ के ऊपर एक एक केसरीक्रम और एक एक श्रीवत्सशृंग चढावें। कोणी और नन्दी के ऊपर एक एक शृंग चढावें। आठ प्रत्यङ्ग और भद्र के ऊपर चार चार उरुशृंग चढावें। ऐसा पार्श्वनाथवल्लभ नाम का प्रासाद है ॥११६ से ११८॥

शृङ्ग संख्या—कोणे २४, प्ररथे ४८, भद्रे १६ कोणी पर ८, नंदी पर ८, प्रत्यंग ८, एक शिखर कुल ११३ शृंग।

५४—पद्मावतीप्रासाद—

कर्णे च तिलकं दद्यात् प्रासादस्तत्स्वरूपकः ।
पद्मावती च नामेति प्रासादो देवीवल्लभः ॥११९॥

इति पद्मावतीप्रासादः ॥५४॥

पार्श्ववल्लभ प्रासाद के कोणे के ऊपर एक एक तिलक भी चढावे तो पद्मावती नामका प्रासाद होता है। यह देवी को प्रिय है ॥११९॥

शृंग संख्या पूर्ववत् ११३। तिलक ४ कोणे के पर।

५५—रूपवल्लभप्रासाद—

तद्रूपं च प्रकर्तव्यं प्रतिकर्णे कर्णसादृशम् ।
जिनेन्द्रायतनं चैव प्रासादो रूपवल्लभः ॥१२०॥

इति रूपवल्लभप्रासादः ॥५५॥

पद्मावती प्रासाद के प्ररथ के ऊपर भी एक एक तिलक चढावें तो रूपवल्लभनामका जिनेन्द्रप्रासाद होता है ॥१२०॥

शृंग संख्या—पूर्ववत् ११३। तिलक १२। चार कोणे और आठ प्ररथे।

विभक्ति चौबीसवीं ।

५६—वीरविक्रम-महीधरप्रासाद—

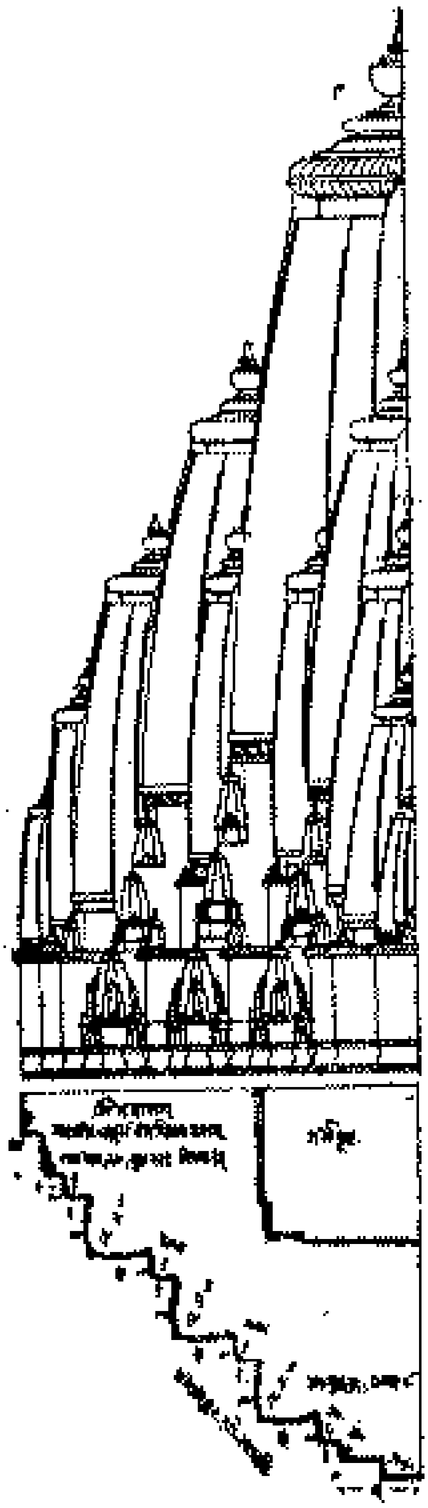

चतुरस्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
कर्णस्त्रिभागिको ज्ञेयः प्रतिकर्णश्च तत्समम् ॥१२१॥
कर्णिका नन्दिका भागा भद्रार्धं च चतुष्पदम् ।
श्रीवत्सं केसरीं चैव सर्वतोभद्रमेव च ॥१२२॥
रथे कर्णे च दातव्य-मष्टौ प्रत्यङ्गानि च ।
भद्रे चैवोरुचत्वारि कर्णिकायां शृङ्गोत्तमम् ॥१२३॥
वीरविक्रमनामोऽयं प्रासादो जिनवल्लभः ।
महीधरश्च नामायं पूजिते फलदायकः ॥१२४॥

इति श्री महावीरजिनवल्लभो वीरविक्रमप्रासादः ॥५३॥

प्रासाद की समचोरस भूमिका चौबीस भाग करें। उनमें कोण और प्रतिकर्ण तीन तीन भाग, कोणी और नन्दी एक एक भाग और भद्रार्ध चार भाग रक्खें। कोण और प्ररथ के ऊपर केसरी और सर्वतोभद्र ये दो क्रम और एक श्रीवत्सशृंग चढावें, भद्र के ऊपर चार उरुशृंग, तथा कोणी और नंदी के ऊपर एक श्रीवत्सशृंग और आठ प्रत्यंग चढावें। ऐसा वीरविक्रम नाम का प्रासाद जिनदेव को प्रिय है ॥१२१ से १२४॥

शृंगसंख्या—कोणे ६०, प्ररथे १२०, प्रत्यंग ८, भद्रे १६, कोणी पर ८ नंदी पर ८, एक शिखर, कुल २२१ शृंग।

५७—अष्टापदप्रासाद—

तद्रूपे च प्रकर्तव्ये कर्णोर्ध्वे तिलकं न्यसेत् ।
अष्टापदश्च नामायं प्रासादो जिनवल्लभः ॥१२५॥

इत्यष्टापदप्रासादः ॥५४॥

वीर विक्रम प्रासाद के कोणे के ऊपर एक एक तिलक भी चढावें तो अष्टापद नामका प्रासाद होता है। वह जिनदेव को प्रिय है ॥१२५॥

शृंग संख्या—पूर्ववत् २२१। तिलक—४ कोणे के ऊपर।

५८—तुष्टिपुष्टिदप्रासाद—

तद्रूपं च प्रकर्तव्य—मुरुशृङ्गं च पञ्चमम् ।
तुष्टिपुष्टिदनामोऽयं प्रासादो जिनवल्लभः ॥१२६॥

इति तुष्टिपुष्टिदप्रासादः ॥५८॥

अष्टापदप्रासाद के भद्र के ऊपर चार के बदले पांच उरुशृंग चढावें तो तुष्टिपुष्टिद नामका प्रासाद होता है। वह जिनदेव को प्रिय है ॥१२६॥

शृंग संख्या—भद्रे २० बाकी पूर्ववत् कुल २२५ शृंग और तिलक ४ कोणे

जिनप्रासाद प्रशंसा—

प्रासादाः पूजिता लोके विश्वकर्मणा भाषिताः ।
चतुर्विंशतिविभक्तीनां जिनेन्द्राणां विशेषतः ॥१२७॥

उपरोक्त विश्वकर्मा ने कहे हुए चौबीस विभक्ति के जिनेन्द्रदेवों के प्रासाद विशेष प्रकार से पूजनीय हैं ॥१२७॥

चतुर्दिशि चतुर्द्वाराः पुरमध्ये सुखावहाः ।
भ्रमाश्च विभ्रमाश्चैव प्रशस्ताः सर्वकामदाः ॥१२८॥

चारों दिशाओं में द्वारवाले अर्थात् चार द्वारवाले, भ्रमवाले अथवा बिना भ्रम के जिनेन्द्र प्रासाद नगर में हों तो प्रजा को सुख देने वाले हैं। तथा प्रशस्त हैं और सब इच्छित फल को देने वाले हैं ॥१२८॥

शान्तिदाः पुष्टिदाश्चैव प्रजाराज्यसुखावहाः ।
अश्वैर्गजैर्बलिवर्दै–र्महिषीनन्दीभिस्तथा ॥१२९॥
सर्वश्रियमवाप्नुवन्ति स्थापिताश्च महीतले ।

जिनेन्द्रदेवों के प्रासाद शान्ति देने वाले हैं। पुष्टि देनेवाले और राजा प्रजा को सुख देनेवाले हैं। एवं इस पृथ्वी के ऊपर जिनेन्द्र देवों के प्रासाद स्थापित करने से घोडे, हाथी, बैल, भैंस और गाय आदि की सब सम्पत्तियों को देनेवाले हैं ॥१२९॥

नगरे ग्रामे पुरे च प्रासादा ऋषभादयः ॥१३०॥
जगत्या मण्डपैर्युक्ताः क्रीयन्ते वसुधातले ।
सुलभं दीयते राज्यं स्वर्गो चैवं महीतले ॥१३१॥

नगर, ग्राम और पुरके मध्य में जगती और मंडप वाले ऋषभ आदि जिनप्रासाद पृथ्वी-तल में किया जाता है। जिसे स्वर्ग और पृथ्वी में राज्य प्राप्ति सुलभ होती है ॥१२० से १३१॥

दक्षिणोत्तरमुखाश्च प्राचीपश्चिमदिङ्मुखाः ।
वीतरागस्य प्रासादाः पुरमध्ये सुखावहाः ॥१३२॥

इति श्री विश्वकर्मकृतज्ञानप्रकाशदीपार्णवे वास्तुविद्यायां
जयपृच्छता जिनप्रासादाधिकारः समाप्तः ॥

दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम, इन चारों दिशा के मुख वाले वीतराग देव के प्रासाद नगर में हो तो सुख कारक हैं ॥१३२॥

इति पं० भगवानदास जैन कृत ज्ञानप्रकाशदीपार्णव के वास्तु-
विद्या के जिनप्रासादाधिकार की सुबोधिनी नाम्नी
भाषाटीका समाप्त ।

इस ग्रंथ में आये हुये शब्दों का सार्थ अकारादि क्रम।

अ

अंश पु. विभाग, खंड।
अग्रेतन न. ऊपर का भाग।
अघोर पु. उपरथ नाम के थर का देव
अङ्क न. नवकी संख्या, चिह्न।
अङ्कित वि० चिह्न किया हुआ।
अङ्गुल न. ईंच, आंगल।
अङ्घ्रि पु. पैर, चरण, चतुर्थांश।
अजिता स्त्री नींवकी पांचवी शिला का नाम।
अज्ञिता स्त्री गर्भगृह के आगे ½ भाग के माप की चौकी का नाम।
अण्डक न. शृंग, शिखर, आमलसार, कलश का पेट, ईंडा।
अदिति पु. वास्तु देवता का नाम।
अद्रि पु. पर्वत, सात की संख्या
अधिष्ठान न. आधार, जगती
अनन्त पु. व्यासार्द्ध के ½ भाग के उदयवाला गुंबज।
अनिल पु. वायु, वास्तुदेव।
अनुग पु. पडरा, कोने के समीप का दूसरा कोना।
अन्तरपत्र न. कलश और केवाल ये दोनों थरों के बीच अन्तर।
अन्तराल न. देखो अन्तरपत्र, अन्तर।
अन्धकारिका स्त्री. परिक्रमा, प्रदक्षिणा।
अन्धारिका स्त्री. देखो ऊपर का शब्द।
अपराजित न. सूत्रसंतान गुणकीर्ति का रचा हुआ वास्तुशिल्प का बड़ा ग्रंथ।
अपराजिता स्त्री. नींव की छट्ठी शिला का नाम।
अमृतोद्भव पु. केसरी जाति का आठवां प्रासाद।
अभिषेक पु. देवों का मंत्र पूर्वक स्नान।
अम्बर पु. शिखरकी ग्रीवाका देव।
अयुत न. दस हजार की संख्या।
अर्क पु. सूर्य, बारह की संख्या।
अर्कतनया स्त्री. यमुना देवी।
अर्चन न. पूजा।
अर्चा स्त्री. देवमूर्ति।
अर्धचन्द्र पु. प्रासाद की देहली के आगे की अर्द्धगोल आकृति, शंखावटी, मंडल विशेष.
अर्यमन् पु. वास्तुदेव, सूर्य, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र।
अलिन्द पु. बरामदा, दालान।
अवलम्ब पु. ओलंबा, रस्सी के बंधा हुआ लोहे का छोटा सा लट्टू, जिसको शिल्पिवर्ग बांध काम करते समय अपने पास रखता है।
अव्यक्त वि. अप्रकाशित, अंधकार मय, अघटित शिवलिंग।
अश्वमेध पु. यज्ञविशेष का नाम।
अश्वत्थ पु. महापीपला, पीपल।
अश्विन् पु. अश्विनीकुमारदेव, अर्द्धचन्द्र के देव
अष्टादश वि. अठारह की संख्या।
अष्टापद पु. चारों दिशामें आठ आठ सीढीवाला पर्वत।
अष्टास्रक पु. आठ कोना वाला स्तंभ
असुर पु. वास्तु देव।
अस्र पु. कोना, हद।

आ

आकाश न. वास्तुदेव, गुंबज का देव।
आगार न. देवालय, घर, स्थान।
आदित्य पु. वास्तुदेव, सूर्य।
आद्यसूत्रधार पु. विश्वकर्मा।
आप पु. वास्तुदेव, पानी।
आपवत्स पु. वास्तुदेव।
आमलसार पु. शिखर के स्कंध के ऊपर कुंभार के चाक जैसा गोल कलश।
आमलसारिका स्त्री. आमलसार के ऊपर की चंद्रिका के ऊपर की गोल आकृति।

आय पु. संज्ञा विशेष जिसे गृहादि शुभाशुभ देखा जाता जाता है, आठ की संख्या, लाभ।

आयत वि. लंबाई।

आयतन न. देवालय, देवों की पंचायतन।

आरात्रिक न. आरती।

आर्द्रा स्त्री. छट्ठा नक्षत्र।

आलय पु. वासस्थान, घर, देवालय।

आसनपट्ट पु. बैठने का आसन, तकीया।

इ ई

इन्दु पु. चंद्रमा, एक की संख्या।

इन्द्र पु. पूर्वदिशा का स्वामी, दिक्पाल, वास्तुदेव, उद्गम थर का देव।

इन्द्रकील न. स्तंभिका जो ध्वजा दंड को मजबूत रखने के लिये साथ रखा जाता है।

इन्द्रजय पु. वास्तुदेव

इन्द्रनील पु. केसरी जाति का तेरहवां प्रासाद, रत्न विशेष।

इन्द्रवारुणी स्त्री. बड़ी इन्द्रफला औषधि।

इन्द्रांश पु. संज्ञाविशेष जो इमारती काम में देखा जाता है।

इषु पु. पांच की संख्या, बाण.

इष्टका } स्त्री. ईंट
इष्टिका }

ईश पु. नंदी थर का देव, वास्तुदेव, ईशान कोण का दिक्पाल, महादेव।

ईश्वर पु. शिखर का देव, महादेव।

ईश्वरी स्त्री. औषधि विशेष, शिवलिङ्गी।

उ ऊ

उच्छ्राय पु. ऊंचाई

उच्छिखल न. गुंबज का ऊंचा उठा हुआ चंदोवा, छत।

उत्तरंग न. द्वारशाखा के ऊपर का मथाला।

उत्तरा स्त्री. उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये तीनों नक्षत्र।

उत्तानपट्ट पु. बड़ा पाट।

उत्सेध पु. ऊंचाई।

उदक न. पानी, जल।

उदच् स्त्री. उत्तरदिशा।

उदुम्बर न. द्वारशाखा का नीचला भाग देहली।

उद्गम पु. प्रासाद के दीवार का आठवां थर जो सीढी के आकार वाला है।

उद्भिज्ज पु. चार प्रकार के जातिकी आकृति वाली छत, छत का एक भेद।

उद्भिन्ना स्त्री. सातवीं संवरणा।

उपग्रह पु. नक्षत्रों की एक संज्ञा।

उपरथ पु. कोने के पास का तीसरा कोना।

उरमञ्जरी स्त्री. उरुशृंग

उरुशृङ्ग } न. शिखर के भद्र ऊपर चढ़ाये
उरःशृङ्ग } हुए शृंग

ऊर्ध्व वि. ऊंचाई, ऊपर,

ऊर्ध्वार्चा स्त्री. खड़ी मूर्ति।

ऋ

ऋक्ष न. नक्षत्र, २७ की संख्या।

ऋत्विज पु. यज्ञ करने वाले, यज्ञ दीक्षित।

ए ऐ

एकादश वि. ग्यारह की संख्या।

ऐरावत पु. केसरी जाति का २१ वां प्रासाद।

क

कङ्गु न. धान्य विशेष, कांग।

कटि स्त्री. कमर, शरीर का मध्य भाग।

कणक न. कणी, जाड्यकुंभ के ऊपर का थर।

कणपीठ न. जाड्यकुंभ और कणी ये दो थरवाली प्रासाद की पीठ

कणाली स्त्री. कणी नामका थर

कदाचन अ. कभी।

कनीयस् वि. छोटा, लघु।

कन्या स्त्री. छठ्ठी राशिका नाम।

कपिली स्त्री. कवली, कोली, शुकनास के दोनों तरफ शिखर के आकार वाला मंडप।

कपोताली } स्त्री. प्रासाद के पीठका पांचवां थर
कपोतिका } केवाल थर।

कर पु. हस्तनक्षत्र, हाथ।

करोटक पु. गुंबज।

कर्ण न. कोना, पट्टी, सिकुरण।

कर्णक न. कणी, जो थरों के ऊपर नीचे पट्टी रखी जाती है।

कर्णगूढ पु. छीपा हुआ कोना, बंद कोना।

कर्णदर्दरिका स्त्री. गुंबज के उदय में नीचला थर।

कर्णसिंह पु. प्रासाद के कोने पर रखा हुआ सिंह।

कर्णाली स्त्री. कणी, जाड्यकुंभा के ऊपर का थर।

कर्णिका स्त्री. थरों के ऊपर नीचे की पट्टी, छोटा कोना, कोणा और प्ररथ के बीच में कोणी की कालना।

कर्म न. समूह वाचक, शृंगों का समूह।

कलश पु. मंडोवर का तीसरा थर, शिखर के ऊपर रखा हुआ कलश।

कलशाण्डक न. कलश का पेट।

कला स्त्री. रेखा विशेष, सोलह की संख्या।

कलास्र पु. सोलह कोना।

कषाय पु. औषधि विशेष।

कांस्य न. कांसा, धातु विशेष।

कामदपीठ न. गज आदि रूपथरों से रहित पीठ।

कारा स्त्री. जेल

काल पु. वास्तुदेव, समय।

कालन्दी स्त्री. यमुना देवी।

काष्ठ न. लकड़ी।

किंपुर पु. किन्नरदेव, पुष्पकंठ के देव।

कीर्तिवक्त्र न. ग्रासमुख।

कीर्तिस्तंभ पु. विजयस्तंभ, तोरणवाले स्तंभ।

कीलक न. कील, खूंटा

कुज पु. मंगलग्रह।

कुक्षिपता स्त्री. प्रासाद के $\frac{3}{10}$ भाग के भाग की कोणी

कुण्ड न. जलकुंड, जलकुंड।

कुबेर पु. उत्तर दिशा का दिक्पाल।

कुंभ पु. मंडोवर का दूसरा थर, कलश।

कुम्भिका स्त्री. स्तंभ के नीचे की कुंभी।

कुलतिलका स्त्री. पांचवीं संवरणा।

कूटच्छाद्य न. छज्जा।

कूर्म पु. सोना चांदी का कछुआ, जो नींव में रखा जाता है।

कूर्मशिला स्त्री. कछुए के चिह्नवाली धारणी शिला।

केसरिन् पु. पांच शृंगवाला प्रासाद।

कैलास पु. केसरी आदि का ग्यारहवां और वैराज्य आदि का ठारहवां प्रासाद।

कोटर पुं-न. पोलाण।

कोटि स्त्री करोड़ संख्या, रेखा की एक भुजा

कोट्ट पु. किला, दुर्ग।

कोल न. गुंबज के उदय में गजतालु थर के ऊपर का थर।

कोविद पु. पंडित, ज्ञानी।

कोष्ठागार न. कोठार।

क्षण न. खंड, विभाग।

क्षिति स्त्री. पाटका देवता, पृथ्वी।

क्षितिवल्लभ पु. वैराज्य आदिका सोलहवां प्रासाद।

क्षिप्त न. लटकती हुई छत।

क्षीर न. दूध।

क्षीरार्णव पु. समुद्र, वास्तुग्रन्थ विशेष.

क्षेत्र न. प्रासादतल।

क्षेत्रपाल पु. अमुक मर्यादित भूमिका देव।

क्षोभणा स्त्री. कोनी

ख

खण्ड पु. विभाग, मंजिल, खांड।

खर पु. खुर भाग.

खरशिला स्त्री. जगती के दासा के ऊपर और भीट के नीचे बनी हुई प्रासाद को धारण करनेवाली शिला।

खल्वशाखा स्त्री. द्वार की नव शाखाओं में चौथी और आठवीं शाखा।

खात न. मकान की नींव।

खुर } पु. प्रासाद की दीवार का प्रथम थर
खुरक } खुरा.

ग

गगारक न. देहली के आगे अर्द्धचंद्राकृति के दोनों तरफ की फूलपत्ति वाली आकृति।

गज पु. सातवां आय, गजथर।

गजतालु न. गुंबज के उदय में रूपकंठ के ऊपर का थर।

गजदन्त न. हाथी दांत की आकृतिवाला मंडल।

गजधर पु. देवालय और मकान आदि बनाने वाला शिल्पी।

गणेश पु. गणपति।

गण्डान्त पु. तिथि नक्षत्र आदि की संधि का समय

गन्धमादन पु. वैराज्यजातिका बीसवां प्रासाद।

गन्धमादिनी स्त्री. बीसवीं संवरणा।

गन्धर्व पु. वास्तुदेव।

गन्धर्वा स्त्री. नवशाखाओं में दूसरी और पांचवीं शाखा।

गरुड पु. केसरी जाति का तेइसवां प्रासाद।

गर्भ पु. गर्भगृह।

गह्वर न. गुफा।

गान्धर्व पु. फेवाल थर का देव।

गान्धारी स्त्री. चार शाखावाला द्वार।

गिरि पु. वास्तुदेव, पर्वत।

गुण पु. तीन की संज्ञा, रस्सी, डोरी।

गुरु पु. बृहस्पति, पांचवां ग्रह।

गुह पु. कार्तिक स्वामी।

गूढ पु. गूढमंडप, दीवार वाला मंडप।

गृह न. घर, मकान।

गृहक्षत पु. वास्तुदेव

गृहिन् पु. घरका मालिक।

गेह न. घर, गर्भगृह।

गोधूम पु. गेहूं, धान्य विशेष।

गोपुर न. किला के द्वार ऊपर का मकान।

गोमेद न. गोमूत्र के रंग का रत्न विशेष।

गौरितिलक न. मंडल विशेष।

ग्रन्थि स्त्री. गांठ।

ग्रह पु. नवकी संख्या।

ग्रास पु. जलचर प्राणी विशेष।

ग्रासपट्टी स्त्री. ग्रास के मुखवाला थर।

ग्रीवा स्त्री. शिखर का स्कंध और आमलसार के नीचे का भाग।

ग्रीवापीठ न. कलश के नीचे का थर।

घ

घट पु. कलश, आमलसार।

घण्टा स्त्री. कलश, आमलसार।

घण्टिका स्त्री. छोटी आमलसारिका, संवरणा के कलश।

घृत न. घी।

च

चण्ड पु. महादेव का गणदेव, यह शिवलिंग की जलाधारी के नीचे स्थापित किया जाता है, जिसे स्नात्र-जल उसके मुख में जाकर बाहर गिरता है, यह स्नात्रजल पीछे दोष कर्ता नहीं रहता।

चण्डिका स्त्री. देवी विशेष।

चतुरस्र वि. समचोरस।

चतुर्दश सं. चौदह की संख्या।

चतुष्किका स्त्री. चौकी मंडप।

चत्वर न. चौक, चाररस्ता, यज्ञ स्थान।

चन्द्र पु. द्वारशाखा का देव, चंद्रमा।

चन्द्रशाला स्त्री. खुल्ली छत।

चन्द्रावलोकन न. खुल्ला भाग।

चन्द्रिका स्त्री. आमलसार के ऊपर औंधे कमल की आकृतिवाला भाग।

चम्पका स्त्री. दशवीं संवरणा.

चरकी स्त्री. वास्तुचक्र के ईशान कोण की देवी।

चरभ न. चरलग्न।

चापाकार न. धनुष के आकार वाला मंडल।

चार पु. जिसमें पांच पांच भाग सोलह बार बढ़ाया जाता है, ऐसी संज्ञा।

चित्रकूटा स्त्री. ठारहवीं संवरणा।

चित्रा स्त्री. चौदहवां नक्षत्र।

चिन्तामणि पु. आठवां अयं।

चूडामणि पु. सोलहवीं संवरणा ।
चूर्ण न. चूना ।

छ

छन्दस् न. तल विभाग ।
छाद्य न. छज्जा ।
छिद्र न. छेद ।

ज

जगती स्त्री. प्रासाद की मर्यादित भूमि, पीठिका,
जङ्घा स्त्री. प्रासाद की दीवार का सातवां थर
जम्भा स्त्री. वास्तुचक्र के अग्निकोण की देवी
जय पु. वास्तुदेव ।
जया स्त्री. तीसरी शिला का नाम
जलदेव पु. कुंभा के थर का देव, वरुण ।
जलाधिप पु. वास्तुचक्र का देव ।
जाड्यकुम्भ पु. पीठ के नीचे का बाहर नीकलता हुआ गलताकार थर ।
जानु न. घुटना ।
जाल न. जालीदार खिड़की
जालक न. मकड़ी का जाला, जालीदार खिड़की
जाह्नवी स्त्री. गंगा, नाली का देव.
जिन पु. जैनधर्म के देव, चौबीस की संख्या ।
जीर्ण न. पुराणा ।
जीवन्यास न. देवों की प्राणप्रतिष्ठा ।
जूर्ण स्त्री. धान्यविशेष, जुवार ।
ज्योतिष्मती स्त्री, मालकांगनी औषधि विशेष ।

ट

टक्काभ न. वंशमंडल विशेष ।

त

तडाग न. तालाव, सरोवर ।
तत्पुरुष पु. प्रासाद की दीवार के रथ का देव ।
तल न. नीचे का तल भाग ।
तल्प न. शय्या, आसन ।
तवङ्ग न. प्रासाद के थर आदि में छोटी खाईंभ के तोरण वाले स्तंभ युक्त रूप ।
ताम्र न. धातु विशेष, तांबा ।
तिथि स्त्री. पंद्रह की संख्या ।
तोरण न. दोनों स्तंभों के बीच में वलयाकार आकृति, तोरण ।
त्रिक पु. चौकी मंडप ।
त्रिदश पु. देव.
त्रिदशा स्त्री. तेरहवीं संवरणा ।
त्रिधा अ. तीन प्रकार.
त्रिपुरुष पु. ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।
त्रिमूर्त्ति स्त्री. देखो त्रिपुरुष, उत्तरंग के देव ।
त्रिंशत् सं. तीसकी संख्या ।
त्रैलोक्यभूषण पु. वैराज्यादि नववां प्रासाद ।
त्रैलोक्यविजय पु. वैराज्यादि पंद्रहवां प्रासाद ।
त्र्यंश न. तृतीयांश, तीसरा भाग ।

द

दग्धा स्त्री. तिथि विशेष ।
दण्ड पु. ध्वजा लटकाने का दंड ।
दन्त पु. बत्तीस की संख्या, दांत, शिखर ।
दर्पण न. आयना, रूप देखने का काच ।
दल न. फालना,
दशाक्षरा स्त्री. तीसरी संवरणा ।
दारु न. काष्ट, लकड़ी, कारीगर ।
दारुण वि. भयंकर ।
दिक् स्त्री. दिशा, दश की संख्या ।
दिक्पाल पु. दिशा के अधिपति देव ।
दिक्साधन पु. दिशा का ज्ञान करने की क्रिया
दिङ्मुख, दिङ्मूढ वि. प्रासाद, गृह आदिका टेढ़ापन ।
दिति पु. वास्तुदेव ।
दिवाकर पु. बारह की संख्या, सूर्य ।
दिशा स्त्री. दश की संख्या, दिशा ।
दिशिपाल पु. कंभा थर के देव ।
दीर्घ वि. लंबाई ।
दृढ वि. मजबूत ।
दृष्टि स्त्री. आंख, निगाह ।
देवगांधारी स्त्री. चौदहवीं संवरणा ।

देवतायतन पु. देवों की पंचायत ।
देवनक्षत्र न. देवगणवाले नक्षत्र ।
देवपुर. देवनगर ।
देवसुन्दरी स्त्री. चौथी संवरणा ।
दैर्घ्य वि. लंबाई ।
दोला स्त्री. झूला । हिंडोला ।
दौवारिक पु. वास्तुदेव ।
द्राविड पु. प्रासाद की एक जाति ।
द्राविडी पु. अधिक शृंगोंवाली प्रासाद की दीवार, जंघा ।
द्वादश सं. बारह की संख्या ।
द्वार न. दरवाजा ।
द्वारपाल पु. द्वारका रक्षक, चौकीदार ।
द्विरष्ट सं. सोलह की संख्या ।

ध

धनद पु. उत्तर दिशा का अधिपति कुबेर देव ।
धनु: न. नववीं राशि, धनुष्य ।
धरणी स्त्री. गर्भगृह के मध्य नींव मे स्थापित नववीं शिला ।
धराधर पु. कपिली मंडप के देव ।
धिष्ण्य न. २७ की संख्या । नक्षत्र
धूम्र पु. दूसरा आय ।
ध्रुव पु. उत्तर दिशा का एक तारा, ध्रुव तारा ।
ध्वज पु. पहला आय, ध्वजा ।
ध्वजा स्त्री. पताका, झंडा, धजा ।
ध्वजादंड पु. ध्वजा रखने का दंड, जिसमें ध्वजा लटकाई जाती है ।
ध्वजाधार पु. ध्वजादंड रखने का कलावा
ध्वांक्ष पु. आठवां आय, काक ।

न

नकुलीश पु. ऊर्ध्वरेता महादेव ।
नगर न. गांव, शहर ।
नन्द पु. नव की संख्या ।
नन्दन पु. केसरी जाति का तीसरा और वैराज्यादिका दूसरा प्रासाद ।
नन्दशालिक पु. केसरी जाति का चौथा प्रासाद ।
नन्दा स्त्री. प्रथम शिला, जो ईशान अथवा अग्नि कोण में प्रथम स्थापित किया जाता है ।
नन्दिन् पु. महादेव का वाहन, बैल, सांढ ।
नन्दिनी स्त्री. पंचशाखा वाला द्वार, आद्यकुम्भका देव, दूसरी संवरणा ।
नन्दी स्त्री. कोणी, भद्र के पास की छोटी कोनी ।
नन्दीश पु. केसरी जाती का पांचवां प्रासाद ।
नर पु. नरथर. पुरुष की आकृति वाली पट्टी ।
नर्तकी स्त्री. नाच करती हुई पुतली ।
नलिका स्त्री. नववीं संवरणा ।
नवनाभि पु. यज्ञमंडल विशेष ।
नवमङ्गल पु. वैराज्यादि १९ वां प्रासाद ।
नष्टच्छन्द पु. जिसकी तलविभक्ति बराबर न हो।
नाग पु. वास्तुदेव. हाथी ।
नागकुल पु. मोहू घर के देव ।
नागर पु. प्रासाद की एक जाति ।
नागरा स्त्री. ऊपर का अर्थ देखो ।
नागरी स्त्री. रूपविनाकी सादी जंघा ।
नागवास्तु पु.न. शेषनाग चक्र, राहुमुख ।
नाट्येश पु. नटराज ।
नाभि स्त्री. मध्यभाग ।
नाभिच्छन्द पु. दो जाति की मिश्र आकृति वाली छत ।
नाभिवेध पु. गर्भवेध ।
नारायणी स्त्री. आठवीं संवरणा ।
नाल न. नाली, पानी नीकलने का परनाला ।
नाली स्त्री. देखो ऊपर का अर्थ ।
नासक न. कोना ।
निरन्धार पु. बिना परिक्रमावाला प्रकाश मय प्रासाद ।
निर्गम पु. बाहर नीकलता हुआ भाग ।
निशाकार पु. आमलसार का देव, चंद्रमा ।
नि:स्वन पु. शब्द ।
नृत्य पु. नृत्यमंडप, रंगमंडप ।
नैर्ऋत पु. नैर्ऋत्य कोणके अधिपति दिक्पाल ।

प

पक्षिराज पु. केसरी जाति का २३ वां प्रासाद,
पञ्च सं. पांच की संख्या ।

पञ्चगव्य न. गाय का दूध, दही, घी, मूत्र और गोबर।
पञ्चविंशत् सं० पच्चीस की संख्या।
पञ्चदेव पु. ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य ईश्वर और सदाशिव ये पांच देवों का समूह, उरुशृंग के देव।
पञ्चाशत् सं. पचास की संख्या।
पट्ट पु. पाषाण का पाट।
पट्टभूमिका स्त्री. ऊपर की मुख्य खुली छत।
पट्टशाला स्त्री. दलान, बरामदा।
पताका स्त्री. ध्वजा।
पत्रशाखा स्त्री. द्वार की प्रथम शाखा का नाम।
पद न. भाग, हिस्सा।
पद्मक पु. समतल छत।
पद्मकोश पु. गुम्बज की कली के जैसा आकार।
पद्मपत्र न. पत्तियों के आकार वाला थर, दासा।
पद्मराग पु. केसरी जाति का १८ वां प्रासाद।
पद्मशिला स्त्री. गुम्बज के ऊपर की मध्यशिला, वह नीचे लटकती दिखती है।
पद्मा स्त्री. पद्मशिला, ग्यारहवां संवरणा।
पद्माक्ष पु. पद्मपत्र (दासा) के देव।
पद्मिनी स्त्री नवशाखा वाला द्वार।
पद्मासन न. देव के बैठने का स्थान, पीठिका।
पर्जन्य पु. वास्तुदेव, ध्वजा का देव।
पर्यङ्क पु. पलंग, खाट।
पर्वन् न. ध्वजादंड की दो चूडी का मध्य भाग।
पर्वत पु. स्तंभ का देव।
पल्यङ्क पु. पलंग, खाट।
पाद पु. चरण, चौथा भाग।
पापराक्षसी स्त्री. वास्तुचक्र के वायु कोणकी देवी।
पार्वती स्त्री. कलश के देव।
पार्श्व पु. न. एक तरफ, समीप।
पालव न. छज्जा के ऊपर छाद्य का एक थर।
पिण्ड वि. जाडाई, मोटाई।
पितामह पु. ब्रह्मा।
पितृ पु. वास्तुदेव, पूर्वज, पितर देव।
पितृपति पु. यम, दक्षिण दिशा का दिक्पाल।
पिप्पल पु. प्लक्ष, पाकर, पिलखन।
पिशाच पु. क्षेत्रगणित के आय और व्यय दोनों बराबर आनेकी संज्ञा।
पीठ न. प्रासाद की कुरसी, आसन।
पीलीपीच्छा स्त्री. वास्तुचक्र के ईशान कोण की देवी।
पुनर्वसु पु. सातवां नक्षत्र।
पुर न. गांव, शहर।
पुराण न. अठारह की संज्ञा।
पुरुष पु. प्रासाद का जीव, जो सुवर्ण का पुरुष बनाकर आमलसार में पलंग पर रखा जाता है।
पुष्पज पुं, वास्तुदेव।
पुष्पकंठ पुं, दासा, अंतराल।
पुष्कर न. जलाशय का मंडप, बलाणक।
पुष्पगेह न. पुष्पगृह।
पुष्पदन्त पुं. वास्तुदेव।
पुष्पराग न. पुखराज, रत्न विशेष।
पुष्पिका स्त्री. गुम्बद के थर बनी हुई प्रथम संवरणा।
पुष्य न. आठवां नक्षत्र।
पूतना स्त्री. वास्तुचक्र के नैऋत्य कोण की देवी।
पृथिवीजय पुं. केसरी जाति का बारहवां प्रासाद।
पृथिवीधर पु. वास्तुदेव।
पृथु वि. विस्तार, चौड़ाई।
पेट, पेटक न. पाट आदि के नीचे का तल।
पौर पु. दूसरा व्यय का नाम।
पौरुष पुं. प्रासाद पुरुष संबंध की विधि।
पौली स्त्री. प्रासाद की पीठ के नीचे भीट्ट का थर।
पौष्ण न. २७ वां रेवती नक्षत्र।
प्रणाल न. पानी निकलने की नाली, परनाला।
प्रतिकर्ण न. कोनेके समीप का दूसरा कोना।
प्रतिभद्र न. मुखभद्र के दोनों तरफ के खांचे।
प्रतिरथ पुं. कोनेके समीप का चौथा कोना।
प्रतिष्ठा स्त्री. देवस्थापन विधि।
प्रतोली स्त्री. पोल, प्रासाद आदि के आगे तोरण वाला दो स्तंभ।
प्रत्यङ्ग न. शिखर के कोनेके दोनों तरफ के लंबा चतुर्थांश मानका शृंग।

प्रदक्षिणा स्त्री. परिक्रमा, फेरी ।
प्रद्योत पुं. तीसरा अयका नाम ।
प्रभा स्त्री. तेज, प्रकाश ।
प्रवाल न. मूंगा, रत्नविशेष ।
प्रवाह पुं. पानीका बहाव ।
प्रवेश पुं. घरों के भीतर का भाग ।
प्रहार पुं. शृंगों के नीचे का थर ।
प्राक् स्त्री. पूर्वदिशा ।
प्राकार पुं. किला, कोट, दीवार ।
प्राग्ग्रीव पुं. प्रासाद के गर्भगृह के आगे का मंडप ।
प्राची स्त्री. पूर्वदिशा ।
प्रासाद पुं. देवमंदिर, राजमहल ।
प्लक्ष पुं. वृक्ष विशेष, पाकर, पिलखन ।
प्लव पुं. पानीका बहाव ।

फ

फणिमुख न. शेषनागका मुख, यह नींव खोदने के प्रारंभ में देखा जाता है ।
फालना स्त्री. प्रासाद की दीवार के खांचे ।
फांसना स्त्री. प्रासाद की एक जाति विशेष ।

ब

बङ्ग न. कलई नामकी धातु
बलाण, बलाणक } न. कक्षासन वाला मंडप, गर्भगृह के आगे का मंडप, मुखमंडप ।
बाण पु. पांच की संख्या, शिवलिंग ।
बीजपुर न. कलश के ऊपरका बीजोरा ।
ब्रह्मन् पु. ब्रह्मा ।
ब्राह्मय न. रोहिणी नक्षत्र ।

भ

भक्ति स्त्री. १२ की संख्या ।
भग्न वि. खंडित ।
भद्र न. मंडल विशेष, प्रासाद का मध्य भाग ।
भद्रक पु. भद्रवाला स्तंभ
भद्रा स्त्री नींव की दूसरी शिलाका नाम, तिथि विशेष ।
भरण, भरणी } न. प्रासाद की दीवार का और स्तंभ के ऊपर का थर ।
भल्लाट पु. वासुदेव ।
भवन न. प्रासाद, मंदिर, मकान, गृह ।
भाराधार पुं. शिरावटी थर के पूजनीय देव ।
भिट्ट पुं. प्रासाद की पीठ के नीचे का थर ।
भित्ति स्त्री. दीवार ।
भिन्न न. सूर्यकिरण आदि से भेदित गर्भगृह, दोष विशेष, वितान (छत) की एक जाति ।
भुवनमण्डन पु. वैराज्यादि चौदहवां प्रासाद ।
भूत न. पांच की संख्या, पृथिव्यादि पांच तत्त्व ।
भूधर पु. केसरी जाति का पंद्रहवां और वैराज्यादि जाति का तेरहवां प्रासाद ।
भूमि स्त्री. माल, मंजिल ।
भूमिज, भूमिजा } पु. प्रासाद की जाति विशेष ।
भृङ्गराज पु. वासुदेव ।
भृश पु. वास्तुदेव ।
भ्रम पुं. परिक्रमा, फेरी ।
भ्रमणी स्त्री. परिक्रमा, फेरी ।
भ्रमन्तिका स्त्री. देखो ऊपर का शब्द ।
भ्रमा स्त्री. प्रासाद के $\frac{1}{2}$ भाग के मान का चौकी मंडप

म

मकर पु. मगर के मुखवाली नाली ।
मञ्ची स्त्री. प्रासाद के दीवार की जंघा के नीचे का और केवाल के ऊपर का थर विशेष ।
मञ्जरी स्त्री. प्रासाद का शिखर अथवा शृंग ।
मठ पुं. ऋषि आश्रम, धर्मगुरु का स्थान ।
मण्डन पुं. एक विद्वान सूत्रधार का नाम, जो १५ वीं शताब्दि में चित्तोड के महाराणा कुंभकर्ण के आश्रित था । आभूषण ।
मण्डप पु. गर्भगृह के आगे का गृह ।
मण्डल न. गोल आदि आकार वाली पूजन की आकृति ।
मण्डुकी स्त्री. ध्वजादंड के ऊपर की पाटली जिसमें ध्वजा लगाई जाती है ।
मण्डोवर पुं. प्रासाद की दीवार ।
मत्तवारण न. कठहरा ।

मत्तालम्ब पु. गवाक्ष, झरोखा, आला, ताक।
मत्स्य न. आय विशेष।
मध्यस्था स्त्री. प्रासाद के ½ भाग के मान का कोली मंडप का नाम।
मनु पुं. चौदह की संख्या।
मनोहर पुं. पांचवां व्यय का नाम।
मन्दर पुं. केसरी जाति का छट्ठा प्रासाद।
मन्दरा स्त्री. इक्कसवीं संवरणा।
मन्दारक पुं. प्रासाद की देहली के मध्य का गोल भाग, एक जात की छत।
मन्दिर पुं. वैराज्यादि पांचवां प्रासाद देवालय।
मरुत् पुं. वायुदिशा का अधिपति, दिक्पाल।
मर्कटी स्त्री. ध्वजादंड के ऊपर की पाटली, जिसमें ध्वजा लटकाई जाती है।
मलय पुं. वैराज्यादि छट्ठा प्रासाद।
महानस न. रसोई घर, रसोडा।
महानील पुं. केसरी जाति का १४वां प्रासाद।
महाभोग पुं. वैराज्यादि २४वां प्रासाद।
महीधर पुं. वैराज्यादि १७वां प्रासाद।
महेन्द्र पुं. वास्तुदेव।
माड पुं. मंडप, मंडवा।
मातृ स्त्री. सप्त मातृ देवता।
मार्कटिका स्त्री. ध्रुवतारे के समीप का दो तारा, जो ध्रुव के चारों तरफ घूमते हैं।
मालिनी स्त्री. छह शाखावाले द्वार का नाम, २२ वीं संवरणा।
माहेन्द्र पुं. वैराज्यादि दसवां प्रासाद।
माहेन्द्री स्त्री. पूर्वदिशा।
मित्र पुं. वास्तुदेव।
मिश्रका स्त्री. प्रासाद की एक जाति।
मिश्रसंघाट न. ऊंचा नीचा आकार वाला गुम्बद का संदोषा, छत।
मीन पु. सूर्य की १२वीं संक्रांति, १२वीं राशि, मछली।
मीनार्क पुं. मीनराशि का सूर्य, मीन संक्रान्ति
मुकुटोज्ज्वल पुं. केसरी जाति का २०वां प्रासाद।
मुकुली स्त्री. आठ शाखावाले द्वार का नाम।
मुक्ता स्त्री. मोती।
मुखभद्र न. प्रासाद का मध्य भाग।
मुखमण्डप पुं. गर्भगृह के आगे का मंडप, बलाणक।
मुख्य पुं. वास्तुचक्र के देव।
मुण्डकोश न. छज्जा के ऊपर का एक थर।
मुद्ग पु. मूंग, धान्य विशेष।
मूढ न. टेढा, तीच्र्छा।
मूल न. क्षेत्रफल, क्षेत्र की लंबाई और चौड़ाई का गुणाकार को २७ से भाग देने से जो शेष बचे वह मूलराशि माना जाता है। नीचे का भाग, एक नक्षत्र।
मूलकर्ण न. पुं. शिखर के नीचे का कोना।
मूलरेखा स्त्री. शिखर की नीचे के दोनों कोणे के बीच का नाप, कोना।
मूषा स्त्री. लंबा अलिंद।
मृग न. मृगशीर्ष नक्षत्र, मकर राशि, वास्तु देव।
मृगार्क पुं. मकर राशि का सूर्य, मकर संक्रान्ति।
मृत् स्त्री मट्टी।
मेखला स्त्री. दीवार का खांचा।
मेढ्र पुं. पुरुष चिन्ह, लिंग।
मेरु पुं. प्रासाद विशेष, एक पर्वत।
मेरुकूटोद्भवा स्त्री. पचीसवीं संवरणा।
मैत्र्य न. अनुराधा नक्षत्र।

य

यक्ष पुं. आय से कम व्यय आनेकी संज्ञा, देहली का देव।
यक्ष्मन् पुं. वास्तुदेव।
यज्ञाङ्ग पुं. वृक्ष विशेष, गूलर।
यम पुं. दक्षिण दिशा का दिक्पाल, वास्तुदेव, भरणी नक्षत्र।
यमांश पुं. क्षेत्रफल का नाम विशेष।
यमचुल्ली स्त्री. सम्मुख लंबा गर्भगृह।
यव पुं. जव, धान्य विशेष।
यान न. वाहन, सवारी,
याम्या स्त्री. दक्षिण दिशा।
युग्म न. दो की संख्या।

योगिनी स्त्री चौसठ देवी,
योनि स्त्री. मंडल विशेष ।

र

रंगभूमि स्त्री. गर्भगृह के सामने पांचवां चौथा मंडप, नृत्य मंडप ।
रजत न. चांदी, धातु विशेष ।
रत्नकूट पु. केसरी जाति का सोलहवां प्रासाद ।
रत्नगर्भा स्त्री. पंद्रहवीं संवरणा ।
रत्नशीर्ष पु. [illegible] प्रासाद ।
रत्नसम्भवा स्त्री २४वीं संवरणा ।
रथ पु. विशेष प्रकार की गाड़ी, कोने के समीप का दूसरा कोना, फालना विशेष ।
रथा स्त्री. प्रासाद की जाति विशेष ।
रथिका स्त्री. भद्र का गवाक्ष, आला ।
रन्ध्र न. प्रवेश द्वार ।
रम्या स्त्री. छट्ठी संवरणा ।
रवि पु. बारह की संख्या, सूर्य ।
रश्मि पु. किरण ।
रस पु. छह की संख्या ।
राक्षस पु. आय से व्यय अधिक आनने की संज्ञा ।
राजगृह न. राजमहल ।
राजपुर न. राजधानी का शहर, राजनगर ।
राजमन्दिर न. राजमहल ।
राजमार्ग पु. सार्वजनिक आम रास्ता ।
राजसेन न. मण्डप की पीठ के ऊपर का थर ।
राजहंस पु. केसरी जाति का २२ वां प्रासाद ।
राजांश पु. क्षेत्रफल का नाप विशेष ।
राम पु. तीन की संख्या (राम, परशुराम और बलराम)
रासभ पु. खर आय का नाम ।
राहुमुख न. शेषनागचक्र का मुख ।
रिक्ता स्त्री नींव की चौथी शिला; ४, ९ और १४ तिथि ।
रीति स्त्री. पित्तल, धातु विशेष ।
रुचक पु. समचोरस स्तंभ ।
रुद्र पु. ग्यारह की संख्या, वास्तुदेव ।
रुद्रदास पु. वास्तुदेव,
रूपकण्ठ पु. गुम्बद के उदय में कर्णदर्दरिका के ऊपर का थर,
रूपस्तंभ पु. द्वारशाखा के मध्य का स्तंभ,
रेखा स्त्री. सांधा, कोना ।
रोग पु. वास्तुदेव ।
रोहिणी स्त्री. चौथा नक्षत्र ।
रौप्यज न. चांदी का बना हुआ ।

ल

लक्ष्मीनारायण पु. विष्णुदेव ।
लक्ष्य न. उद्देश्य, चिह्न ।
लतालिंगोद्भव न. मंडल विशेष ।
ललित पु. प्रासाद की एक जाति ।
ललिता स्त्री. प्रासाद की एक जाति ।
लय न. मकान, गृह ।
लाटी स्त्री. स्त्रीयुगलवाली प्रासाद की जंघा ।
लिङ्गोद्भव न. वास्तु मंडल विशेष ।
लोह पु. धातु विशेष, लोहा ।

व

वक्त्र न. मुख ।
वज्र न. हीरा ।
वज्रक पु. केसरी जाति का १६ वां प्रासाद ।
वज्री स्त्री. औषधि विशेष, गडूची ।
वट पु. वृक्ष विशेष, बरगद, बड़,
वत्स पु. आकाशीय कल्पित एक संज्ञा ।
वपुस् न. शरीर ।
वराटिका स्त्री. प्रासाद की एक जाति ।
वराल पु. ग्राह, जलचर जीव विशेष, मगर ।
वरुण पु. पश्चिम दिशा का दिक्पाल, वास्तुदेव ।
वर्द्धमान पु. प्रतिकर्णवाला स्तंभ ।
वलभी स्त्री प्रासाद की एक जाति ।
वल्कल पु. औषधि विशेष ।
वसु पु. आठ की संख्या, आठ देव विशेष ।
वह्नि पु. अग्निकोण का दिक्पाल, अग्नि, वास्तुदेव, चित्रक औषधि ।
वह्निभ न. कृत्तिका नक्षत्र ।

वाजिन् पुं. अश्वथर, घोड़ा का घर।
वानरेश्वर पुं. हनुमान देव।
वापी स्त्री. बावड़ी।
वामन न. मंडप के व्यास के आधे भाग के उदयवाला गुम्बद, भरथ का देव, जगती के आगे का बलाणक मंडप।
वायव्य पु. वायुकोण।
वायस पुं. ध्वांक्ष आय, कौआ।
वाराह पुं. मंडप के व्यासार्थ के ३/४ भाग के उदयवाला गुम्बज। खरशिला का देव।
वारि न. पानी, जल।
वारिमार्ग न. दीवार से बाहर नीकला हुआ खांचा।
वारुण न. शतभिषा नक्षत्र,
वासव न. धनिष्ठा नक्षत्र।
वास्तु पुं. न. निवास स्थान, गृहारंभादि में विशेष प्रकार की देवपूजन विधि।
वाहन न. सवारी, गाड़ी।
विघ्नेश पुं. गणपति, गणेश।
विजयानन्द पुं. वैराज्यादि २२वां प्रासाद।
वितथ पुं. वास्तु मंडल के देव।
विदारिका स्त्री वास्तुमण्डल के अग्नि कोने की देवी।
विद्याधर पुं. गुम्बद में नृत्य करने वाले देवरूप। केवाल थर का देव।
विधि पुं. वास्तुमण्डल के देव, ब्रह्मा।
विधु पुं. चन्द्रमा, एक संख्या।
विद्ध वि. वेध, रुकावट।
विपर्यास पुं. विपरीत, उलटा।
विभंव पुं. सातवां व्यय।
विमान पुं. वैराज्यादि सातवां प्रासाद, राजद्वार के आगे का बलाणक मण्डप।
विमानजा स्त्री. प्रासाद की एक जाति।
विमाननागरच्छन्दा स्त्री. प्रासाद की एक जाति।
विमानपुष्पका स्त्री. प्रासाद की एक जाति।
विलोचय पुं. खुला भाग।
विवस्वन् पुं. वास्तुमण्डल का देव, सूर्य।
विंशति सं. बीस की संख्या।
विशाल पुं. वैराज्यादि आठवां प्रासाद।
विश्व न. जगत्, तेरह की संख्या।
विश्वकर्मन् पुं. जगत की रचना करने वाला देव-शिल्पी।
विष्णुक्रान्ता स्त्री. औषधि विशेष अपराजिता
विस्तीर्ण वि. विस्तार
वीतराग पुं. रागरहित जिनदेव।
वृत्त वि. गोलाई।
वृद्धि वि. बढ़ाना।
वृष पुं. पांचवीं आय, नंदीगण, वृषभ।
वृषभध्वज पुं. केसरी जाति का २४वां प्रासाद।
वेद पुं. चार की संख्या।
वेदिका स्त्री. पीठ, प्रासाद आदिका आसन।
वेदी स्त्री. राजसेन के ऊपर का थर, पीठ।
वेश्मन् न. मंदिर, घर।
वैडूर्य पुं. केसर्यादि का १७ वां प्रासाद, रत्न विशेष।
वैधृति पुं. सत्ताईस योग में से एक योग।
वैराज्य पुं. प्रासाद की एक जाति।
वैराटी स्त्री. प्रासाद की कमलपत्र वाली दीवार।
वैष्णव पुं. श्रवण नक्षत्र।
व्यक्त वि. प्रकाशवाला।
व्यङ्ग वि. टेढ़ा।
व्यञ्जन न. पंखा।
व्यतिक्रम वि. मर्यादा से अधिक।
व्यतिपात पुं. सत्ताईस योग में से एक योग।
व्यय पुं. आठ की संख्या, खर्च।
व्यास पुं. विस्तार, गोल का समान्तर दो भाग करने वाली रेखा।
व्योमन् न. शून्य, आकाश।
व्रीहि स्त्री. अन्न, धान्य विशेष।

श

शक्र पु. चौदह की संख्या, इन्द्र।
शङ्कर पु. ईशानकोण, महादेव।
शङ्कु पु. छाया मापक यंत्र।
शङ्खावर्त्त पुं. प्रासाद की देहली के आगे की अर्धचंद्र के आकारवाली शंख और लताओं वाली आकृति।

शंखिनी स्त्री. शंखावली, औषधि विशेष ।

शतमूल न. [illegible] की संख्या ।

शतार्द्ध सं. पचास की संख्या ।

शम्भुदिशा स्त्री. ईशान कोन ।

शयनासन पुं. शेषनाग की शय्या ऊपर शयन करने वाला विष्णुदेव ।

शय्या स्त्री. प्रासाद के ३/२ भाग के मान का कोलीमंडप ।

शाखोदर न. शाखा का पेटा भाग ।

शान्त पुं. प्रथम व्यय ।

शालभंजिका स्त्री. नाच करती हुई पाषाण की पुतलीयां ।

शाला स्त्री. प्रासाद, गभारा, छोटा कमरा, मठ, परशाल बरामदा ।

शाली स्त्री, चावल, धान्य विशेष.

शिखर न. शिवलिंग के आकार वाला गुम्बद ।

शिरः न. शिखर शिरावटी, ग्रासमुख, एक संख्या वाचक ।

शिरःपत्रिका स्त्री. ग्रास के मुखवाली पट्टी, दासा ।

शिरावटी स्त्री. भरणी के ऊपर का थर ।

शिला स्त्री. नींव में प्रथम बार रखी जाती पाषाण शिला ।

शिव पु ईशान कोन, महादेव ।

शिर्ष न. भरणी के ऊपर का थर, शिरावटी ।

शुकनास न. प्रासाद की नासिका ।

शुक पु. छट्ठा ग्रह, यवनाचार्य ।

शुक्ला स्त्री. नींव में प्रथम रखी जाती सातवीं शिला ।

शुण्डिकाकृति स्त्री. हाथी ।

शुद्धसङ्घाट न. गुंबद का समतल चंदोवा, छत

शृङ्ग न. शिखर, छोटे छोटे शिखर के आकार वाले अंडक.

शेष पु. वास्तुमंडल का देव ।

शैलज पु. पाषाण का बना हुआ ।

शैलराज पु. मेरु पर्वत ।

श्रवण न. २२वां नक्षत्र.

श्रियानन्द पु. चौथा व्यय ।

श्रीनन्दन पुं. वैराज्यादि चौथा प्रासाद ।

श्रीवत्स पुं. छट्ठा व्यय, प्रासाद विशेष, एक ही सादा शृंग ।

श्रीवृक्ष पुं. केसरी जाति का सातवां प्रासाद

श्वान पु. चौथा आय ।

ष

षट् सं. छह की संख्या ।

षड्दारु न. दो दो स्तंभ और उसके ऊपर एक एक पाट ।

षष्ठि सं. साठ की संख्या ।

षोडश सं. सोलह की संख्या ।

स

संवरणा स्त्री. अनेक छोटे छोटे कलशों वाला गुम्बद ।

सकलीकरण न. देव प्रतिष्ठा की विधि विशेष ।

सङ्घाट पु. छत विभाग ।

सत्य पु. वास्तुमंडल का देव ।

सत्रागार न. यज्ञशाला ।

सदाशिव पुं. कलशका देव, महादेव ।

सद्य पुं. कोना का देव ।

सन्धि स्त्री. सांध, जोड़ ।

सन्ध्या स्त्री भद्रथर का देव ।

सप्त सं. सात की संख्या ।

सप्तविंशति सं. सत्तावीस की संख्या ।

सभामार्ग पुं. तीन प्रकार की आकृति वाली छत ।

सभ्रमा स्त्री प्रासाद के ३/२ भाग के मान का कोली मण्डप

समुद्भवा स्त्री. बारहवीं संवरणा ।

समोसरण न. तीन प्राकारवाली वेदी ।

सरस्वती स्त्री. मंचिका थर का देवता ।

सर्वतोभद्र पु. केसरी जाति का दूसरा प्रासाद ।

सर्वाङ्गतिलक पु. वैराज्यादि २४वां प्रासाद ।

सर्वाङ्गसुन्दर पु. वैराज्यादि २१ वां प्रासाद ।

सवितृ पुं. वास्तुमंडल का देव, सूर्य ।

सहदेवी स्त्री. औषधि विशेष ।

सान्धार पु. परिक्रमावाले नागर जाति के प्रासाद ।

सान्धारा स्त्री. प्रासाद की जाति ।

सारदारु पु. श्रेष्ठ काष्ठ,

सावित्र पु. वास्तुमंडल का देव ।

सावित्री स्त्री भरणी थर का देवता ।

सिंह पुं. तीसरी आय, वैराज्यादि प्रासाद ।

सिंहशाखा स्त्री. द्वार की नववीं शाखा

सिंहस्थान न. शुकनास ।

सिंहार्क पु. सिंह राशिका सूर्य ।

सिंहावलोकना स्त्री. प्रासाद की एक जाति ।

सितशृंग पु. वैराज्यादि १२वां प्रासाद ।

सिद्धाश्रम पु. सिद्ध पुरुषों का निर्वाणस्थान ।

सीसक न. सीसा, धातुविशेष ।

सुग्रीव पु. वास्तुमंडल का देव ।

सुनील न. पक्का नीलम रत्न ।

सुप्रभा स्त्री. दो शाखावाला द्वार का नाम ।

सुभगा स्त्री. तीन शाखावाला द्वार ।

सुर पु. अन्तराल घर का देव ।

सुरवेश्मन् न. देवालय, देव मंदिर ।

सुवर्ण न. सोना, धातु विशेष ।

सुषिर न. छेद, पोलापन ।

सूत्रधार पु. शिल्पी, मंदिर और मकान आदि बनाने वाला कारिगर ।

सूत्रारम्भ पु. नींव खोदने के प्रारंभ में प्रथम वास्तुभूमि में कीले ठोककर उसमें सूत्र बांधने का प्रारंभ ।

सूर्य पु. बारह की संख्या, वास्तुदेव, द्वारशाखा के देव ।

सृष्टि स्त्री. दाहिनी ओर से गिनना, उत्पत्ति, पृथ्वी ।

सोपान न. सीढी ।

सोम पु. वास्तुमंडल का देव ।

सौध पु. राजमहल, हवेली ।

सौभागिनी स्त्री. आठवीं शिखा का नाम ।

सौम्य पु. शुभग्रह, बुध ।

सौम्या स्त्री. उत्तर दिशा ।

स्कन्दा स्त्री. वास्तुमंडल के नैर्ऋत्य कोन की देवी ।

स्कन्ध पु. शिखर के ऊपर का भाग

स्तम्भ पु. थंभा, खंभा, ध्वजादंड

स्तम्भवेध पु. ध्वजाधार, कलाबा ।

स्तोत्र न. स्तुति ।

स्थंडिल न. प्रतिष्ठामंडप में बालु (रेती) की वेदी, जिसके ऊपर देव को स्नान कराया जाता है ।

स्थावर न. प्रासाद के थर, शनिवार ।

स्थूल वि. मोटा ।

स्नानोदक न. स्नान जल, चरणामृत ।

स्मरकीर्ति स्त्री. एक शाखा वाला द्वार ।

स्वयम्भू पु. बिना घडित शिवलिंग ।

स्वर्ण न. सोना ।

स्वस्तिक न. वास्तुमंडल विशेष ।

स्वाति स्त्री. पन्द्रहवां नक्षत्र ।

ह

हरि पु. कर्णिका का देव, विष्णु

हर्म्य न. घर मकान ।

हर्म्यपाल पु घर के द्वार ऊपर का क्षत्रपाल

हस्त पु. तेरहवां नक्षत्र, हाथ ।

हस्तांगुल न. एक हाथ की एक अंगुल, दो हाथ की दो अंगुल, इस प्रकार हस्त संख्या बराबर अंगुल संख्या ।

हस्तिनी स्त्री. सात शाखावाला द्वार ।

हिमवान् पु केसरी आदिका नववां प्रासाद ।

हिमा स्त्री. १६वीं संवरणा ।

हेमकूट पु. केसरी आदि का १०वां प्रासाद ।

हेमकूटा स्त्री. १७वीं संवरणा ।

ह्रस्व वि. छोटा, कम होना, न्यून ।

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
८	१३	प्राध्याविशु	प्राप्याविशु
११	१७-१३, १६-२३, २०-१६, २१-२३,	इन चारों क्षेत्र के माप में	देवगण लक्षण नहीं मिलता
१२	२२	दिङमुखे	दिङ् मुखे
१३	१५	कुभा	कुंभा
२६	१६	पच	पंच
,,	२३	सार्धेत:	सार्धंत:
२७	४	मूमगीर्मा	भ्रमणीर्मा
२८	१७	दो । की	दो भाग की
४१	१३	तदूर्ध्वत:	तदूर्ध्वत:
४२	१०	दिगविशति	दिग्विंशति
४३	४	पादांश	पादांशं
४५	१४	प्रतिष्ठाशार	प्रतिष्ठासार
४६	१०	मूर्ध्वाधि:	मूर्ध्वाभि:
,,	१६	कर्णिका	कर्णिका
४७	१२	बनावें	बनावें
४६	८	चतुर्विंशति	चतुर्विंशति
,,	१६	उदयक ने	उदय करने
५४	१७	छाद्यसस्थाने	छाद्यसंस्थाने
५६	१५	द्विभाग	द्विभाग
,,	,,	गर्भ	गर्भं
५७	२२	गुर्भ	गर्भ
६७	७	हृस्व	ह्रस्व
६८	६	मान	नाम
७७	८	उच्छ्रयेण	उच्छ्र येण
७६	८	त्रिखण्डत	त्रिखण्डात्
८६	२६	हस्ताङ्गुल	हस्ताङ्गु ल
६१	७	प्रकीसित:	प्रकीर्तित:
६१	१२	ध्वजादंड	ध्वजादंड

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध
६३	१३	इगुणौ	षड्गुणौ
६५	६	विश्वकम	विश्वकर्म
,,	१२	पासाद	प्रासाद
१०२	१४	और	और
११०	१६	ऽवस्ताद	ऽधस्ताद्
११५	५	पैदार्ध	भेदार्ध
,,	२२	राज;	राज:
१२६	१६	करंतो	करें तो
१३३	४	क्रमत्	क्रमात्
१३५	२४	एक सौ घंटी	एक सौ एक घंटी
१३७	७	मद्राघ	मद्रार्ध
१३६	२७	सामर्थो	सामधार्थो
,,	२८	त्रिस्तरा	विस्तरा:
१४५	२६	अपराजिप्रपृच्छा	अपराजितपृच्छा
१४६	८	समुद्धरेत	समुद्धरेत्
,,	२४	गया हो	गया हो
,,	२६	गुरु:	गुरु:
१४७	२३	शम्भो:	शम्भो:
१५०	४	कर्त्तव्या	कर्त्तव्या
,,	५	दाहिनी और	दाहिनी ओर
,,	२१	स्तम्भे	स्तम्भे
१५२	१६	श्रीपयहं	श्रीपयहं
१५४	४	कुंडसिद्धि	कुंडसिद्धि
१६१	१०	मार्गेत:	मार्गेत:
१६६	२६	अधिक	अधिक
१७०	२४	कर्णिका	कर्णिका
,,	२७	कोणीया	कोणीर्यो
१७४	६	उपमृगं	उपमृगं
१७५	१८	भागं	भाग

पृष्ठ	लाईन	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	लाईन	शुद्ध	शुद्ध
१७५	२१	चतुष्टयं शको	चतुष्टयं शाको	२०८	६	तरप्रमाणां	तरप्रमाणं
१७६	४	तरुश्रृङ्ग	उरुश्रृङ्गं	,,	२२	षड्विशपद	षड्विंशपद
,,	८	इन्द्रनील	इन्द्रनील	,,	२४	वैदरूप	वेदरूप
१७७	३	'रक्खें' के बाद छूटा हुआ मैटर—	और कोने के	२११	३	पञ्चमम्	पञ्चमं
			ऊपर से एक	,,	१४	पुरमध्यें	पुरमध्ये
			शृंग हटा	,,	२५	पुरे	पुरे
			करके उसके	२१४	२४	कञ्ज	कञ्ज
			बदले तिलक	२१५	२५	सांड	सांड
			रक्खें	२१६	१३	शिवलिंगकी	शिवलिंग की
१८०	१२	प्रत्यङ्गं	प्रत्यङ्गं तु	२१७	३५	संधारणा	संवरणा
१९२	२५	तिलकं	तिलक	२१९	२६	देव	दैव
१९५	४	द्विपर्द	द्विपर्द	,,	२३	व्ययका काम	व्यय का नाम

अनुवाद के सहायक ग्रंथ

ग्रंथ		कर्त्ता
१ अपराजितपृच्छा	....	भुवनदेवाचार्य
२ क्षीरार्णव	....	विश्वकर्मा
३ ज्ञानप्रकाश दीपार्णव	....	,,
४ राजवल्लभ मंडन	....	मंडन सूत्रधार
५ देवता मूर्ति प्रकरण	....	,,
६ रूपमंडन	....	,,
७ समरांगण सूत्रधार	....	महाराजा भोजदेव
८ वास्तुसार	....	ठक्कुर फेरु
९ मयमतम्	....	मय सूत्रधार
१० शिल्प रत्नम् भाग १—२	....	कुमार मुनि
११ विश्वकर्म प्रकाश	....	विश्वकर्मा
१२ काश्यप शिल्पम्	....	महर्षि काश्यप
१३ शिल्प दीपक	....	गंगाधर
१४ परिमाण मंजरी	....	मल्ल सूत्रधार
१५ जिन संहिता	....	एक संधि भट्टारक
१६ बृहत्संहिता	....	वराह मिहिर
१७ विवेक विलास	....	जिन दत्त सूरि
१८ बृहच्छिल्पशास्त्र	....	जगन्नाथ अंबाराम सोमपुरा
१९ प्रासाद मंडन भाग. १	....	अंबाराम विश्वनाथ सोमपुरा
२० शिल्प रत्नाकर	....	नर्मदाशंकर सोमपुरा
२१ मानसार शिल्पशास्त्र	....	मान सार ऋषि
२२ विश्वकर्म वास्तु शास्त्र	....	विश्वकर्मा
२३ मुहूर्त चिन्तामणि	....	श्री रामदैवज्ञ
२४ आरंभसिद्धि वार्तिक	....	उदयप्रभ देवसूरि
२५ प्रतिष्ठासार	....	वसुनंदी